सूफी काव्य में प्रयुक्त पर्यायों का अनुशीलन

(मुल्ला दाऊद की 'चन्दायन' और कुतवन की 'मृगावती' के प्रसंग में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की
पी-एच०डी० की
उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

दिसम्बर 2002

निर्देशक - दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव
दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव,
डी.लिट.,
पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई।

रामाधीन
अनुसन्धाता -
रामाधीन
वरिष्ठ लिपिक,
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई।
गृह का पता -102, गांधी नगर, उरई।

प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि श्री रामाधीन ने प्रस्तुत गवेषणात्मिका कृति (Thesis) का प्रणयन मेरे निर्देशन में लगभग दो संवत्सरों तक अपेक्षित अनुसन्धान करने के अनन्तर किया है। यह ग्रन्थ उनकी समीक्षात्मक दृष्टि, नीर–क्षीर–विवेकनी प्रवृत्ति और सतर्क विवेचनात्मिका क्षमता का द्योतक कहा जा सकता है। विषय एवं लक्ष्य के प्रति समर्पण, आवश्यक तथ्यान्वेषण और अध्यवसाय आदि उनके गुण इस अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ में पग–पग पर प्रतिबिम्बित हैं। उनका प्रस्तुत शोधात्मक प्रबन्ध अनुसन्धाताओं एवं समालोचकों के लिए प्रेरक तथा निर्देशक प्रतीत होता है। इस प्रबन्ध से सूफी काव्य (विशेषकर 'चंदायन' एवं 'मृगावती') के अनुशीलन के क्षितिजों के विस्तीर्ण होने की भी सम्भावना है।

मैं उनके कृतित्व से सर्वथा सन्तुष्ट हूँ और परमपिता परमात्मा से हार्दिक विनय करता हूँ कि उन्हें अभीष्ट साफल्य प्राप्त हो तथा उनके जीवन का यान अनुसन्धान के पथ पर भविष्य में भी अनवरत रूप से गतिशील रहे ! उनके सारस्वत प्रयत्नों की कीर्ति–सुरभि दूर–दूर तक प्रसृत हो !! उनके व्यक्तित्व का गवेषणात्मक पक्ष अन्य अनुसन्धाताओं एवं समीक्षकों के लिए आदर्श सिद्ध हो !!!

मैं उनके लिए हर प्रकार की अप्रत्याशित समृद्धि एवं सफलता की कामना करता हूँ।

दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव
D. P. Srivastava

दिनांक : 16/12/02 ई.

दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव,
डी. लिट्.,
पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई

निवेदन

यदि सृष्टि के आदि में शब्द की ज्योति न जली होती तो यह संसार घोर अंधकार में निमग्न हो जाता। यदि शब्द न होते तो सभ्यता और संस्कृति का प्रकाश न होत। सम्पूर्ण सृष्टि मूक होती तो यह जीवन पशुओं जैसा होता। न ज्ञान विज्ञान ही होता और न साहित्य की अजस्त्र धारा ही बहती। अतः भारतीय वाङ्‌गमय में अनेक रूपों में शब्द की महिमा का गुणगान किया गया है। वस्तुतः शब्द न होता तो मनुष्य के समक्ष अभिव्यक्ति का संकट ही पैदा न होता, वरन् जीवन और जगत की अवधारणा में भी वह अशक्त सिद्ध होता। आज विश्व में मानव समुदाय में जो निकट सम्बंध स्थापित होते जा रहे हैं, उनकी कल्पना भी शब्द के बिना नहीं की जा सकती। शब्दों में पर्यायवाची शब्द अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

दाऊद मुल्ला कृत 'चंदायन' और कुतवन कृत 'मृगावती' का अनेक अनुसंधित्सुओं द्वारा कई दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया, परन्तु पर्यायवाची शब्दावली का व्यवस्थित विवेचन अभी तक नहीं किया गया। पर्यायवाची शब्दों का सटीक प्रयोग कवि के भाषा कौशल की सम्यक् प्रतीति के लिए अपेक्षित है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में मैंने इसी उद्देश्य की पूर्ति का विनम्र प्रयास किया है।

प्रस्तुत प्रबंध छैः अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय पर्यायों के सामान्य परिचय से सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वानों की पर्याय विषयक मान्यताओं की चर्चा करते हुए 'पर्याय' शब्द के अस्तित्व में आने के कारणों पर सोदाहरण विचार किया गया है। किसी भाषा या साहित्य में पर्याय शब्द की क्या उपयोगिता है, यह इस अध्याय का अगला विचार बिन्दु है। भाषा के शब्द भण्डार और अभिव्यंजना शक्ति को विकसित

एवं सरल बनाना तथा अभिव्यक्ति–शैली को सरस एवं प्रभावपूर्ण करना आदि पर्यायों की उपयोगिता के मुख्य तत्व हैं, जिन्हें इस क्रम में विवेचित किया गया है। इसके अतिरिक्त पर्यायों के पूर्ण, आंशिक और अनिश्चित इन तीन रूपों पर विचार किया गया है, जिन्हें अनेक भाषाशास्त्र विदों ने भी मान्यता दी है। चंदायन और मृगावती में प्रयुक्त पर्यायवाची शब्दावली को विश्लेषित करने की सुविधा की दृष्टि से इन्हें संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि वर्गों में विभाजित किया गया है। द्वितीय प्रकरण 'विवेच्य कृतियों और कृतिकारों का परिचय' में मुल्ला दाऊद और उनका 'चंदायन' तथा कुतवन और उनकी 'मृगावती' का विस्तृत परिचय दिया गया है। इसी प्रकरण में 'आलोच्य कृतियों में व्यवहृत शब्द भण्डार का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय प्रकरण में 'संज्ञा परक पर्याय', चतुर्थ में विशेषण परक पर्याय, पंचम में क्रियाबोधक पर्याय और षष्ठम् में उपसंहार प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि 'चंदायन' और 'मृगावती' के व्यापक कलेवर में शब्दों और पर्यायों का विशद भण्डार है और प्रबंध की सीमाओं के कारण इन सभी को विवेचित करना कठिन कार्य है तथापि सभी शब्दों को प्रस्तुत प्रबंध में समायोजित करने का यथाशक्ति प्रयास किया गया है।

मैंने अपने शोध में डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा सम्पादित 'चंदायन' और डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'मृगावती' को आधार माना है। सम्पूर्ण प्रबंध में 'चंदायन' से सम्बंधित कड़वक संख्या डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा सम्पादित 'चंदायन' से और 'मृगावती' से सम्बंधित कड़वक संख्या डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'मृगावती' से ग्रहण की गयी है। शोध में संदर्भ में दर्शायी गयी संख्या पहली कड़वक संख्या है तथा दूसरी पंक्ति संख्या।

'चंदायन' और 'मृगावती' में प्रयुक्त शब्दावली चौहदवी शदी का प्रारंभिक हिन्दी रूप है, जो अधिकांश कोशकारों की दृष्टि से अभी भी ओझल बनी हुई है।

यह श्रद्धा या स्वार्थ से उत्प्रेरित अतिशयोक्ति न समझी जाय कि प्रस्तुत गवेषणात्मक प्रबंध का प्रणयन मेरे निर्देशक डॉ0 दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव के अपेक्षित निर्देशन का परिणाम है। इस प्रबंध में दृष्टिगोचर होने वाला आलोक उन्हीं का और अंधकार मेरा समझा जाए। यदि उनका आत्मीयता पूर्ण पथ–प्रदर्शन अनवरत रूप से उपलब्ध न होता, तो प्रस्तुत कृतित्व अपूर्ण ही रह जाता।

दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई के उन समस्त शिक्षकों तथा साथी कर्मचारियों के प्रति भी हार्दिक रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य सुझावों एवं परामर्शो से मेरे गवेषणात्मक पथ को प्रशस्त एवं प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

मैं दयानन्द वैदिक महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य डॉ0 गोविन्द सिंह निरंजन तथा वर्तमान प्राचार्य डॉ0 एन0 डी0 'समाधिया' के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य को सम्पन्न करने की अनुमति प्रदान की। कृतज्ञ हूँ इस महाविद्यालय के पुस्तकालय कार्मिक बन्धुओं का, जिन्होंने समय–समय पर असाधारण ग्रंथों को उपलब्ध करा कर मरे अगम्य पथ को सुगम्य बनाने में सहयोग प्रदान किया।

हिन्दी के उन साहित्यकारों और भाषाशास्त्रियों का स्तवन मेरे लिए अनिर्वचनीय है, जिनके ग्रंथ रत्नों से प्रस्तुत प्रबंध कहीं प्रत्यक्षतः और कहीं परोक्षतः प्रदीप्त प्रतीत हो सकता है। मैं अपने पातालभेदी अंतस्तल से उनके प्रति पुनः–पुनः कृतज्ञता ज्ञापन अपना नैतिक कर्तव्य मानता हूँ।

बेटी ज्योति मेरे लिए 'डूबते को तिनके का सहारा' बनी। अंत में मैं श्री अनिल कुमार मिश्रा (काजल कम्प्यूटर, नया रामनगर, उरई) का हृदय से साधुवाद करता हूँ, जिन्होंने मेरे शोध को टंकित किया।

दिनांकः

रामाधीन

अनुक्रमणिका

सूफी काव्य मे प्रयुक्त पर्यायों का अनुशीलन

(मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' और कुतवन की 'मृगावती' के प्रसंग में)

संक्षिप्त रूप :

चंदा0 — चंदायन

मृगा0 — मृगावती

कड़0 — कड़वक

प्रकरण—1

पर्यायों का सामान्य परिचय

(क) उद्भव एवं महत्व

(ख) वर्गीकरण

(1) पर्यायों का सामान्य परिचय

(क) उद्‌भव एवं महत्व :

पर्यायों का उद्‌भव :

भारत ही नहीं बल्कि विश्व के लमाम मनीषियों और विद्वानों ने शब्द और अर्थ के महत्व को स्वीकारा है। उनका मन्तव्य है कि शब्द के द्वारा ही समस्त भावों की अभिव्यक्ति की जा सकती है। तत्वतः शब्द और अर्थ परस्पर संपृक्त[1] एवं अभिन्न[2] हैं। भारतीय मनीषी **भर्तृहरि** का कथन है कि शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो स्वरूप हैं। इनमें कोई तात्विक अंतर नहीं है।

एकस्यैवात्मनो भैदौ शब्दार्था व वृथका स्थिति[3] काव्य की भाषा बोलचाल की अनगढ़ भाषा से भिन्न, परिमार्जित, प्रांजल और उत्कृष्ट होती है। इसलिये शब्द और उसके अर्थ का ज्ञाता कवि शब्दों को विशिष्ट अर्थ में साभिप्राय प्रयोग करता है। वैयाकरण कात्यायन और प्रांजलि इस बात पर बल देते हैं कि विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये विशिष्ट शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। शब्द जिस प्रवृत्ति–निमित्त से अर्थात् जिस बाच्यार्थ–बोधन के लिये प्रयुक्त होते हैं, वही बाच्यार्थ उन शब्दों का अर्थ है।[4]

भर्तृहरि की भी मान्यता है कि जिस शब्द के उच्चारण से, जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है।[5] **भर्तृहरि** के इस मत से यह सार ग्रहण किया जा सकता है कि प्रत्येक शब्द भिन्न ध्वनियों को धारण करने के कारण श्रोता अथवा पउठक के मस्तिष्क पर अलग–अलग प्रभाव छोड़ता है। सहृदय लोग शब्दों के उसी प्रभाव को ग्रहण करते हैं और समानार्थक शब्दों के मूल में निहित अर्थ–भेद को ध्वनि–भेद के माध्यम से सहज ही पकड़ लेते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक सार्थक शब्द के श्रवण से श्रोता को एक विशिष्ट प्रतीति ही उस शब्द का अर्थ है। अर्थ का कोई अन्य लक्षण नहीं है

---

1 वागार्थापिव सपृक्तों वागर्थ प्रतियन्तये। रघुवंश

2. गिराअरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। रामचरित मानस–8

3. वाक्यपदीय 2–3

4. महाभाष्य 5–1–119

5. यास्मिंस्तुच्चरितं शब्दे यदायोऽर्थः प्रतीयते। वाक्यपदीय 2–230

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ का संबंध अटूट और परस्पर अन्योन्याश्रित होता है। प्रत्येक शब्द अपनी स्वतंत्र और सुनिश्चित अर्थच्छाया से युक्त होता है। यही कारण है कि एक शब्द जिस अर्थ को ध्वनित करता है दूसरा शब्द उसका पर्याय कहलाते हुये भी उसके अर्थ को छू भर पाता है। वह उसकी समस्त विवक्षाओं को अपनी परिधि में समेट सकने में असमर्थ ही रहता है।

1. **यस्मिंस्तुच्चरितं शब्दे यदायोऽर्थः प्रतीयते**। वाक्यपदीय 2–330

विभिन्न विद्वानों के शब्दों में पर्यायता पर विचार करते हुये अपने–अपने दृष्टिकोण से **'पर्याय'** को परिभाषाबद्ध भी किया है। रामचन्द्र वर्मा ने ऐसे शब्दों को पर्याय कहा है, जो पारस्परिक सम्बन्ध की दृष्टि से किसी एक ही वस्तु, बात या भाव का बोध कराएं। वे मानते हैं कि साधारणतः पर्यायों के अभिधेयार्थ समान होते हैं, लक्ष्यार्थो में भिन्नता हो सकती है।"[1]

'शब्दकल्पद्रुम' में पर्याय का अर्थ क्रम बताते हुये ऐसे एकार्थबाची शब्दों को पर्याय कहा गया है, जिनमें पूर्वा पर क्रम विद्यमान हो।[2]

हलायुधकोश में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है– परि+इण्गतों+परावनुपात्यय इण'। अर्थात जो चारों ओर जाय, वह पर्याय है। पर्याय की यह व्युत्पत्ति सूचित करती है कि ऐसा शब्द अपने विशिष्ट अर्थ से युक्त होने के साथ–साथ समानार्थी शब्द की कतिपय विवक्षाओं को भी व्यंजित करता है।

'काम्पटन्स एनसाइक्लोपीडिया', 'एनसाईक्लोपीडिया अमेरिकाना' और 'डिक्शनरी आफ लिटिरेरी टर्मस्' में समान अर्थ के बाचक शब्दों को पर्याय कहा गया है। दो भिन्न भाषाओं के एकार्थबाचक शब्द पर्याय नहीं कहे जा सकते हैं। **वेबस्टर**[3] और **जोसेफ टी शिप्ले**[4] भी इस मत का प्रतिपादन करते हैं कि पर्याय शब्द समान अर्थ के बाचक तो होते हैं, किन्तु उस

---

1. मानक हिन्दी कोश
   येन सह यत सम्पर्कः सम्बन्धस्तेन सह तत्परर्यायः।
2. कर्मेणं कार्य [illegible]काः शब्दाः पर्यायाः।
3. New International Dictionary of English Language.
4. Dictionary of world Literary Terms.

मुख्यार्थ के अतिरिक्त उनमें एक सूक्ष्म अर्थ भी निहित होता है। इसी कारण पर्याय शब्द समानार्थक होते हुये भी भिन्न–भिन्न अर्थच्छायाओं के कारण अंतर की अपेक्षा रखते हैं। वस्तुतः किसी भी भाषा में, चाहे वह कितनी ही समृद्ध हो और चाहे उसमें एक ही अर्थ के बाचक अनेक शब्दों की सत्ता हो, पूर्ण पर्यायों की स्थिति असम्भव ही मानी जायेगी। शायद ही कोई ऐसा शब्द हो जो प्रस्तुत प्रसंग में अपने समानार्थी शब्द के स्थान पर बिना किसी परिवर्तन के निःसंकोच रखा जा सके।[1]

डा0 सत्यव्रत ने शब्दों की पर्यायता का विवेचन करते हुये कहा है कि यह कहना बड़ा कठिन है कि दो या अधिक शब्द एक ही भाव को व्यक्त कर सकते हैं या नहीं। इसी विवेचन में उन्होंने पं. चारूदेव शास्त्री का भी उल्लेख किया है उन्होंने पर्यायता के स्पष्टीकरण के लिये एक सटीक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि तथाकथित समानार्थक शब्दों को पूर्ण पर्याय नहीं माना जा सकता, जिस प्रकार गन्ने, दूध और गुड़ की सुगंध में विद्यमान अंतर को अनुभव तो किया जा सकता है किन्तु उसे शब्दबद्ध नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार पर्याय शब्दों के अंतर को सहृदय पाठक समझता है मन पर पड़े उनके प्रभाव के अंतर को भी जान लेता है, किन्तु उस अंतर को व्यक्त करने में वह स्वयं को असमर्थ ही पाता है।

उपर्युक्त दृष्टांत इस अवधारणा को पुष्ट करता है कि साधारण बोलचाल में या सामान्य अर्थ में तो पर्यायता की स्थिति स्वीकार्य हो सकती है, किन्तु इसकी सुशिलिष्ट परिभाषा प्रस्तुत करने की स्थिति में तो यही कहा जायेगा कि शब्दों में निहित सूक्ष्म अंतर और अर्थच्छायाओं की भिन्नता के कारण किसी भी भाषा के दो समानार्थी शब्दों को पूर्ण पर्याय नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वान समान शब्द भेद को पर्यायता का आधार मानते हैं। यदि कोई

1. Macaulay's worlds quoted by Stephen Ullmann in the 'Semantics the Science of Meaning, P141

दो शब्द समान अर्थ के द्योतक हों व्याकरणिक दृष्टि से वे भिन्न कोटियों में आते हैं तो उन्हें पर्याय नहीं माना जायेगा; जैसे सुन्दर और रूप शब्द। सुन्दर शब्द गुण बाचक विशेषण है और रूप भाव बाचक संज्ञा। इस व्याकरणिक अंतर के कारण दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं कहे जा सकते।

पर्यायों के विषय में एक मत यह भी है कि ये वे शब्द हैं, जिनका एक साथ प्रयोग नहीं होता है। किन्तु यह कसौटी पर्यायता के लिये नितान्त आवश्यक नहीं और न ही इससे पर्याय का कोई रूप स्पष्ट होता है। ऐसे भी उदाहरण देखे जा सकते हैं जहाँ अनेक पर्यायों का एक साथ प्रयोग किया गया हो इस प्रकार इस मत को ग्रहण करना समीचीन न होगा।

संस्कृत हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वानों ने पर्याय के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनका सार संग्रह इस प्रकार किया जा सकता है।

1. अर्थ की समानता ही शब्दों की पर्यायता के लिये अपेक्षित वस्तु है।
2. पर्याय शब्द वे होते हैं, जो समान्यतः एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किये जा सकें।

इसी दृष्टि से मोनियर, विलियम्स ने पर्याय के स्पष्टीकरण के लिये 'कन्वर्रिबुक्रर्म' का प्रयोग किया है। इस आधार पर यदि उनकी पर्याय विषयक अवधारणा का स्पष्टीकरण किया जाय तो ज्ञात होगा कि विद्वान कोशकार शब्दों की पर्यायता के लिये दो मुख्य विशेषताओं का होना आवश्यक मानते हैं।

(क) शब्द का अर्थ– साम्य और

(ख) एकार्थकता के कारण किसी भी शब्द का दूसरे स्थान पर प्रयोग।

उपर्युक्त मान्यताओं पर यदि सूक्ष्मोक्षिकापूर्वक विचार किया जाय तो ये अंशतः ही ग्राह्य प्रतीत होगी। भाषा के कुछ अपने नियम होते हैं। उनमें से एक यह भी है कि वह एक अर्थ के लिये अनेक शब्दों को धारण करने में असहिष्णु होती है। भाषा की प्रकृति यह सिद्ध करती है, कि यदि क़िसी भाषा में समानार्थी शब्द पाये जाते हैं तो वे किसी भी स्थिति में पूर्ण पर्याय नहीं कहे जा सकते और न ही प्रस्तुत प्रसंग में अपेक्षित प्रभविष्णुता उत्पन्न करने के लिये एक के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। केवल साहित्यिक भाषा में ही नहीं, अपितु आम बोलचाल में भी हम देखते हैं कि दो समानार्थी 'कहे जाने वाले शब्दों में एक प्रयोग जहां कथन को अधिक प्रभावशाली बना देता है वहीं दूसरा शबद अर्थ का अनर्थ भी कर देता है, जैसे निःसंतान और बाँझ शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं किन्तु किसी स्त्री के लिये निःसंतान शब्द का प्रयोग केवल उसकी संतान हीनता का बोध कराता है, वहाँ वाँझ शब्द अपमान और तिरस्कार का सूचक है।

इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि किन्हीं दो या अधिक शब्दों को केवल समानार्थकता के आधार पर ही पर्याय नहीं कहा जा सकता। इसके लिये कतिपय अन्य तत्व भी अपेक्षित हैं।

वे ही शब्द पर्याय कहे जा सकते हैं जो समानार्थी होने के साथ–साथ एक ही भाषा के हों। दो भिन्न–भिन्न भाषाओं के शब्द, चाहे वह एक ही भाव और संवेदना का संप्रेषण करते हों, पर्याय नहीं कहे जायेंगे।

यह भी ध्यातव्य है कि किसी भी भाषा के किन्हीं दो शब्दों को पूर्ण पर्याय की संज्ञा नहीं दी जा सकती। जिन दो शब्दों को पर्याय कहा जाता है वे पूर्णतः समानार्थी नहीं होते। उनकी पर्यायता का आधार यह होता है कि वे किसी एक ही अभिप्रेत वस्तु या भाव का बोध

कराते हैं। इसके साथ–साथ यह बात भी महत्वपूर्ण है कि एक ही वस्तु के बोधक होते हुये भी ये शब्द उसकी भिन्न–भिन्न विवक्षाओं का द्योतन कराते हैं। जैसे– भ्रमर और मधुप। ये दोनों ही शब्द कीट विशेष के वाधक हैं, परन्तु भ्रमर शब्द घूमते रहने की विशेषता का और 'मधुप' शब्द उसकी मधुकरी वृत्ति का द्योतन करता है। इस प्रकार एक ही वस्तु का द्योतन होने पर भी अर्थच्छाया की दृष्टि से इन दोनों शब्दों में कुछ भिन्नता भी है। इस मान्यता के समर्थक विद्वान हैं– **हैरीशा, स्टीफन**[1], **उल्मान**[2], **वभूमफील्ड**[3], **भोलानाथ तिवारी**[4], **ब्रदीनाथ कपूर**[5], और **रामचन्द्र वर्मा**[6]।

वस्तुतः अर्थ विज्ञान और पर्यायकी पर कार्य करने वाले अधिकांश विद्वानों की यही अवधारणा है कि किसी भी भाषा के दो या अधिक शब्द एकार्थवाची नहीं हो सकते। प्रत्येक शब्द की भिन्न–भिन्न वियुत्पत्ति भी यही संकेतित करती हैं कि मुख्य सामान्य अर्थ की दृष्टि से समानार्थी होते हुये भी पर्यायों के सूक्ष्म अंतर को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। शब्द की पर्यायता भाषा की ऐसी विशेषता है जो उसके शब्द भण्डार की व्यापकता के साथ साथ उसकी गरिमा और अर्थगांभीर्य का भी सहज ही परिचय दे देती हैं।

राय हैरिश ने पर्याय निर्धारण की नवीन और संशोधित कसौटी प्रस्तुत करते हुये यही कहा है कि पर्याय कहे जाने वाले शब्दों की अर्थ विस्तृति से मुख्यता या गौड़ता की पहचान पर ही पर्यायता निर्भर करती है।[7] इसका तात्पर्य यह है कि हम उन्हीं दो या अधिक शब्दों को पर्याय मान सकते हैं, जो केवल सामान्य अर्थ में ही एकार्थी नहीं हैं अपितु उनमें उन सभी तत्वों का होना आवश्यक है जिनके कारण वे पर्याय कहे जाते हैं। अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये उन्होंने स्पैनर और रैंच का उदाहरण दिया है। उनका कथन है कि इन दोनों औजारों का मुख्य कार्य किसी भी प्रकार के पैंचों को कसना या ढीला करना होने के

---

1. The Principal of Sematics.
2. Language.
3. वृहत् पर्यायवाची कोश, भाषाविज्ञान।
4. हिन्दी पर्यायों का भाषागत अध्ययन।
5. शब्दार्थ ज्ञान कोष, शब्दार्थ वर्णन।
6. रामचन्द्र वर्मा
7. Synonymy and Linguistic analysis p. 9

कारण इन्हें एक ही वस्तु का द्योतक माना जा सकता है तथापि रेंच से अन्य कार्य भी सम्पादित किये जाते हैं जबकि स्पैनर से नहीं। अतः ये कुछ सीमा तक अभिन्न भी हैं और भिन्न भी। शब्दों के विषय में भी यही स्थिति सत्य है। जैसे शंकर, शिव और गिरजापति शब्द पर्याय और एक ही व्यक्ति के बाचक हैं किन्तु प्रथम दो शब्दों में पार्वती के पति होने की व्यंजना नहीं है। इनमें शिव के केवल मंगलकारी रूप पर ही बल दिया गया है।

हैरिश के विवेचन का सांराश यही है कि यह शब्दों पर नहीं अपितु स्वयं व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह दो या अधिक शब्दों का पर्याय स्वीकार करे अथवा नहीं। यदि वह उन शब्दों में निहित साम्यता पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है तो उसकी दृष्टि में वे पर्याय होंगे। इसके विपरीत यदि उसकी दृष्टि में उन शब्दों का अर्थ– वैषम्य या उनकी भिन्न विवक्षाऐं महत्वपूर्ण हैं तो वह उन्हें भिन्नार्थक मानने के लिये भी सवतंत्र हैं।

विभिन्न विद्वानों की पर्याय विषयक मान्यताओं से परिचित होने पर पर्याय के वास्तविक स्वरूप को जानने की इच्छा अनायास ही बलवती हो उठती है। बार–बार यही प्रश्न मस्तिष्क में उभरने लगता है कि अगर किसी भाषा में दो समानार्थक शब्दों की स्थिति केवल काल्पनिक वस्तु ही है तो पर्यायता का आरंभ क्यों हुआ और किस आधार पर दो या अधिक शब्दों की एकार्थवाची संज्ञा से अभिहित किया गया।

(क) पर्यायों का उद्‌भव :

'पर्याय' के अर्थ और स्वरूप के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भाषा में दो या अधिक शब्दों की समानार्थता को भले ही स्वीकार न किया जाय, किन्तु सामान्य बोलचाल में इतना अस्तित्व निश्चित रूप से बना रहेगा। किसी एक भाव को अधिक स्पष्ट और सरल रूप से संप्रेषित करने के लिये दूसरे शब्द का प्रयोग का पर्याय माना

गया है। इसके अतिरिक्त साहित्य क्षेत्र में अभिव्यक्ति की शक्तिमत्ता और सजीवता के लिये पर्यायों के महत्वपूर्ण योगदान को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। शब्दों के प्रभाव और शक्ति से अवगत साहित्यकारों ने प्रसंगानुरूप उपयुक्त शब्दों के प्रयोग द्वारा अपनी रचना को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाया है। पर्यायों की यह अनुपेक्षणीय महत्ता सभी भाषा वैज्ञानिकों को गहराई में जाने के लिये प्रेरित करती है। इसी प्रक्रिया में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है वह है पर्यायों के श्रोत का। शब्दों की समानार्थता के प्रसंग में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक ही है कि एक भाषा में एक ही अर्थ को अभिव्यक्ति देने वाले अनेक शब्दों का आविर्भाव क्यों होता है ?

प्रत्येक भाषा में निरंतर विकासशीलता की स्थिति देखी जा सकती है। भाषा की इस अनिवार्य प्रक्रिया या विशेषता के कारण उसमें अनेक परिवर्तन लक्षित होते हैं। उसके शब्द भण्डार में अनेक शब्दों का आगमन और लोप। आरम्भ में भाषा में एक भाव की अभिव्यक्ति का द्योतक एक ही शब्द होता है, किन्तु धीरे–धीरे उसके प्रयोक्ताओं को, चाहे वे सामान्य व्यक्ति हों या प्रतिष्ठित साहित्यकार, ऐसा अनुभव होने लगता है कि उनके विचारों की सटीक अभिव्यक्ति या अभिव्यक्ति के विभिन्न सूक्ष्म पक्षों के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत शब्द अपर्याप्त है। ज्ञानवृद्धि के साथ–साथ वह एक वस्तु या व्यक्ति के विभिन्न गुणों और विशेषताओं का परिचय प्राप्त करता है। जिस प्रसंग में वह जिस वस्तु व्यक्ति से संबद्ध जिस क्रिया कलाप का वर्णन करता है उसी के अनुरूप शब्द का प्रयोग भी करना चाहता है। जैसे नर के स्त्रीलिंग रूप में सामान्य प्रचलित शब्द है– नारी। परन्तु जब वक्ता या लेखक उसकी कमनीयता पर विशेष बल देना चाहता है तब उसके लिये कांता का प्रयोग करता है और यदि यौवन आदि गुणों का संप्रेषण अभीष्ट होता है तो प्रयोजन के अनुरूप 'प्रमदा' का व्यवहार किया जाता है।

इससे सिद्ध है कि सजीव, सशक्त और उपयुक्त अभिव्यक्ति की लालसा ही पर्यायों को जन्म देने का कारण है। इस प्रकार इसे ही समानार्थी शब्दों की उत्पत्ति का प्रमुख हेतु मानना समीचीन है।

श्री रामचन्द्र वर्मा ने पर्यायों के उद्‌भव का मुख्य श्रोत उपर्युक्त तथ्य को स्वीकार किया है। उनके अनुसार प्रत्येक भाषा का शब्द भण्डार जिन कारणों से बढ़ता है उनमें से एक मुख्य कारण उस भाषा के भाषियों का सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर की उच्चता या मान भी है। जब किसी भाषा का शब्द भण्डार यथेष्ट भरा–पूरा हो जाता है तब उसमें स्वभावतः एक ही प्रकार का आशय या भाव प्रकट करने वाले कई–कई शब्दों का एक स्वतंत्र वर्ग भी बन जाता है। अन्न, जल, धन पृथ्वी, वायु आदि में से प्रत्येक के जो बहुत से बाचक शब्द हमारे यहां प्रचलित हैं वे भिन्न–भिन्न अवसरों पर और भिन्न–भिन्न आवश्यकताओं के विचार से गढ़े गये हैं।[1]

भाषाओं की एक अन्य स्वाभाविक विशेषता होती है– दूसरी भाषाओं से प्रभावित होना। इसके परिणाम स्वरूप एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में ग्रहण कर लिये जाते हैं। कई बार तो ऐसा होता है कि अर्थ विशेष को व्यक्त करने वाला शब्द एक भाषा में नहीं होता और उसके प्रयोक्ता अपनी भाषा की सामर्थ्य– वृद्धि के लिये उसे अपना लेते हैं। किन्तु कभी–कभी अपनी भाषा से शब्द के होते हुये भी उसी अर्थ के द्योतक अन्य शब्द को दूसरी भाषा से ग्रहण कर लिया जाता है। इस प्रकार दोनों शब्दों का व्यवहार होने से पर्याय बन जाता है। इस प्रकार के शब्द ग्रहण के पीछे भी शब्द की अपेक्षाकृत सरलता अथवा अर्थ की तीव्र प्रभावात्मकता की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। जैसे मानस के सीता स्वंवर प्रसंग में एक पंक्ति है।

---

1. शब्दार्थ दर्शन पृष्ठ – 77

संकर चापु जहाज सागर रघुवर बाहुबल।[1] जहाज फारसी भाषा का शब्द है। इसके लिये वायुयान शब्द संस्कृत में विद्यमान था और विमान भी, किन्तु जहाज जैसी प्रभावात्मक्ता इन दोनों शब्दों में नहीं है, इसी कारण इसे तुलसी ने भली–भाँति समझकर ही शब्द विशेष का प्रयोग उक्त पंक्ति में किया है। इसके अतिरिक्त जहाज शब्द मे मध्यवर्ती 'आ' ध्वनि चाप की विशालता की द्योतक है, जिसकी ओर संकेत करना कवि का विशिष्ट उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के कार्यक्रम शब्द के स्थान पर प्रोग्राम का, पीड़ा के स्थान पर फारसी भाषा के दर्द और शीघ्र के स्थान पर जल्दी के बहुप्रचलित प्रयोग के पीछे भी उपर्युक्त कारण ही दृष्टिगोचर होता है।

एक भाषा–भाषी समाज जब किसी अन्य भाषा बोलने वाले वर्ग के सम्पर्क में आता है, तब कुछ समय पश्चात अनजाने ही एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में प्रयुक्त होने लगते हैं। धीरे–धीरे वे शब्द भाषा का ही अंग बन जाते हैं और उनकी गणना पर्याय शब्दों में की जाने लगती है। तुलसी द्वारा बहुशः प्रयुक्त **'साहिव'** शब्द का उसका उत्कृष्ट उदाहरण है। अरवी का यह शब्द मुसलमानों के सम्पर्क से भारतीय जनता में भी ब्यवहृत होने लगा और कालान्तर में प्रभु या स्वामी का पर्यायवाची हो गया। पर्यायवाची शब्दों का उद्‌भव में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रत्येक भाषा अपनी मूल भाषा से शब्द ग्रहण करती है। भाषा विकास की प्रक्रिया में तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्‌भव रूपों का बहुलता से प्रयोग होने लगता है किन्तु कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनके तत्सम और तद्‌भव दोनों रूप समानतः प्रचलित होते हैं। फलतः पर्याय शब्दावली का विकास हो जाता है। जैसे स्वामी और साईं। स्वामी संस्कृत का तत्सम शब्द है। इसी का तद्‌भव रूप है– साईं।

---

1. 1. मानस 1–261–13

सामाजिक परम्पराओं की भिन्नता भी पर्यायवाची शब्दों के उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रत्येक समाज, देश और जाति की भिन्न–भिन्न संसकृति, परम्पराएं और रीति रिवाज होते हैं यही भिन्नता भाषा और बोलियों को भी प्रभावित करती है और पर्याय शब्दों के निर्माण में सहायक होती है। बाप और पिता, बेटा और पुत्र आदि इसी श्रेणी के पर्याय शब्द हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु में निहित विशेषताओं या उसके किसी व्यक्ति के संबंध के कारण भी पर्याय शब्द गढ़ लिये जाते हैं। जैसे लक्षमण को सुमित्रा का पुत्र होने के कारण सौमित्र और कुन्ती के पुत्र होने के कारण अर्जुन को कौंतेय कहा जाने लगा।

शिक्षित और अशिक्षित बर्ग की भाषा में भी स्पष्ट अंतर पाया जाता है। शिक्षित समाज की भाषा में जहाँ अनिवार्यतः भद्र एवं शिष्ट शब्दों का प्रयोग होता है वहीं अशिक्षित अथवा अर्ध शिक्षित बर्ग की भाषा में अशिष्ट और असम्य शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इस कारण से भी भाषाओं में पर्यायों की अभिवृद्धि हुयी उदाहरणस्वरूप ग्रामीण समाज में जोरू शब्द का प्रयोग और पढ़े लिखे समाज में पत्नी का प्रयोग इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप हुआ।

कवि को यह स्वतंत्रता होती है कि अपने भावों को अभिव्यक्ति देने की प्रक्रिया में वह मात्रा, लय और तुक आदि की आवश्यकता पूर्ति के लिये शब्दों को किंचित परिवर्तित रूप दे सकता है अथवा दूसरी भाषाओं से भी शब्द ग्रहण कर सकता है। किसी साहित्यकार द्वारा प्रयुक्त शब्द कभी–कभी इतना प्रचलित हो जाता है कि कवि द्वारा मात्र तुकबंदी के लिये अपनाये उस शब्द का सामान्य भाषा में भी प्रयोग होने लगा। इस प्रकार वह उस भाषा में पूर्वस्थित शब्द का पर्याय बन गया। **कनकसिपु अरू हारक लोचन**। जगत विदित सुरपारी मदमोचन में हिरणाक्ष्य के लिये हाटक लोचन का प्रयोग तुलसी ने निश्चित ही मात्रा, लय और अंत्यानुप्रास की दृष्टि से किया है।[1]

1. मानस 11–22–6

शब्दों का अर्थ विकास भी पर्याप्त सीमा तक शब्दों की पर्यायता की अभिवृद्धि के लिये उत्तरदायी हैं। एक शब्द जिस अर्थ का बाचक था, कालान्तर में उससे कहीं भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार समय की दीर्घावधि को पार कर वह विशिष्ट शब्द किसी अन्य शब्द का समानार्थी बन गया। जैसे **'दुहिता'** शब्द को लिजिये इसका मूल व्युत्पत्तयर्थ था 'दुहने वालीं। आगे चल कर यह शब्द लड़की या पुत्री के रूप में प्रयुक्त होने लगा और रूढ़ हो गया। इसी प्रकार घृणा शब्द पहले दया के अर्थ में व्यवहृत होता था, किन्तु कालांतर में वह जुगुप्सा के अर्थ में ही संकुचित एवं रूढ़ होकर उसका पर्यायवाची बन गया। शब्दों के अर्थ विकास या लोप की इसी प्रवृत्ति के कारण विक्टर ह्यूगो ने भाषाओं को समुद्र के समान कहा है, जिसकी लहरें समय के प्रभाव से एक तट को छोड़ कर दूसरी ओर मुड़ जाती हैं।[1]

कभी–कभी लेखक या कवि किसी शब्द में ऐसा विचित्र परिवर्तन कर देता है कि समान्यतः व्यवहृत न होते हुये भी वह शब्द दूसरे शब्द का पर्याय बन जाता है। तुलसी ने अपनी रचनाओं में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में इसी प्रकार के कई प्रयोग किये हैं। जैसे मेघनाद शब्द के पूर्व पद मेघ के स्थान पर उसके पर्याय (घन–वारिद) रखकर नवीन शब्दों का निर्माण किया है। इस प्रकार घन नाद तथा वारिद नाद मेघनाद के पर्याय बन गये। कुंभज तथा धरज शब्दों में भी यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्दों के चमत्कार पूर्ण प्रयोग की प्रवृत्ति भी पर्याय शब्दों की अभिवृद्धि का कारण बनी।

पौराणिक कथाएं और मिथक भी समानार्थक शब्दों की वृद्धि में बहुत कुछ सहायक सिद्ध हुयी। संस्कृत कोशों में विभिन्न देवी देवताओं के अगणित नाम गिनाये गये हैं। इनका आधार है– किसी विशिष्ट व्यक्ति से सम्वद्ध अनेक घटनायें या उसके व्यक्तित्व के विविध पक्ष और विशेषतायें। यदि कृष्ण चक्र और गोवर्धन धारण करके अपने भक्तों की रक्षा करते हैं तो

---

1. Semantics, Stephen Ullmann P. 149

उन्हें चक्रपाणि और गोवर्धनधारी की संज्ञा दी जाती है। वहीं कृष्ण गोपियों के साथ क्रीड़ा करने और अपनी मुरली माधुरी से आकृष्ट करने के कारण गोपिकारमण और मुरली मनोहर भी कहे जाते हैं। इसी प्रकार युद्ध भूमि में मोह ग्रस्त अर्जुन को शिक्षा देने के प्रसंग में उनका योगीराज नाम बड़ा सार्थक और उपयुक्त ठहरता है। इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति विशेष के जीवन के विविध पक्षों के आधार पर निर्मित पर्यायों की संख्या भी असीम है।

दो वस्तुओं के टकराने से एक विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती होती है। दरवाजे को खटखटाने से उत्पन्न ध्वनि लोहार द्वारा लोहा पीटने की आवज से बिल्कुल अलग होती है। इसी प्रकार पायलों की ध्वनि को यदि रूनझुन कहा जाता है तो किंकिड़ियों के बजने को क्वड़न। भिन्न--भिन्न ध्वनियों के द्योतक विभिन्न शब्द यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य किसी ध्वनि से उत्पन्न प्रभाव को ग्रहण करके उसका नाम करण करता है। इस प्रकार के अनुरणनात्मक शब्दों द्वारा भी पर्याय बन गये। रोड़ा और कंकड़, ठहराना और सरसराना आदि इसी प्रकार के अनुरणनात्मक अथवा ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द बने।

ह्रास परिहास और ब्यंग मानव जीवन का एक विशिष्ट अंग है। इससे जहाँ जीवन की एकरसता का परिसार होता है वहीं यह भाषा की समृद्धि का भी सूचन करता है। भाषा जितनी अधिक समृद्ध होगी उतनी ही उसमें तीखे, पैने और सशक्त व्यंग की क्षमता होगी। व्यंग के कारण ही कई बार भाषा में ऐसे पर्यायों का उद्‌भव हो जाता है कि संदर्भ से पृथक देखने पर उसमें पर्यायता दिखाई नहीं पड़ती परन्तु संदर्भ से जुड़ने पर वह उस अर्थ को बड़ी शक्तिमत्ता से व्यंजित करता है, जैसे सामान्यतः पंडित का अर्थ विद्वान होता है किन्तु व्यंग का पुट लिए हुये वही शब्द विपरीत अर्थ का वाचक हो जाता है। जब किसी मूर्ख व्यक्ति को पण्डित कहा जाता है तब यह शब्द अपने अभिधार्थ की अपेक्षा व्यंगार्थ का द्योतन करने लगता

है और प्रस्तुत प्रसंग में मूर्ख का समानार्थी बन जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति द्वारा अपशब्दों का प्रयोग किये जाने पर दूसरा व्यक्ति व्यंग पूर्वक पूँछ उठता है—अरे ! सुबह—सुबह क्या श्लोक बोलने प्रारम्भ कर दिये ? स्पष्टतः यहाँ श्लोक शब्द गलियों के समानार्थक रूप में प्रयुक्त है, किन्तु वास्तविकता यह है कि सामान्यतः दोनों शब्दों में बहुत बड़ा अंतर है और दोनों की दिशाएं भी सर्वथा विपरीत हैं। भाषा में मिलने वाले इस प्रकार के प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि व्यंग भी पर्याय की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण हेतु है। यह पृथक—पृथक बात है कि इन पर्यायों की पर्यायता व्यंग के प्रसंग से ही अधिक मुखरित होती है, अन्यथा नहीं। तत्वतः लक्षक और व्यंजक शब्दों को बाचक शब्दों का पर्याय नहीं माना जा सकता।

ऐसा भी देखा गया है कि कुछ शब्द जो अपनी प्रारंभिक अवस्था में विशेषण विशेष्य के रूप में प्रयुक्त किये जाते थे, समय के अंतराल से पर्याय रूप में प्रयुक्त होने लगे और आज भी वे इसी रूप में ग्रहण किये जाते हैं, जैसे— कालकूट विष के विशेषण रूप में, बिहंग पक्षी के विशेषण रूप में और **शास्त्री** विटप के विशेषण रूप में प्रयुक्त होता था। परन्तु काल प्रवाह में ये शब्द पर्यायवाची हो गये।

पर्यायों की उद्‌भव प्रक्रिया के संबंध में **डा0 गोविन्द चातक** का मन्तव्य अवलोकनीय है— "पर्यायों के उद्‌भव की प्रक्रिया भी वही है जो शब्दों के उद्‌भव की प्रक्रिया है। शब्द निर्माण की प्रक्रिया में वस्तु या भाव को नाम देने की प्रवृत्ति बड़ा महत्व रखती है, किन्तु कोई भी नामकरण अपने में पूर्ण नहीं होता। प्रायः किसी वस्तु या भाव को जो नाम दिया जाता है, वह किसी एक गुण—धर्म, क्रिया आदि के आधार पर होता है; किन्तु उसके वाद भी उस 'नाम' अर्थात् शब्द में वे समस्त गुण धर्म नहीं आ पाते जो उस वस्तु में होते हैं, फलतः दूसरे गुण—धर्मों, क्रियाओं आदि के आधार पर दूसरे नाम रखने की प्रक्रिया चल पड़ती है।

जितने गुण–धर्म अधिक होंगे, उतने ही अधिक पर्यायों की सम्भावना स्वाभाविक है। . . . . . . .कई शब्दों के जहाँ बहुत कम पर्याय मिलते हैं, वहीं कमल, पवन, अग्नि, राजा, रानी, ... आदि के कई पर्याय मिलते हैं। इस प्रवृत्ति के पीछे वस्तु में निहित गुण और संदर्भ सक्रिय दिखाई देते हैं"।[1]

पर्यायों का महत्व :

इदमंधतम् कृत्सनं जायेत भवनचयम्।

यदि शब्दा हव्यं ज्योतिरा संसारं न दीप्यते।।[2]

यदि सृष्टि के प्रारम्भ में शब्द की ज्योति न जलती होती तो यह त्रिभुवन घोर अंधकार में डूब जाता। यदि शब्द न होते तो सभ्यता और संस्कृति का प्रकाश न होता। न ज्ञान विज्ञान ही होता और न साहित्य की अजस्त्र धारा बहती। बस्तुतः शब्द न होता तो मनुष्य के समक्ष अभिव्यक्ति का संकट ही पैदा न होता, वरन् जीवन और जात की अवधारणा में भी अशक्त सिद्ध होता।

डा0 गोविन्द चातक के अनुसार– **"किसी भी भाषा की अभिवृद्धि में पर्यायों का बहुत बड़ा हाथ होता है, वस्तुतः वे शब्दों के विपुल वैभव को प्रकट करते हैं।"**[3]

पर्यायों का सर्वोपरि और प्रत्यक्ष कार्य है– भाषा के शब्द भण्डार में वृद्धि करना। जिस भाषा का शब्द कोष विशाल है, वह अधिक समृद्ध मानी जाती है। उसी प्रकार एक शब्द के लिये मिलने वाले अधिकाधिक पर्याय शब्द भी किसी भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता को सूचित करते हैं। जैसे हिन्दी में **'देखना'** क्रिया के लिये निहारना, अवलोकना, चितवना आदि अनेक शब्द मिलते हैं। सामान्य प्रयोग की दृष्टि से तो ये एक ही क्रिया के वाचक माने जायेंगे, किन्तु इनके विश्लेषण से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि ये शब्द मुख्यतः **'देखने'** से सम्बद्ध होते

1. वृहद् हिन्दी पर्यावाची शब्दकोश– प्राक्कथन– पृष्ठ– 8
2. काव्यादर्श 1–41
3. वृहद् हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोश प्राक्कथन पृष्ठ– 7

हुये भी उस क्रिया के विविध पक्षों को उद्घाटित करते हैं। **'निहारने'** में जहाँ मुग्धता का भाव है वहाँ 'अवलोकन' में सूक्ष्मतापूर्वक किसी वस्तु के देखने की प्रतीति होती है। इसी प्रकार 'चितवना' प्रेमपूर्वक भाव को व्यंजित करता है। इसके अतिरिक्त यह देखना प्रत्यक्षतः न होकर दृष्टि की भंगिया का भी द्योतन करता है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी भाषा के समानार्थक शब्द ही उसकी सम्पन्नता के महत्वपूर्ण उद्घोषक होते हैं। यह तो स्पष्ट किया जा चुका है कि कोई भी दो शब्द सर्वथा एक ही अर्थ की व्यंजना नहीं करते। अर्थच्छाया और ध्वनि भेद के कारण वे एक ही वस्तु के बोधक होते हुये भी भिन्न अर्थ की प्रतीति कराते हैं, अतः भाषा में एक पदार्थ के लिये जितने पर्याय होंगे वे उसकी विभिन्न विशेषताओं की ओर इंगित करेंगे। यह स्थिति उस भाषा की सबल अभिव्यक्ति क्षमता की द्योतक होने के साथ–साथ उसके शब्द भण्डार की अभिवृद्धि में भी सहायक हैं।

भाषा के साथ–साथ भाषा के प्रयोक्ताओं की अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ाने में भी पर्याय शब्दों के योगदान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भाषा में एक पदार्थ के लिये अनेक शब्दों की उपस्थिति उसके प्रयोक्ता को प्रेरित करेगी कि वह उन शब्दों के अर्थ, अर्थच्छाया और ध्वनियों पर ध्यान देते हुये प्रसंगानुरूप उपयुक्त शब्द का चयन करे। इस प्रकार उद्देश्यानुरूप शब्द प्रयोग जहाँ प्रयोक्ता की विचार शक्ति को पैदा करेगा, वहीं उसकी भाषा भी अधिक प्रभावपूर्ण और व्यंजक हो जायेगी। जैसे वानर और मर्कट एक ही पशु के वाचक हैं किन्तु मर्कट शब्द में **'मर'** और **'कट'** ध्वनियाँ जिस भय और वीभतष्ता की सृष्टि करती हैं वानर में उनका सर्वथा अभाव है। शब्दों का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति इन दोनों शब्दों की पर्यायता को जानते हुये भी प्रसंग और कथ्य के अनुसार ही दोनों में से किसी शब्द का चयन करेगा।

शब्दों का सुविचारित प्रयोग व्यक्ति की शब्दार्थ ज्ञान संबंधी योग्यता का भी परिचायक है। सामान्य व्यक्ति या प्रतिष्ठित लेखक यदि शब्दों के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को दृष्टिपथ में रखते हुये उनका प्रयोग करता है तो धीरे–धीरे यह उसके स्वभाव और शैली का अंग बन जाता है। फिर कहीं भी किया गया शब्दों का अनुपयुक्त प्रयोग उसे खटकने लगता है। स्पष्ट है कि समानार्थक शब्द मनुष्य की भाषा संबंधी योग्यता को बढ़ाने में बहुत महत्व रखते हैं और इनके प्रयोग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के भाषा ज्ञान का अनुभव भी सहज ही किया जा सकता है।

भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया में अनेकबार एक ही अर्थ को व्यक्त करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में एक ही शब्द का पुनः–पुनः प्रयोग एकरसता को जन्म देता है और प्रभावात्मकता तथा शैली के लचीलेपन को भी अवरूद्ध कर देता है। पाठकों को ऊब से बचाने और शैली वैविध्य तथा श्रुति माधुर्य को बनाये रखने में भी पर्याय शब्द महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कवि और कविता, दोनों के लिये पर्याय समर्थ अभिव्यक्ति के विशिष्ट साधन के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यद्यपि कवि भावोद्रेक की स्थिति में सायास शब्द चयन की ओर प्रवृत्त नहीं होता, तथापि भाषा प्रयोग के क्षेत्र में उसकी गति और शब्दार्थ संबंधी परख उसे उपयुक्त शब्द प्रयोग के लिये प्रेरित करती है। अतः वह प्रत्येक शब्द का प्रभावशाली अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार करता है और निस्प्रयोजन शब्दों को कविता पर लादता नहीं। अभिव्यक्ति–सौन्दर्य के अतिरिक्त नाद सौंदर्य के लिये भी कवि पर्याय शब्दों का निर्वाध प्रयोग करता है। तुक, लय आदि की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये या अनुप्रासादि शब्दालंकारों के निर्वाह के लिये वह एक शब्द के स्थान पर दूसरे समानार्थक शब्द को स्वतंत्रता पूर्वक रख सकता है। कोई भी समर्थ कवि अपने काव्य में सौंदर्य की सृष्टि के लिये

पर्याय शब्दों का अबाध प्रयोग करता है। इस प्रकार काव्य में चमत्कार के सन्निवेश एवं काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि में पर्याय सशक्त साधन हैं और प्रतिभाशाली कवियों की जीवन्त रचनायें सिद्ध करती हैं कि ऐसा स्वीकार भी किया गया है। भाषा और शब्दों के उचित प्रयोग के अभाव में कोई भी कृति भावात्मक नहीं हो सकती, यह विदित तथ्य है।

सामान्य बोलचाल में किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त शब्दों के आधार पर हम उसकी शिक्षा–दीक्षा, सभ्यता–संस्कृति एवं मानसिकता का भी सहज अनुमान लगा सकते हैं। मनुष्य द्वारा बोली गयी भाषा उसके हृदय एवं भावनाओं को स्पष्टतः प्रतिबिम्बित करती है। उदाहरणार्थ साहित्यिक एवं सामान्य भाषा में पत्नी के लिये धर्मपत्नी, बीवी, औरत, लुगाई, जोरू आदि शब्द मिलते हैं। इनमें प्रथम शब्द पत्नी को विशिष्ट गौरव प्रदान करता है, अतः पत्नी को समानता के धरातल पर प्रतिष्ठित करने एवं उसके आदर्श स्वरूप की प्रतिष्ठापना करने के प्रसंग में इससे उपयुक्त दूसरा शब्द नहीं मिलेगा। 'बीवी' शब्द मुख्यतः उर्दू भाषी व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त होने वाला शब्द है। इस प्रकार यह संकेत करता है कि इसका प्रयोक्ता अधिकांश प्रसंगों में उर्दू भाषी अथवा तत्सम्बन्धी संस्कृति से प्रभावित होगा। 'जोरू' 'औरत' और 'लुगाई' अशिक्षित या अल्पशिक्षित लोगों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं। इन शब्दों के श्रवण से पत्नी का वह रूप नहीं उभरता, जो प्रथम शब्द से प्रत्यक्ष हो उठता है। ऐसे शब्द निश्चित ही किसी असभ्य एवं गंवार व्यक्ति की भाषा का अंग हो सकते हैं। इस प्रकार ये पाँच शब्द अंततः पत्नी के द्योतक होते हुये भी अपनी विवक्षागत भिन्नताओं के कारण प्रत्येक प्रसंग में परिवर्त्य नहीं हो सकते। एक अर्थ का संकेत करते हुये भी इनमें निहित सूक्ष्म अन्तर अधिक व्यंजनापूर्ण है, जो शब्दों की परख रखने वाले व्यक्ति को विवेकपूर्ण प्रयोग के लिये उकसाता है।

क्लिष्ट शब्दों के अर्थ से अपरिचित व्यक्ति को शब्द विशेष का आशय समझाने में भी पर्याय काफी सीमा तक सहायक होते हैं। जैसे कोई अन्य भाषा–भाषी या कम शिक्षित

व्यक्ति हिन्दी के सरल शब्दों को तो जानता है, लेकिन उसके कठिन शब्दों को समझना उसको कठिन होता है। ऐसी स्थिति में वत्स के लिये पुत्र–बेटा, दुहिता के स्थान पर बेटी, क्रोड़ के लिये गोद पर्याय के लिये समान अर्थक या एक जैसे अर्थ वाले शब्द ही अधिक उपयोगी होंगे।

कोशकारों के कोश निर्माण का आधार भी पर्याय शब्द ही होते हैं। कोशकार एक शब्द को स्पष्ट करने के लिये उससे मिलते–जुलते अर्थ वाले अनेक शब्दों को परिगठित कर लेता है, जिससे उस भाषा को जानने का इच्छुक व्यक्ति सरलतम ढंग से उसके शब्दों से परिचित हो सके। इस प्रकार कोश की सहायता लेने वाला व्यक्ति शब्द विशेष के अर्थ को ही नहीं जान लेता, अपितु उसके समानार्थी अन्य शब्दों को भी सहज ही जानने लगता है। जैसे– **'मार्तण्ड'** शब्द के अर्थ को जानने के लिये यदि किसी कोश की सहायता ली जाय तो जिज्ञासु उसका अर्थ **'सूर्य'** है यह तो जान ही लेता है, इसके अतिरिक्त उसके दिनकर, दिवाकर, तरणि आदि अन्य पर्यायों से भी परिचित हो जाता है।

डा० रामचन्द्र वर्मा ने पर्यायवाची शब्दों के महत्व का निरूपण करते हुये लिखा है, ''भाषा के प्रायोजित और व्यावहारिक क्षेत्र में पर्यायकी के ठीक और पूरे ज्ञान से हमें जितनी अधिक सहायता मिलती है उतनी और किसी चीज या बात से नहीं मिलती। पर्यायकी का मुख्य कार्य है– सभी प्रकार के शब्दों का स्पष्ट रूप हमें बतलाना और उनके अर्थों, आशयों और भावों का क्षेत्र और सीमा निर्धारित करना। जब तक इन सब बातों का हमें अच्छा ज्ञान न हो तब तक न तो, हमारी भाषा में ओज आ सकता है, न प्रभावशालिता और न स्पष्ट भाव व्यंजन। हम अपने अच्छे से अच्छे आशय या भाव तभी स्पष्ट कर सकते हैं जब हमारी भाषा में शब्दों का ठीक और समुचित उपयोग हो। इसके बिना हमारे आशय या भाव कुण्ठित और निस्प्रभ रह जाते हैं।[1]

---

1. शब्दार्थ दर्शन, विषय प्रवेश पृष्ठ– 79

(ख) पर्यायों का वर्गीकरण :

अधिकांश विद्वानों की यही धारणा है कि किसी भी भाषा में दो शब्द बिल्कुल एक अर्थ के व्यंजक नहीं हो सकते। सामान्य भाषा में तो हम किसी शब्द के अर्थ की विशेषता को जाने बिना ही उसका प्रयोग कर लेते हैं, क्योंकि तब हमारी दृष्टि में वे शब्द पर्याय ही होते हैं। इसके अतिरिक्त सुविधा की दृष्टि से भी समानार्थी शब्दों को पर्याय कह दिया जाता है, किन्तु प्रत्येक शब्द के साथ जुड़ा हुआ उसका संवेगात्मक अर्थ इतना महत्वपूर्ण और प्रभावी होता है कि तथाकथित एकार्थी शब्दों के अर्थ में अंतर प्रतीत होने लगता है, जैसे दर्द और पीड़ा, छल और धोखा, घर और मकान आदि शब्द। इसी कारण अधिकांश संदर्भों में एक शब्द के स्थान पर उसके पर्याय दूसरे शब्द का प्रयोग करना कठिन होता है और यदि ऐसा किया भी जाय तो वह शब्द उतने प्रभावपूर्ण ढंग से अर्थ को सम्प्रेषित नहीं कर सकता। कुछ शब्द प्रत्येक संदर्भ में एक दूसरे के स्थान पर परिवर्त्य हो सकते हैं, किन्तु यह स्थिति अवादतः ही परिलक्षित होती है।

पर्यायों की विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुये विद्वानों ने इन्हें विविध शीर्षकों के अंतर्गत वगीकृत किया है। **डा० हरदेव** बाहरी ने पर्यायों के पूर्ण, आंशिक और अनिश्चित– ये तीन प्रकार बताये हैं।[1] उनके अनुसार पूर्ण पर्याय वे हैं जिनका प्रत्येक प्रसंग में एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सके और अर्थ पर उसका विशेष प्रभाव न पड़े। जैसे– वस्त्र और कपड़ा, वायु और पवन आदि। आंशिक पर्यायों में उन्होंने ऐसे शब्दों की गणना की है, जो कुछ संदर्भो के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर समानार्थक हैं। इसमें भी उन्होंने दो कोटियाँ मानी हैं। एक में वे शब्द आते हैं, जो मूलतः पर्याय थे, किन्तु बाद में चलकर भिन्नार्थक हो गये। जैसे– तमिल का 'कुली' और फारसी का 'मजदूर शब्द' दूसरा वर्ग उन शब्दों का है, जो विद्वानों की

---

1. Hindi Semantics P. 123-124.

दृष्टि में तो अंतर की उपेक्षा रखता है, परन्तु सामान्य व्यक्ति उन्हें पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त करता है। जैसे– मन, हृदय, दिल और जी। इनके अतिरिक्त पूर्ण भिन्नार्थक होते हुये भी शिथिलता पूर्वक पर्याय रूप में प्रयुक्त होने वाले अथवा सामान्यतः पर्याय माने जाते हुये भी विद्वानों द्वारा भिन्नार्थक स्वीकार किये जाने वाले शब्दों को डा0 बाहरी ने अनिश्चित पर्याय कहा है। जैसे– चाकू और छुरी, दया और कृपा आदि शब्द।

डा0 भोलानाथ तिवारी[1] और **डा0 बद्रीनाथ कपूर**[2] ने भी शब्द भेद से पूर्ण पर्यायता की स्थिति को स्वीकृति दी है। डा0 तिवारी ने इन्हें एकार्थी पर्याय कहते हुये एक कोष्ठक में उनके लिये 'पूर्णपर्याय' का भी प्रयोग किया। डा0 बद्रीनाथ कपूर ने पर्यायों की कोटि निर्धारण करते हुये उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया है। तृतीय वर्ग में उन्होंने उन पर्यायों को रखा है जिनके सामान्य अर्थ में सभी विवक्षायें समान रूप से अंतर्निहित हों। वस्तुतः यही स्थिति अन्य विद्वानों द्वारा पूर्ण पर्यायता की स्थिति मानी गयी है, जिसमें बहुत अधिक अर्थभेद न होने के कारण एक शब्द दूसरे समानार्थी शब्द के स्थान पर बेखटके प्रयुक्त किया जा सकता है। **जोन लियोन्स**[3] और **उल्मान**[4] ने भी सर्वांश समानार्थता और शुद्ध पर्यायता की स्थिति को स्वीकार किया है, किन्तु वे यह भी मानते हैं कि ऐसे शब्द अत्यल्प संख्या में पाये जाते हैं।

पर्याय शब्द के प्रयोग की कसौटी पर कृति की सफलता असफलता का विवेचन करने से पूर्व उसकी सम्यक अवधारणा के लिये उसमें प्रयुक्त शब्दों का वर्गीकरण अपेक्षित है। पूर्वोक्त पर्यायों के विविध रूप विभिन्न वर्ग ही हैं तथापि अर्थ ग्रहण एवं संप्रेषण की सुविधा के लिये शब्दार्थ– विवेचक विद्वानों ने पर्याय शब्दों का अन्य प्रकार से भी वर्गीकरण किया है। पर्यायता की दृष्टि से शब्दों का विवेचन करने के लिये उन्हें इस प्रकार के वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. भाषा विज्ञान पृष्ठ– 238
2. हिन्दी पर्यायों का भाषागत अध्ययन, पृष्ठ– 29
3. सैद्धान्तिक भाषा विज्ञान–अनु0 सत्यकाम वर्मा, पृष्ठ– 446
4. The Principal of Semantics, P. 108

(क) स्वर्ग देवताओं आदि से सम्बन्ध रखने वाले शब्द–

जैसे– अमृत, सुरलोक, असुर, देवी–देवताओं के नाम, देवताओं के आयुधों के पर्याय।

(ख) पृथ्वी (इहलोक) से सम्बद्ध शब्द–

जैसे– पर्वत, गुफाएं, घास, धातुयें, फूल पत्ते, पशु–पक्षी, विविध धान्य और व्यंजन।

(ग) पाताल से सम्बद्ध शब्द–

जैसे– नरक, मृत्यु, कीट, सर्प, समुद्र, सरिता, नाव, कमल आदि।

(घ) सामान्य शब्द–

जैसे– समूह, सुन्दर, प्रधान, शंका, भीषण, भयावह, नवीन, कृश, कृपा आदि।

संस्कृत के हलायुध कोश तथा अमरकोश में शब्दों का इसी प्रकार से वर्गीकरण किया गया है, किन्तु ऐसे वर्ग–विभाजन में अति व्याप्ति का दोष स्पष्ट देखा जा सकता है। हलायुध कोश में वृक्ष, फूल, पत्तों आदि की गणना तो 'पृथ्वीकांड' में की गयी है, जबकि कमल एवं उसके विविध पर्यायों को 'पातालकाण्ड' में रखा गया है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के वर्गीकरण में भ्रम की सम्भावना बनी रह सकती है कि किसी शब्द को किस वर्ग में रखा जाय। यदि हलायुध कोश में दिये गये काण्डों के अतिरिक्त कुछ अन्य काण्डों को भी स्वीकार कर लिया जाय तब भी यह समस्या बनी रहेगी। जैसे– वृक्ष, पुष्प, पत्ते, फल, धान्य आदि से सम्बद्ध शब्दों के लिये 'वनस्पति वर्ग' की अलग से कल्पना की जाय तो यह प्रश्न हो सकता है कि वनस्पतियों का उद्‌भव स्थान पृथ्वी होने पर भी उन्हें पृथ्वी वर्ग में स्थान क्यों नहीं दिया गया। यदि ऐसा न किया जाय तो इतने व्यापक शब्द भण्डार को केवल चार शीर्षकों में समंजित करना बहुत कठिन हो जायेगा। यदि ऐसा कर भी लिया जाय तो यह विभाजन अधिक वैज्ञानिक और प्रभावपूर्ण सिद्ध नहीं होगा।

व्याकरण वेत्ताओं ने शब्दों के संज्ञा, सर्वनाम आदि भेदों की गणना की है और ये भेद सर्वमान्य भी हैं। ये वर्ग भिन्न–भिन्न विशेषताओं वाले प्रायः सभी शब्दों को अपने में समेट लेते हैं। संज्ञा शब्दों को क्रियाओं के वर्ग में नहीं रखा जा सकता, क्रियायें सर्वनामों में सर्वथा भिन्न हैं और सर्वनामों को विशेषण नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार इन सभी वर्गों में शब्दों का विभाजन करते हुये इस प्रकार के अनिश्चय एवं भ्रम की सम्भावना कम ही होगी कि अमुक शब्द अमुक वर्ग में आयेगा अथवा नहीं। इसी प्रकार को आधार मानकर किया गया वर्गीकरण अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी और सर्वमान्य होने के कारण विवादास्पद भी नहीं रहेगा।

मुल्ला दाऊद और **कुतबन सूफी** कवि थे। दोनों कवियों ने अपने प्रेम काव्य ग्रन्थों में भावाभिव्यक्ति एवं काव्य माधुर्य के हेतु अनेक पर्यायों का आश्रय लिया है। उन्होंने अपने अभीष्ट अर्थ की प्रभावशाली अभिव्यंजना के लिये व्यक्तिवाची, जातिवाची तथा भाववाची संज्ञायों, गुणबोधक विशेषणों और व्यापार–द्योतक क्रियाओं का स्थान–स्थान पर साभिप्राय एवं सटीक प्रयोग किया है। अतः प्रस्तुत प्रबंध के अंतर्गत मुल्ला दाऊदकृत 'चंदायन' एवं कुतबन कृत मृगावती में प्रयुक्त महत्वपूर्ण संज्ञायों, विशेषणों, और क्रियापदों का अनुशीलन अभीष्ट है।

= = = = =0= = = = =

प्रकरण—2

विवेच्य कृतियों और कृतिकारों का परिचय

(क) मुल्ला दाऊद और उनकी 'चंदायन'

(ख) कुतवन और उनकी 'मृगावती'

(ग) आलोच्य कृतियों में व्यवहृत शब्द भण्डार

(2) विवेच्य कृतियों और कृतिकारों का परिचय

(क) मुल्ला दाऊद और उनकी 'चन्दायन' :

हिन्दी साहित्य का इतिहास स्पष्ट करता है कि अनेक कृतिकार और उनकी कृतियाँ, जो आँखों से ओझल थीं, फ्रेंच मनीषी गार्सा द तासी और अंग्रेज विद्वान ग्रियर्सन ने अपनी पैनी दृष्टि से उनको खोजकर प्रस्तुत किया। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** कृत **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** भी तमाम अप्राकाशित तथ्यों को प्रकाशित करने में सक्षम प्रतीत होता है। परन्तु मुल्ला दाऊद और उनकी चंदायन इन तीनों मनीषियों की दृष्टि में न आ सकीं।

मौलाना दाऊद का सर्वप्रथम उल्लेख सन् 1928 में लिखित 'मिश्रबंधु विनोद' में आया है। मिश्र बंधु ने लिखा है, "मुल्ला दाऊद अमीर खुसरो का समकालीन था। उसका कविता काल सम्वत् 1385 के लगभग था। इसने नूरक और चन्दा की प्रेम कथा हिन्दी में रची। मिश्रबंधु विनोद में इस तथ्य को किस आधार पर उजागर किया इसका जिक्र नहीं है।"

'मिश्रबंधु विनोद' के बाद हरिऔधकृत 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' प्रकाशित हुआ। हरिऔध ने उसमें लिखा है, "अमीर खुसरो का समकालीन एक और मुल्ला दाऊद नामक ब्रजभाषा का कवि हुआ। कहा जाता है कि उसने नूरक और चन्दा की प्रेम कथा नामक दो हिन्दी पद्य ग्रंथों की रचना की, किन्तु ये दोनों ग्रंथ अप्राप्य से हैं। इसलिये इसकी रचना की भाषा के विषय में कुछ लिखना असम्भव है।"

'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' भी अपना आधार स्पष्ट नहीं करता है। 1936 में पीताम्बर दत्त बर्थवाल ने एक खोजपूर्ण निबंध 'द निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री' प्रकाशित कराया। इस निबंध में मुल्ला दाऊद के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है, "सबसे पुराना ज्ञात प्रेमाख्यान कवि मुल्ला दाऊद मालूम होता है, जो अलाउद्दीन के

राजत्वकाल विक्रम सम्वत् 1497 (1439 ई0) के आस–पास विद्यमान था, परन्तु मुल्ला दाऊद भी आदि प्रेमाख्यान कवि था या नहीं, कह नहीं सकते। उसकी नूरक चन्दा की कहानी का हमें नाम ही मालूम है।''

वर्थवाल भी मुल्ला दाऊद और उनकी चन्दायन की आधार पृष्ठभूमि स्पष्ट करने में असमर्थ प्रतीत होते हैं।

1938 मे रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नाम से शोध निबंध लिखा। रामकुमार वर्मा ने इसमें लिखा है, ''खुसरो का नाम जब समस्त उत्तरी भारत में एक महान कवि के रूप में फैल रहा था, उसी समय मुल्ला दाऊद का नाम भी हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आता है। मुल्ला दाऊद की एक प्रेम कहानी प्रसिद्ध है, उसका नाम है चन्दावन या चन्दावत। यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है और इसके सम्बन्ध में कुछ भी प्रमाणित रूप से ज्ञात नहीं है।''

रामकुमार वर्मा ने अपने निबंध में मुल्ला दाऊद को अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन बताया है। उनका कविता काल विक्रम सम्वत् 1375 (1917 ई0) बताया है। रामकुमार वर्मा ने भी अपनी बात कहने का आधार नहीं बताया है।

मुल्ला दाऊद और उनकी कृति चन्दायन के सम्बन्ध में आधार सहित बात ब्रजरत्न दास द्वारा विक्रम सम्वत् 1998 (1940 ई0) में 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पहलीबार कही गयी है। 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास' में मुगल काल के इतिहासकार अब्दुर्कादिर बदायूनी कृत 'मुनतखब–उततवारीख' से प्राप्य इस तथ्य का उल्लेख मिलता है। बदायूनी ने लिखा है, ''सन् 772 (हिजरी) (1970 ई0) में बजीर खानजहाँ की मृत्यु हुयी और उनका जौनाशाह नाम पुत्र उसी पद पर प्रसिद्ध हुआ और उसी के नाम से मौलाना

दाऊद नें चन्दायन (चन्दावन) को, जो हिन्दवी भाषा का एक मसनवी है, जिसमें लोरक (नूरक) और वास्तविक अनुभव से परिपूर्ण है, पद्यवत किया। इस देश में अत्यंत प्रसिद्ध होने के कारण उसकी (चन्दायन) प्रशंसा अपेक्षित नहीं है। दिल्ली में मखदूम शेख तकीउद्दीन वायज रब्बानी इसके कुछ सार्थक पद मेंबर (ब्यासपीठ) से पढ़ा करते थे और उनके सुनने का लोगों पर विशेष प्रभाव पड़ता था। उस समय के कुछ विद्वानों ने शेख से पूँछा कि इस हिन्दी मसनवी के अपनाने का कारण क्या है तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह जौक (रूचि) के समस्त तत्वों तथा अर्थों से युक्त है तथा प्रेम और भक्ति के जिज्ञासु लोगों के उपयुक्त है। (उसमें) कुरान के कतिपय आयतों की व्याख्या है और वह हिन्दी के श्रेष्ठ जनों के अनुसार है। इसको पढ़कर लोग हृदयरूपी अहेर को आकृष्ट करते हैं।

बदायूनी की **'मुनतखव–उत–तवारीख'** के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि–

(क) दाऊद मुल्ला नहीं मौलाना कहे जाते थे।

(ख) उनकी कृति का नाम चन्दायन है, जो नुक्तों के कारण चन्दावत या चन्दायन बन गयी।

(ग) चंदायन में लौरक और चन्दा की प्रेम कहानी का उल्लेख है।

(घ) चन्दायन की रचना फीरोज शाह तुगलक के समय (1351–1388 ई0) के बीच जौनाशाह के मंत्रित्वकाल में 772 हिजरी (1370 ई0) के बाद हुयी थी।

उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के गजेटियर में डलमऊ नगर के ऐतिहासिक विवरण में भी मौलाना दाऊद और उनकी चन्दायन का जिक्र आया है, "अल्तमश के शासनकाल में इस नगर (डलमऊ) ने समृद्धि प्राप्त की। उसके समय में यहाँ मखदूम बदरूद्दीन रहा करते थे। तत्पश्चात् फिरोजशाह तुगलक के समय तक उन्नति पर था। उसने जनता में

मुस्लिम सिद्धान्तों के प्रसार के निमित्त यहाँ एक विद्यालय स्थापित किया था। इस विद्यालय की उपयोगिता का अनुमान डलमऊ निवासी मुल्ला दाऊद द्वारा सम्पादित 'चन्दैनी' नामक भाषा पुस्तक को देख कर किया जा सकता है।"

अवध का प्रादेशिक गजेटियर भी इसी तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट कर रहा है, "फिरोज शाह तुगलक ने यहाँ (डलमऊ) मुस्लिम धर्म और विद्या के अध्ययन के लिये विद्यालय की स्थापना की। इसकी उपयोगिता इस बात से प्रकट है कि डलमऊ के मुल्ला दाऊद नामक कवि ने 779 हिजरी में भाषा में 'चंदैनी' नामक ग्रंथ का सम्पादन किया।"

1944 में श्याम सुन्दर दास द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य का तृतीय परिवद्धित संस्करण प्रकाशित हुआ, लेकिन उसमें भी दाऊद और चन्दायन की विस्तृत चर्चा नहीं है। सम्वत् 2007 (1951 ई0) में परशुराम चतुर्वेदी ने सूफी प्रेम काव्य के अवतरणों का संग्रह सूफी काव्य संग्रह के नाम से सृजित किया। उसमें दाऊद के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है, "इस रचना का सर्वप्रथम उल्लेख हि0 सन् 772 शासनकाल (सम्वत् 1408–1445) में हुआ है।" अलाउद्दीन खिलजी का शासन काल सं0 1352–1373 है। डा0 रामकुमार वर्मा ने मुल्ला दाऊद को इसी समय का माना है।

मुल्ला दाऊद के सम्बन्ध में आगे चलकर 1953 में डा0 कमल कुलश्रेष्ठ का शोध निबंध 'हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य' प्रकाशित हुआ। इस निबंध में पूर्व में प्राप्त तथ्यों को ही संकलित किया गया है। इसमें डा0 कमल कुलश्रेष्ठ ने बदायूनी के कथन को आधार मानते हुये लिखा है कि चन्दायन का रचना काल वि0 सं0 1427 के आस–पास था। इस निबंध में मौलिकता की दृष्टि से इस तथ्य को निरूपित किया है कि अभी तक जितने भी विद्वानों ने दाऊद मुल्ला और चन्दायन के सम्बन्ध में लिखा है उन्हें चन्दायन की मूल प्रति उपलब्ध नहीं

हुयी है। एक प्रति डा0 धीरेन्द्र वर्मा ने अवश्य देखी है, जिसकी प्रमाणिकता के सम्बन्ध में किसी ठोस आधार का उल्लेख नहीं है। कुलश्रेष्ठ जी ने 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' में एक वाद टिप्पणी में इस सम्बन्ध में एक बात का उल्लेख किया है, ''बीकानेर के श्री पुरूषोत्तम शर्मा के पास इस ग्रंथ की एक प्रति है। शर्मा जी ने यह पोथी एक सज्जन द्वारा प्रयाग भेजी थी, परन्तु उन्होंने पोथी की जाँच अच्छी तरह धीरेन्द्र वर्मा को नहीं करने दी।''

1955 ई0 में सूफी काव्य से सम्बन्धित तीन ग्रंथ प्रकाशित हुये। **हरीकांत श्रीवास्तव** कृत 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य', **विमल कुमार जैन** कृत 'सूफी मत और हिन्दी साहित्य' और सरला शुक्ला कृत 'जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि'। इन तीनों निबंधों में दाऊद मुल्ला और उनकी चन्दायन के सम्बन्ध में खोज परक तथ्यों का अभाव है।

आश्चर्य की बात यह है कि 1950 ई0 में अमरचन्द नाहटा ने 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका में 'मिश्रबंधु विनोद की भूलें' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था, जिसमें मिश्रबंधु के दाऊद सम्बन्धी कथन की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये लिखा है, ''रावतमल सारस्वत को 'नूरचन्दा' की प्रेम कहानी की एक प्रति मिली है और उस प्रति के एक कड़वक के अनुसार चंदायन की रचना 781 हिजरी में हुयी थी।'' इस तथ्य परक जानकारी के वाद भी 1950 इ0 से लेकर 1956 ई0 तक 'चन्दायन' की मूल प्रति किसी भी शोधार्थी को दृष्टि में न आ सकी।

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्ता ने दाऊद मुल्ला और उनकी चन्दायन की खोज के सम्बन्ध में स्व लिखित ग्रंथ **'चंदायन'** के आदि में इस प्रकार उल्लेख किया है, ''चंदायन की प्रतियों की खोज का वास्तविक कार्य ऐसे लोगों ने आरम्भ किया. जिनका सम्बन्ध हिन्दी साहित्य से कम पुरातत्व और इतिहास से अधिक है। यह कार्य उन्होंने 1952–1953 ई0 में ही आरम्भ कर दिया था। चन्दायन की ओर सर्वप्रथम ध्यान बासुदेवशरण अग्रवाल का गया।

उन दिनों वे मलिक मुहम्मद जायसी के पदमावती की संजीवनी व्याख्या प्रस्तुत करने में लगे थे। रायपुर के रजा पुस्तकालय में फारसी लिपि में अंकित पद्मावत की जो प्रति है, उसके प्रथम पृष्ठ पर उन्हें चंदायन शीर्षक के साथ उक्त ग्रंथ की चार पंक्तियाँ अंकित मिली। इन पंक्तियों को उन्होंने पहले एक लेख में फिर अपनी पदमावत की भूमिका में उद्धृत किया।"

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्ता ने 'चंदायन' की भूमिका में स्पष्ट किया है कि काशी विश्वविद्यालय के भारत कला भवन में संग्रहीत अपभ्रंश शैली के 6 चित्र दाऊद मुल्ला कृत चंदायन के ही पृष्ठ हैं। डा0 गुप्त के ही शब्दों में, "मैंने इन चित्रों के आलेखों की परीक्षा की और उन आलेखों में जहाँ–तहाँ लौरक और चंदा का नाम पाकर मुझे इस बात में तनिक भी संदेह न रहा कि वे पृष्ठ चंदायन के ही हैं।"

पंजाब संग्रहालय में भी दाऊद मुल्ला कृत चंदायन के 24 पृष्ठ उपलब्ध थे, जो आज भारत और पाकिस्तान के संग्रहालयों में उललब्ध है। 14 पृष्ठ लाहौर संग्रहालय में और 10 चित्र पटियाला स्थित राजकीय संग्रहालय में उपलब्ध हैं। इन चित्रों की विस्तृत विवेचना कार्ल खण्डालावाला ने मुम्बई की कला पत्रिका मार्ग में की है।

रामपुर, काशी और पंजाब की इन तीन प्रतियां के अतिरिक्त एक चौथी प्रति की जानकारी 1953–54 में हुयी। पटना कालेज के इतिहास के प्राध्यापक सैयद हसन असकरी को इस महत्वपूर्ण खोज का श्रेय जाता है।

1954 ई0 में भारतीय पुरातत्व विभाग के अरबी–फारसी अभिलेखों के ज्ञाता जियाउद्दीन अहमद देशाई ने भोपाल में कुछ पृष्ठ दृष्टिगत हुये। उनको देख कर देशाईजी ने चन्दायन के ही पृष्ठ होने की पुष्टि की।

इग्लैंड में मानचेस्टर स्थित जान रीलैंडस पुस्तकालय में चंदायन की एक प्रति उपलब्ध है। इस प्रति में आदि और अंत के तथा कुछ बीच के पृष्ठ अनुपलब्ध हैं।

उपरियुक्त विवेचना से परिलक्षित होता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में विद्वजन चंदायन और उसके कृतिकार मुल्ला दाऊद का अपने शोध ग्रंथों में केवल नाम का ही उल्लेख करते रहे हैं लेकिन आज साहित्य जगत में चन्दायन ने भी एक स्थान प्राप्त कर लिया है।

<u>उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर मुल्ला दाऊद का परिचय</u> :

मौलना दाऊद मध्यकालीन साहित्य की एक प्रधान परम्परा के कवि थे। इन्होंने एक नवीन काव्य धारा को जन्म दिया। जो भारतीय न होकर पैगम्बरी मतवाद से सम्बन्धित थी। इस पर सूफी सिद्धान्तों एवं साधनाओं का प्रभाव था। भारत में भारत वासियों के लिये रची जाने के कारण इस पर भारतीय साहित्य, धर्म एवं दर्शन की विभिन्न विचार धाराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस विचारधारा के आधार पर साहित्य सृजन करने के कई कारण हो सकते हैं।

1. इसकी उद्भावना के मूल में कुछ राजनैतिक कारण भी थे।

2. इसका उदय धर्म प्रचार के लक्ष्य को लेकर हुआ। इस धारा के अधिकतर कवि उच्चकोटि के साधक एवं संत थे। उनकी वाणी में अनुपम रस धारा प्रवह्मान है। मुसलमानों के आगमन के साथ यह विचारधारा भी आयी, जिसको लाने का श्रेय सूफी संतों का था। इसके उदय का कोई आकस्मिक कारण नहीं था बल्कि इसके मूल में तत्कालीन परिस्थितियाँ थीं।

सूफी काव्य धारा का साहित्यिक महत्व यह है कि उस युग में हिन्दी का प्रचार कम था। साहित्य रचना के क्षेत्र में उसकी प्रतिष्ठा अधिक न थी। प्रेम कथाओं के लेखन की परम्परा भी अधिकतर संस्कृत में ही थी। हिन्दी में लोरिक–चंदा की प्रेम कथा लिख कर दाऊद

ने महत्वपूर्ण कार्य किया। लोकगाथा में लोकजीवन को लोकभाषा के माध्यम से प्रस्तुत कर दाऊद ने अद्वितीय कार्य किया।

<u>चन्दायन की रचना तिथि अन्तर साक्ष्य के आधार पर</u> :

चन्दायन की रचना के सम्बन्ध में दाऊद मुल्ला ने इस प्रकार लिखा है–

बरिस सात सें होइ इक्यासी।

तिहि जाह कवि सरसेऊ भासी।।[1]

साहि फिरोज दिल्ली सुल्तानू।

जौना साहि बजीर बखानू।।[2]

डलमऊ नगर बसै नवरंगा।

ऊपर कोट तले वह गंगा।।[3]

धरमी लोग बसहिं भगवंता।

गुन गाहक नागर जसवंता।।[4]

मलिक वयॉ पूत उधरन धीरू।

मलिक मुबारिक तहॉ कै मीरू।।[5] (कड़वक 17)

चंदायन के उक्त कड़वक के आधार पर दाऊद मुल्ला ने इस कृति की रचना 781 हिजरी (सन 1386) में की थी। पंक्तियों के आधार पर उस समय फिरोज शाह तुगलक दिल्ली का सुल्तान था और उसका मंत्री जौनाशाह था।

चंदायन की रचना डलमऊ में निवास करके की। डलमऊ उ0 प्र0 में रायबरेली जनपद का एक प्रसिद्ध नगर है। इस क्षेत्र में अत्यंत प्रसिद्ध होने के कारण उसकी (चंदायन) प्रशंसा अपेक्षित नहीं है। दिल्ली में मखदूम शेख तकीउद्दीन वायज रब्बानी इसके कुछ सार्थक

पद मेंवर (व्यासपीठ) से पढ़ा करते थे और उनके सुनाने का लोगों पर विशेष प्रभाव पड़ता था। उस समय के कुछ विद्वानों ने शेख से पूँछा कि इस हिन्दवी मसनवी के अपनाने का कारण क्या है ? तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह जौक (रूचि) के समस्त तत्वों तथा अर्थों से युक्त है तथा प्रेम भक्ति के जिज्ञासु लोगों के उपयुक्त है।

(उसमें) कुरान की कतिपय आयतों की व्याख्या है और वह हिन्दी के श्रेष्ठ जनों के अनुसार है। इसको पढ़कर लोग हृदयरूपी अहेर को आकृष्ट करते हैं।

मुनतखब–उत–तवारीख के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि–

1. दाऊद मौलाना कहे जाते थे।
2. उनकी रचना का नाम चंदायन है।
3. इस ग्रंथ लोरक और चंदा की प्रेम कहानी है।
4. चंदायन की रचना दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के समय (1351–1388 ई0 के बीच) जौनाशाह के मंत्रित्व काल में 772 हिजरी (1370 ई0) के बाद किसी समय हुयी थी।

<u>मुल्ला दाऊद के मार्गदर्शक :</u>

सेख जैनदी हौ पथिलावा

धरम पंथ जिंह पाय गँवावा (कड़वक 9)

मौलाना दाऊद के गुरू शेख जैनुद्दीन थे। शेख जैनुद्दीन हजरत नसीरूद्दीन **'चिराग–ए–दिल्ली'** की बड़ी बहिन के बेटे थे। बड़ी बहिन के बेटे होने के साथ–साथ वे उनके प्रमुख शिष्य भी थे।

<u>बहिरसाक्ष्य</u> :

दाऊद मुल्ला और उनकी कृति चंदायन के सम्बन्ध में कतिपय शोध ग्रन्थों में कुछ तथ्य उपलब्ध हुये हैं, जिनका उल्लेख निम्नवत् है–

1. **'मुनतखब–उत–तवारीख'** मुगलकाल के सुप्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूनी की यह प्रसिद्ध रचना है। यह ग्रंथ फारसी में लिखा गया है। इस ग्रंथ के द्वारा मुल्ला दाऊद और उनकी चंदायन के सम्बन्ध में तथ्य परक सामग्री उपलब्ध है। बदायूनी ने दाऊद मुल्ला और चंदायन के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है, ''सन् 772 हिजरी (1370 ई0) में बजीर खान जहाँ की मृत्यु हुयी और उनका जौनाशाह नामक पुत्र उसी पद पर प्रसिद्ध हुआ और उसी के नाम से मौलाना दाऊद ने चंदायन (चन्दावन) को, जो हिन्दवी भाषा का एक मसनवी है, जिसमें लौरक (नूरक) और चंदा नामक प्रेमी प्रेमिका का वर्णन है और वास्तविक अनुभव से परिपूर्ण है, पद्यवत किया।
2. गजेटियर आवद प्राविंस आफ अवध (भाग–1, सन् 1858 ई0 में प्रकाशित पृ0 355) फिरोजशाह तुगलक ने यहाँ (डलमऊ) मुस्लिम धर्म और विद्या के अध्ययन के लिये एक विद्यालय की स्थापना की। इसकी उपयोगिता इस बात से प्रकट है कि डलमऊ के मुल्ला दाऊद नामक कवि ने 779 हिजरी में भाषा में **'चंद्रैनी'** नामक ग्रंथ का सम्पादन किया। इसमें दाऊद को मुल्ला कहा गया है। रचना का नाम 'चंद्रैनी' दिया गया है तथा रचना काल 779 हिजरी बताया गया है। दाऊद का समय तथा स्थान फिरोजशाह तुगलक का राजत्व काल तथा डलमऊ नगर दिया हुआ है।
3. डिस्ट्रिक्स गजेटियर आफ द यूनाइटेड प्राविन्सेज (भाग 39, रायबरेली, पृष्ठ 162) रायबरेली जिले के गजेटियर में डलमऊ नगर के इतिहास के प्रसंग में इस प्रकार

उल्लेख है, "अल्तमश के शासन काल में इस नगर (डलमऊ) ने समृद्धि प्राप्त की। उसके समय में यहाँ मखदूम बदरूद्दीन रहा करते थे। तत्पश्चात् फिरोजशाह तुगलक के समय तक उन्नति पर था। उससे जनता में मुस्लिम सिद्धान्तों के प्रसार के निमित्त यहाँ एक विद्यालय स्थापित किया था। इस विद्यालय की उपयोगिता का अनुमान डलमऊ निवासी मुल्ला दाऊद द्वारा सम्पादित 'चन्द्रैनी' नामक भाषा पुस्तक को देखकर किया जा सकता है। इससे भी पहले वाले गजेटियर की सूचनायें हैं। केवल रचना तिथि इसमें दी गयी है, जो इसमें नहीं हैं।"

4. **'अखवार–उल अखवार'**, अकबर कालीन शेख अब्दुलहक की कृति है। इसके द्वारा दाऊद के गुरू शेख जैनुद्दीन के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। इसके अनुसार दाऊद के गुरू शेक्ष जैनुद्दीन 'चिराग–ए–दिल्ली' के नाम से प्रसिद्ध चिस्तीसंत नसीरूद्दीन अवधी की बड़ी बहिन के बेटे थे। बहिन के बेटे होने के साथ ही वे हजरत नसीरूद्दीन के शिष्य भी थे और खैर–उल–मजालिश के अनुसार उनके 'खरीद में खास' थे। हजरत नसीरूद्दीन अवधी के सम्बन्ध में तो कहने की आवश्यकता नहीं कि वे दिल्ली के सुप्रसिद्ध संत हजरत निजामुद्दीन औलिया के प्रमुख शिष्य और उत्तराधिकारी थे।

इस प्रकार दाऊद चिश्ती संत परम्परा की दिल्ली वाली प्रधान शाखा से सम्बन्ध रखते थे। अंतरसाक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य के आधार पर दाऊद के जीवन वृत्त निर्माण का निम्नवत प्रयास किया जा सकता है।

चंदायन में दाऊद ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है अंतरसाक्ष्य एवं वहिर्साक्ष्य द्वारा उनकी जन्मतिथि एवं मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती है। उनके वैयक्तिक जीवन की कोई विस्तृत सूचना नहीं प्राप्त होती है। उनकी रचना की तिथि 781

हिजरी ही है, जो विक्रमीय सम्वत् 1436 के बराबर होती है। अतएव सम्वत 1400 के आसपास उनका जन्म एवं सं0 1474 के आसपास उनके निधन का अनुमान किया जा सकता है।

दाऊद ने रचना का स्थान दलमॉ (डलमऊ) नगर बताया है, जो गंगा तट पर स्थित था। उ0 प्र0 के रायबरेली जिले में आज भी डलमऊ एक प्रसिद्ध कस्बा है। अवध के प्रादेशिक और रायबरेली के जिला गजेटियर में लिखा गया है कि दिल्ली के सुल्तान अल्तमश के शासन काल में इस नगर ने समृद्धि प्राप्त की थी। उसके समय में वहॉ मखदूम बदरूद्दीन रहा करते थे। फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में इस्लाम धर्म और विधा के अध्ययन के लिये एक विद्यालय की स्थापना हुयी थी। इस विद्यालय की उपयोगिता का अनुभव डलमऊ निवासी मुल्ला द्वारा सम्पादित 'चन्द्रैनी' नामक भाषा पुस्तक को देखकर किया जा सकता है। इस उदाहरण से दाऊद के जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। उनका विद्यालय से सम्बन्ध था। सम्भव है दाऊद उस विद्यालय में अध्यापन करते रहे हों क्योंकि विद्यालय की उपयोगिता के संदर्भ में उनकी रचना का उल्लेख किया गया है। इसमें दाऊद को मुल्ला कहा गया है। उनके नाम के साथ इस शब्द का प्रयोग कई जगह मिलता है, किन्तु दाऊद को मौलाना कहना ज्यादा उपयुक्त लगता है। विद्यालय से सम्बन्धित दाऊद मुल्ला (धर्माध्यक्ष) की अपेक्षा मौलाना (विद्वान) ही लगते हैं। प्राचीन ग्रंथों में मुल्ला का उनके नाम के साथ प्रयोग नहीं मिलता है। बदायूनी ने मुनतखव–उत–तवारीख में उन्हें मौलाना दाऊद कहा है। रचना के एक कड़वक में दाऊद का नाम आता है, उसके एक पाठ में मौलाना उपाधि का प्रयोग मिलता है। यह बात निश्चय के साथ कही जा सकती है कि यह उपाधि कवि ने अपने नाम के साथ स्वतः न रखी होगी। परन्तु इससे इस बात का समर्थक प्राप्त होता है कि दाऊद को मौलाना की उपाधि मिली थी।

एक **'मौलाना जादा'** दाऊद का उल्लेख इतिहास में मिलता है। (तारीखे फीरोजशाही पृष्ठ 111, तथा तरीखे मुबारक शाही पृ0 121) लेकिन उक्त ग्रंथों में ऐसे तथ्य परक प्रमाण उपल्व नहीं हैं, जिनके माध्यम से यह सिद्ध किया जा सके कि **'चंदायन'** के रचयिता दाऊद मुल्ला और **'मौलाना जादा दाऊद'** एक ही व्यक्ति हैं। यदि **'मुल्ला दाऊद'** और 'मौलाना जादा दाऊद' एक ही व्यक्ति होते तो निश्चित ही वह 'चंदायन' में 'कहीं' न कही अपने को 'मौलाना जादा दाऊद कहते।

चंदायन का नामकरण :

चंदायन के 'विसहर खण्ड' के अंत में एक कड़वक आता है, जिसमें रचना के नाम का उल्लेख हुआ जान पड़ता है–

दाऊद कवि चांदायनि गाई।

जेहंरे सुना सो गा मुरझाई।।

धनि ते बोल धनि लेखनहारा।

धनि ते अखिर धनि अरथु विचारा।। (कड़वक 319)

अतएव रचना का नाम 'चंदायन' रचयतिा द्वारा भी प्रमाणित होता है। इसके परवर्ती अवधी के सूफी प्रेमाख्यानों की परम्परा के नाम पर ही रखा गया है– 'मृगावती', 'पद्मावती', 'मधुमालती' और सम्भव है हिन्दी के इस प्रथम सूफी प्रेमाख्यान के नामकरण का अवलम्बन परवर्ती सूफी कवियों ने लिखा हो।

चंदायन के नामकरण के सम्वंध में डा0 माता प्रसाद गुप्त ने भूमिक के अंतर्गत रचना का 'नामरूप' शीर्षक से विस्तृत विचार किया है, जो उल्लेखनीय है। डा0 गुप्त कहते हैं, ''प्रस्तुत रचना की नायिका 'चांद' है, जिसका नाम छन्द की आवश्यकताओं के कारण

'चॉदा' भी मिलता है, इसलिये रचना का नाम 'चॉद' का 'चॉदा' भी हो सकता है। साथ ही कवि ने अपनी रचना को कथा काव्य कहा है– ''कथा कवि कह लोक सुनवउ।'' इसलिये रचना का पूरा नाम 'चॉद कथा' रहा हो तो भी आश्चर्य न होगा। किन्तु इस प्रसंग में एक तथ्य है इ और भी विचारणीय है। जैसा हम इसी शीर्षक में आगे देखेंगे। रचना सम्भवतः 7 खण्डों में विभक्त थी और चंद की स्थितियों के नक्षत्र भी भारतीय ज्योतिष के अनुसार हैं। साथ ही नायिका को आकाश के चन्द्र का अवतार कहा गया है और इस प्रकार की उक्तियों का भी प्रयोग रचना में हुआ है, जिनमें नायिका आकाश के चॉद के रूप में प्रस्तुत की गयी है और नक्षत्रों के प्रसंग में अयन का अर्थ उनका वृत्त या मार्ग होता है, इसलिये 'चॉदायन' या 'चंदायन' नाम भी काफी सम्भव लगता है।''

डा0 माताप्रसाद जी गुप्त आगे लिखते हैं, ''बीकानेर पाठ में चंदायन के स्थान पर चॉदायनि मिलता है, वह उसकी एक विशिष्ट प्रवृत्ति के कारण भी हो सकता है। इस पाठ में कहीं–कहीं पर अकारान्त एक वचन पुलिंग के स्थान पर इकारान्त कर्ता कर्म कारकों के चिन्ह के रूप में भी प्रयुक्त पुलिंग संज्ञाओं के कारण– अधिकरण कारकों के चिन्ह के रूप में ही मिलता है, किन्तु बीकानेर पाठ में वह कहीं कहीं पर कर्ताकर्म कारकों के चिन्ह के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। प्रति की पुष्पिका में रचना का नाम 'कथा चांदायन' आता भी है, इससे भी इसकी पुष्टि होती है।''

उक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'चॉद', 'चॉदकथा', 'चॉदायन', 'चॉदायनि' और चंदायन में से कौन सा निश्चित रूप से रचना का नाम रहा होगा यह कहना कठिन है। इस कठिनाई की स्थिति में संस्करण के लिये मैंने अपने अध्ययन में चंदायन नाम स्वीकार किया है। डा0 माता प्रसाद गुप्त एवं डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त दोनों

ने भी चंदायन शब्द को स्वीकार किया है वैसे चंदायन और चाँदायन दोनों नाम स्वीकार किये जा सकते हैं।

चंदायन की विशेषतायें :

चंदायन हिन्दी का प्रथम सूफी प्रेमाख्यान है। इसमें अवधी का ठेठ और मर्म स्पर्शी रूप मिलता है तथा प्रबंध काव्यों के अनेक गुण विद्यमान हैं। मार्मिक स्थलों की अधिकता, लोक प्रचलित कथा वस्तु भाषा की विलक्षण शक्ति, प्रेम की मार्मिक व्यंजना आदि इसकी विशेषतायें हैं। इस काव्य पर, जब साहित्य मनीषियों का ध्यान ज्यों–ज्यों केन्द्रित होगा त्यों–त्यों नवीन तथ्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत होंगे और अवधी भाषा एवं सूफी प्रेमाख्यानों की मान्यताओं में परिवर्तन की झलक मिलेगी।

मानव जीवन के चिरन्तन सत्य प्रेम तत्व का उत्कृष्ट निरूपण इस काव्य में परिलक्षित होता है। प्रेम की निर्मल इस धारा का प्रवहमान इस काव्य में देखते ही बनता है। प्रेम और सत्य के अटूट सम्बन्ध का चित्र अवर्णनीय है। लौरल और चंदा के जीवन का अंतर्यामी सूत्र है– प्रेम में जीवन का विकास। भाषा एवं भाव समृद्धि की छाप इस पर लगी हुयी है। कवि मौलाना दाऊद अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति थे।

मौलाना दाऊद के शब्द चित्रों की प्रशंसा जितनी भी की जाय कम है। मार्मिक स्थलों को मूर्तरूप देने में दाऊद अद्वितीय हैं। चंदायन भाव, रस, अलंकार की दृष्टि से समृद्ध काव्य रचना है। इसमें अवधी भाषा का समृद्ध रूप परिलक्षित होता है। मौलाना दाऊद की चंदायन में चौदहवीं शती का भारतीय संस्कृति का पल्लवित रूप का समावेस है। इसमें मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक झलक स्पष्ट झलकती नजर आ रही है। इसके रूप विधान और भाव विधान पर भारतीय प्रेम कथाओं का प्रभाव है। दाऊद सच्चे भारतीय थे। उनकी

काव्य कृति इसका ज्वलंत प्रमाण है। लोक मानस की प्रवृत्तियाँ, भावनायें और मान्यतायें मानों स्वयं स्वच्छंद हो उनके काव्य में गुंथ गयीं हैं।

चंदायन सम्पूर्ण अवधी सूफी प्रेमाख्यान काव्य परम्परा की यशस्वनी पूर्वज है। मानवीय और ईश्वरीय प्रेम के सम्बन्धों को लेकर सूफियों में दो प्रमुख विचारधारायें रहीं हैं। प्रथम विचार धारा के अनुसार पुरूष और स्त्री प्रेम, ईश्वरीय प्रेम का ही प्रतिरूप है और दोनों में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। चंदायन के परवर्ती हिन्दी सूफी प्रेमाख्यान इसी विचार धारा के अनुसार मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिये एक सेतु मात्र है। ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति होने पर मानवीय प्रेम छूट जाता है। दाऊद इसी विचारधारा से प्रभावित लगते हैं।

= = = = =0= = = = =

(ख) कुतवन और उनकी मृगावती :

कुतवन का परिचय :

मृगावती की उपलब्ध प्रतियों में ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर कुतबन के सम्बन्ध में स्पष्टरूप से कुछ कहा जा सके। डा0 **परमेश्वरी दयाल गुप्त** के द्वारा सम्पादित **'मृगवती'** में पाँच स्थलों पर कुतवन का नाम प्रयोग हुआ है, (कड़वक 8–2, 115–6, 121–6, 196–6 और 280–61) जिसके आधार अनुमानतः कहा जा सकता है कि मृगावती के रचयिता का नाम कुतवन था। **'खोज रिपोर्ट'** में इन्हें मियाँ कुतवन कहा गया है और **'मिश्र बन्धु विनोद'** में इनका उल्लेख कुतवन शेख के नाम से किया है। मिश्रबंधु विनोद के आधार पर परवर्ती शोध कर्ताओं ने मृगावती के कृतिकार का नाम शेख कुतबन या मियाँ कुतबन बताया है।

मृगावती चंदायन की काव्य परम्परा की ही एक कड़ी होते हुये भी कुतबन ने दाऊद मुल्ला की तरह मृगावती में कहीं भी स्पष्ट अपने परिचय का उल्लेख नहीं किया है। इस कारण से स्पष्टरूप से यह कहना असम्भव प्रतीत होता है कि कुतबन अमुक स्थान के रहने वाले थे, अमुक स्थान पर रह कर मृगावती का श्रृजन किया तथा इनके माता–पिता आदि का अमुक नाम था।

डा0 **माता प्रसाद गुप्त** ने भी मृगावती की भूमिका में स्वीकारा है, " कुतबन कहाँ के रहने वाले थे और मृगावती की रचना कहाँ पर हुयी यह ज्ञात नहीं हैं। रचना में एक स्थान पर निम्न लिखित भोजपुरी प्रयोग मिलता है–

जस रे बिहंगम पूँछत डौले। पिऊ कत 'गेला' अवर न बौलै।। (कड़वक 279–4)

डा0 **परमेश्वरी दयाल गुप्त** द्वारा सम्पादित **'मिरगावती'** में भी उल्लिखित है, "कुतबन अपने सम्बन्ध में तटस्थ थे कि उन्होंने चंदायन से प्रारम्भ होने वाली प्रेमाख्यानक

काव्य की परम्परा का अविकल अनुसरण करते हुये भी अपना किसी प्रकार का वैयक्तिक परिचय देना आवश्यक नहीं माना। हमारे पास यह जानने का कोई भी साधन नहीं है कि वे कहाँ के निवासी थे कहाँ रहते थे। उनके माता–पिता के सम्बन्ध में भी हम कुछ नहीं जा पाते।''

<u>कुतबन के पीर</u> :

कुतबन ने अपने सम्बन्ध में तथा अपने माता पिता के सम्बंक कुछ नहीं कहा है, परन्तु अपने पीर के सम्बन्ध में अवश्य लिखा है। मृगावती की चौखम्भा प्रति एवं एक डला प्रति से प्रतीत होता है कि कुतबन के पीर (गुरू) शेख बुढ़न थे।

शेख बढ़न जग सांचा पीर। नाऊॅ लेत सुध होड़ शरीर।।

कुतबन नाउँ लै र पा धरे। सुहरवर्दी दुहु जग निरमरे।।

सुहरवर्दी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले शेख बढ़न डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त द्वारा सम्पादित मिरगावती (कड़वक 8–1, 2) दिल्ली प्रति बढ़न और चौखम्भा एवं एक डला प्रति में बुड़न एक संत हुये, जो जौनपुर के समीप के कस्बे जफराबाद के रहने वाले थे। पिछली शताब्दी के आरम्भ में वहीं के निवासी नूरूद्दीन जैदी ने फारसी में तजल्लिये–नूर नाम से तीन भागों में जौनपुर का विस्तृत इतिहास लिखा था। उनके हस्तलिखित इस ग्रंथ में शेख बुढ़न का उल्लेख आया है। उनके अनुसार शेख बुढ़न का वास्तविक नाम शम्सुद्दीन था। वह रूक्नुद्दीन के पुत्र और सदरूद्दीन के पौत्र थे। उसी ग्रंथ से यह भी ज्ञात होता है कि बिहार के मुक्ती मलिक इब्राहीम बयॉ उनकी दादी के पिता थे। सदरूद्दीन के सम्बन्ध में यह भी बताया गया है कि 795 हिजरी में उनकी मृत्यु हुयी थी। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर मलिक बयॉ का निधन 753 हिजरी सिद्ध होता है। उनके पुत्र मलिक मुबारिक 781 हिजरी में दलमऊ के मीर थे। इस तथ्य की जानकारी चंदायन से प्राप्त होती है।

उक्त तिथियों के आधार पर वह सिद्ध किया जा सकता है कि शेख बुढ़न का जन्म 790 हिजरी बाद ही किसी समय हुआ होगा। इन्हीं तथ्यों के आधार पर यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि यही शेख बुढ़न कुतबन के पीर रहे होंगे।

चौखम्भा एवं एकड़ला प्रति में बुढ़न लिखा है तथा दिल्ली प्रति में बढ़न लिखा हुआ है परन्तु खोज रिपोर्ट में उनका नाम शेख बुरहान बताया गया है और कहा गया है कि उनका सम्बन्ध चिश्तियां संप्रदाय से था। खोज रिपोर्ट के इस कथन को **रामचंद्र शुक्ल** ने अपे **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** में दुहराया है और उन्हीं के कथन को परवर्ती विद्वान और शोधार्थी अपनाते चले आ रहे हैं। यह विद्वान शेख बुरहान के सम्बन्ध में मलिक मुहम्मद जायसी की इन निम्न पंक्तियों को अपना आधार मानते हैं।

गुरू मोहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिन्ह कर सेवा।।

अगुआ भयेऊ शुख बुरहान। पंथा लाई मोहि दीन्ह गियान।।

उक्त कथन के आधार पर विद्वानों ने गुरू शेख बुरहान के साथ, जो कालपी में रहते थे, कुतबन के गुरू सुहरवर्दी सम्प्रदाय के थे। (सुहरवर्दी सम्प्रदाय, जिसे शेख जुनेद के शिष्य शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी ने तेरहवीं शताब्दी में आरम्भ किया था। इन्होंने मक्का में अवारि–कुल–मारूफ (ईश्वरीय ज्ञान का प्रसाद) नामक पुस्तक लिखी, जो सूफी सम्प्रदाय में प्रमाण ग्रंथ माना जाता है। शिहाबुद्दीन के शिष्य ने बगदाद से आकर भारत में इस सम्प्रदाय का प्रचार किया।)

जबकि शेख बुरहान का इस सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं था। शेख बुरहान का नाम में तथा सम्प्रदाय में अंतर स्पष्ट करता है कि शेख बुरहान कुतबन के पीर नहीं थे।

यथार्थ में शेख बढ़न नाम के कोई संत हुये हैं। एक शेख बढ़न मनेरी थे। यह इनके फिरदोसी सम्प्रदाय के होने से स्पष्ट है कि यह कुतबन के गुरू नहीं थे। इसी प्रकार और भी इस नाम के कई संत हुये हैं, लेकिन उनके कुतबन के गुरू होने का कोई तथ्य परक आधार न होने से उनको कुतबन का पीर मानना समीचीन नहीं है।

एक संत मखदूम शेख बढ़न हुये हैं, जो सूफी संत ईशा ताज जौनपुरी के शिष्य और उत्तराधिकारी थे। वे कस्बा अजौजी के रहने वाले थे और वहीं उनकी समाधि भी है। सत्रहवीं सदी में लिखित मीरात–उल–असरार के लेखक अबदुर्रहमान चिश्ती ने, जो अमैठी के रहने वाले थे, उनके अलौकिक गुणों की चर्चा की है। सुप्रसिद्ध सूफी संत अब्दुर कुद्दूस गंगोही ने भी अपने एक पत्र में, जिसे उन्होंने हैबत खाँ सरवानी के नाम लिखा था, उनका उल्लेख शेखुलमशायख उल्ला यतुल वरा कुद्बतुन नुकबा शेख बढ़न के रूप में किया है। यह शेख बढ़न किस सम्प्रदाय के थे यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। उनके गुरू मुहम्मद ईसा ताज मूलतः चिश्तियां सम्प्रदाय के थे, किन्तु उन्होंने सुहरवर्दी आदि कई सम्प्रदायों से भी दीक्षा प्राप्त की थी हो सकता है शेख बढ़न ने शिष्य के रूप में उनसे सुहरवर्दी सम्प्रदाय की दीक्षा ली हो। यदि यह अनुमान ठीक है तो ये ही कुतबन के पीर रहे होंगे।

कुतबन के आश्रयदाता :

कुतबन ने मृगावती में अपने आश्रयदाता (शाहे बक्त) शाह हुसैन की विरदावलि में 5 कड़वक लिखे हैं।

शाह हुसैन आहि बड़ राजा।

छात सिंहासन इन्ह पै छाजा।।

(कड़वक 7–1 डा0 नाता प्रसाद गुप्ता द्वारा पृ01)

सवन सुनहु चित लाइ कै कहौ बात हौं एक।

आऊ बढ़ऊ हुसेन साह कै आहि जगत कै टेक।।

(कड़वक 10–67 डा0 माता प्रसाद गुप्ता द्वारा पृ01)

जिस समय (909 हिजरी) कुतबन मृगावती का श्रजन कर रहे थे, उस समय दो हुसैन शाह मौजूद थे। प्रथम हुसैन शाह जौनपुर के थे जिनको हुसैन शाह शर्की कहा गया है और दूसरे हुसैन शाह बंगाल के थे, जिन्होंने अलाउद्दीन का विसद धारण किया था। प्रश्न उठता है कि इन दोनों हुसैनशाहों में से कुतबन के शाहे–वक्त कौन थे ? कुछ इतिहास वेत्ताओं की धारणा है कि यह हुसैनशाह, जिनका कवि ने शाहे–वक्त के रूप में स्मरण किया है, बंगाल के हुसैनशाह रहे होंगे, क्योंकि उनके बहुत पूर्व जौनपुर के हुसैनशाह से जौनपुर का राज्य छिन गया था। बंगाल के हुसैनशाह इन हुसैनशाह शर्की के समधी थे और इतिहास के अनुसार बिहार से हटाये जाने पर ये कहलगाँव में बंगाल के हुसैनशाह के मेहमान होकर रहते थे। परन्तु यह मत मान्य नहीं प्रतीत होता है। हुसैनशाह शर्की का जौनपुर का राज्य छिन जाने के बाद भी वे बिहार बंगाल में रहते हुये अनेक प्रकार से जौनपुर के छिने हुये राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयास करते रहे थे और काफी समय तक करते रहे थे। 909 हिजरी ग्रंथ के रचना काल में भी यह स्थिति बनी हुयी है, ऐसा ज्ञात होता है। ऐसी स्थिति में यदि हुसैनशाह की प्रजा उन्हें अपना राजा मानती रही हो तो आश्चर्य न होगा। पुनः जौनपुर के सिंहासन पर बहलोल लोदी ने अपने पुत्र बारबकशाह को बिठाया था, किन्तु कुछ समय वाद जब बहलोल का देहान्त हो गया, सिकन्दर लोदी बारबक शाह में संघर्ष चला और जौनपुर का राज्य राजनैतिक उलटफेर का एक क्रीड़ा स्थल बन गया। इस स्थिति में सम्भवतः और भी जौनपुर राज्य की प्रजा अपने पूर्ववर्ती उदार शासक हुसैन शाह शर्की को अपना राजा मानती

चली आती रही होगी, किन्तु एक अन्य समाधान भी सम्भव है। वह यह कि कुतबन न केवल इन हुसैन शाह के आश्रित रहे हों, बल्कि उनके साथ बिहार बंगाल भी गये हों और इसलिये उन्होंने जौनपुर के शर्की शासक हुसैन शाह का 909 हिजरी में शाह–ए–वक्त के रूप में गुणगान किया हो।

<u>मृगावती की रचना तिथि</u> :

'मृगावती' में कुतबन ने मृगावती की रचना तिथि के सम्बन्ध में दो स्थलों पर चर्चा की है। प्रथम तो कृति के आरम्भ में और इसके बाद उसके अन्त में। प्रथम तिथि हिजरी सन् में है, जो इस प्रकार है–

इन्ह के राज एहि रे हम कहे।

नौ सै नौ जो संबत अहै।

माह मोहर्रम चॉदहि चारी।

भेज संपूरन कहै न पारी।

हुई रे मांस दिन दस महं जोरत यह ओरानेऊ आइ।

एक एक बोल मोंति जस पिरोबा बकता चित मन लाइ।।[1]

मृगावती के अंत में, विक्रमीय संवत् में, जो उल्लेख आया है वह निम्नवत् है।

जहिया हुत पंद्रह सै साठी।

तहिया इहरे चौपई गांठी।

बलिया पाख जहं अही (चिहुं दही)।

सिंह रासि सिंहनि रावही।।[2]

---

1. डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित मृगावती कड़वक सं0 11
2. उक्त ग्रंथ से ही कड़वक सं0 426, 3, 5

गणनानुसार (स्वामी कन्नू पिलाई; इण्डियन एफिरिस) 909, महर्रम 4 = ज्येष्ठ शुक्ल 6, सं0 1560 = (29 जून, 1503 ई0) है, दस दिन जोड़नेपर तिथियाँ इस प्रकार निकलती हैं–

(स्लामी तिथि : रबी–उल्–अब्बल 14 = भाद्र पूर्णिमा, सं0 1560 = 7 सितम्बर, 1503 ई0)

परशुराम चतुर्वेदी ने मृगावती की रचना तिथि के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुये इस प्रकार लिखा है– ''कुतबन ने मृगावती की रचनाकाल की तिथि भी भादों बदी 6 दी है और कहा है कि मैंने 2 माह 10 दिन में पूरा किया। उन्होंने एक स्थान पर इस काल की हिजरी सन् 909 अर्थात् सन् 1503 भी बताया है, जो सम्भवतः 1560 में ही पड़ जाता है।''[1]

डा0 माता प्रसाद गुप्त के अनुसार, ''हिन्दू गणना के अनुसार ग्रंथारम्भ की तिथि से दो महीने और 10 दिन बाद मास भाद्रपद न रहकर आश्विन हो जाता है। अभांत मास गणना प्रणाली के अनुसार अवश्य वह भाद्रपद रहता है, क्योंकि उसके अनुसार मासारम्भ शुक्लपक्ष से होता है, किन्तु उत्तरी भारत में कुतबन के समय में इसके प्रचलन के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। स्लामी गणनानुसार ग्रंथारम्भ की तिथि से दो माह 10 दिन अवश्य भाद्रपद की पूर्णिमा को पड़ते हैं, किन्तु छंद के पाठ से उसकी संगति नहीं बैठती है, **'अहीं' = 'हैं'**। पाख और भादों दोनों संज्ञायें पुलिंग एक वचन की हैं, इसलिये अही पाठ अशुद्ध ठहरता है, **'चिहुंदही'** पाठ मानने पर तिथि 2 माह नौ दिन बाद पड़ती हैं। रचना की ग्रंथारम्भ से दो माह 10 दिन बाद समाप्त न मानकर दो माह के बाद दसवें दिन समाप्त माना जाए अथवा यह माना जाय कि इस प्रसंग में दिनों की गणना कवि ने ग्रंथारम्भ तथा ग्रंथ समाप्ति की तिथियाँ मिलाकर की, तो ग्रंथ की समाप्ति तिथि होगी–

---

1. सूफी काव्य संग्रह पृष्ठ 97

रबी उल अब्बल 13 = भाद्र शुक्ल 14, मंगलवार = (5 सितम्बर 1503 ई0)

यह सुझाव दिल्ली प्रति के पाठ को उपर्युक्त प्रकार से संशोधित रूप में स्वीकार कर प्रस्तुत किया गया है।"[1]

मृगावती का नामकरण :

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्ता के अनुसार–"भारतीय प्रबंध काव्यों के रचयिताओं ने प्रायः अपनी रचना का नाम अपनी नायिका के नाम पर रखा है। संस्कृत साहित्य में सवंधु की वासवदत्ता, श्री हर्ष की रत्नावली, बाण कादम्बरी इस ढंग के उदाहरण हैं। इसी प्रकार प्राकृत काव्यों में लीलावती कथा, मलयसुन्दरी कथा, सुंदरी चरित्रम् आदि का नाम लिया जा सकता है। हिन्दी प्रेमाख्यान काव्यों के सूफी रचयिताओं ने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया है। जायसी ने अपनी नायिका पद्मावती ने नाम पर अपने काव्य का नाम पद्मावत रखा है। नायिका के नाम पर ही मंझन के काव्य का नाम मधुमालती है। मौलाना दाऊद ने भी अपनी नायिका के नाम पर ही अपने काव्य को चंदायन नाम दिया है, यद्यपि उनकी नामकरण शैली परम्परा से कुछ हटकर है, अतः यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि कुतबन ने भी अपनी नायिका के नाम पर ही अपने काव्य का नामकरण किया होगा।"[2]

बनारसी दास ने अपने अर्ध कथानक में कुतबन के काव्य का नाम मिरगावति दिया है।

खोज रिपोर्ट में खोजियों ने कुतबन के काव्य का नाम मृगावती बताया है। उनके मृगावती नाम देने का आधार क्या है ? यह अज्ञात है। उसके आधार पर ही लेखकों ने इस ग्रंथ का नाम मृगावती बताया है। उपलब्ध प्रतियों में मात्र बीकानेर प्रति में पुष्पिका उपलब्ध है, जो इस प्रकार है–

---

1. भूमिका मृगावती पृष्ठ– 3 – डा0 माता प्रसाद गुप्त
2. भूमिका मृगावती – डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त

एता म्रिगावती कथा समऐ संमापती। यदि 'समय' 'प्रसंग' का समानार्थी हो, तो इस वाक्य का अर्थ होगा– 'मृगावती' के कथा प्रसंग यहाँ पर समाप्त हुये। फलतः इस पुष्पिकानुसार रचना का नाम मृगावती उसका काव्य रूप **'कथा'** का ज्ञात होता है।

दिल्ली प्रति के उपलब्ध आरम्भिक पृष्ठ के ऊपर बायें कोने में ग्रंथ की लिपि से भिन्न लिपि में किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा पोथी मिरगवती (अथवा मृगावती) लिखा है। रचना 'मिरगावत' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

डा0 माता प्रसाद गुप्त ने कुतबन की रचना का नाम मृगावती स्वीकार किया है–

"'मिरगावत' अवधी 'मिरगावती' संस्कृत 'मृगावती' है और सार्थक नाम कदाचित् 'मिरगावती' 'मृगावती' ही है, जो कि नायिका का है। अतः रचना के लिये मृगावती नाम ही स्वीकार किया गया है।

मैंने भी डा0 माताप्रसाद गुप्त के मन्तव्य से सहमत होकर अपने शोध ग्रंथ में रचना का नाम 'मृगावती' स्वीकार किया है।

<u>मृगावती की भाषा</u> :

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार सूफी साहित्य की भाषा अवधी है। शुक्ल के ही शब्दों में, "ये सब प्रेम कहानियाँ पूरवी हिन्दी अर्थात् अवधी भाषा में एक नियत क्रम के साथ केवल चौपाई–दोहे में लिखी गयी हैं।[1]

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने मृगावती की निम्न पंक्तियों को आधार मानते हुये मृगावती की भाषा को अनेक भाषाओं का मिश्रण बताया है।

शास्त्री आखर बहु आये।

और देसी चुनि चुनि सब लाये।।[2]

---

1. जायसी ग्रंथावली, सं0 2017, भूमिका, पृष्ठ 4/
2. डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त द्वारा सम्पादित मिरगावती कड़वक 13/4

खत भाषा जो ईहहिं बाँचा।

पण्डित बिनु पूछत हो साँचा।।[1]

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने मिरगावती की भूमिका में आचार्य शुक्ल के मन्तव्य को नकारते हुये लिखा है, "कुतबन की अपनी तथा पूर्ववर्ती इतिहासकारों की जानी समझी बात की उपेक्षा कर मुसलमान कवियों के प्रेमाख्यान काव्यों की भाषा को अवधी के रूप में प्रादेशिक भाषा कहना निराधार दुराग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता, जो तथ्य उपलब्ध हैं उनके प्रकाश में इन काव्यों की भाषा को हमें व्यापक क्षेत्र में समझी जाने वाली भाषा के रूप में देखना चाहिये। हिन्दवी नाम को ध्यान में रखते हुये उसे आरम्भिक हिन्दी, मध्यकालीन हिन्दी या उत्तर भारतीय हिन्दी जैसे किसी व्यापक नाम से पुकारना ही समीचीन होगा।"[2]

डा0 माताप्रसाद गुप्ता ने मृगावती की भूमिका में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मन्तव्य का अनुकरण करते हुये मृगावती की भाषा को अवधी भाषा स्वीकार किया है–

डा0 गुप्त के शब्दों में, "रचना की भाषा अवधी है और किंचित पुरानी अवधी है, किन्तु भाषा के दो स्तर हमें मिलते हैं। चौपाइयों की भाषा तत्कालीन बोलचाल की अवधी है और दोहों की भाषा, सर्वत्र तो नहीं, किन्तु प्रायः साहित्यिक अवधी है, जिसमें उत्तरकालीन अपभ्रंश की छाया देखी जा सकती है। दोहों का शब्द संगठन भी चुस्त है। रचना में अनेकानेक दोहे ऐसे हैं, जो शब्द संगठन की दृष्टि से साहित्य के अच्छे से अच्छे दोहों के साथ रखे जा सकते हैं।[3]

डा0 गुप्त ने अपनी बात की पुष्टि के लिये कतिपय दोहों का उल्लेख किया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

---

1. डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त द्वारा सम्पादित मिरगावती कड़वक 431/4
2. डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त द्वारा सम्पादित मिरगावती की भूमिका पृष्ठ 41
3. मृगावती– सम्पादक डा0 माताप्रसाद गुप्त, भूमिका पृष्ठ 30

कहा पिरीतम देखिहौं दुहुं लोइनह विहसंत।

कंज सरोवर नीर जिमि सख अंग पसरंत।। 116

कुतबन प्रीतम अगम भुइ वै उहाँ बसहिं निचिंत।

हम बैलोचन डार जिमि हिऊइं खुरूकहिं निंत।। 123

हंस रहा केहि कारन घट महं पिउ बिहरेउ सर सुप्प।

महा कठिन विरहानल के झल जानहू पॉख झुरूष्प।। 274

सखिए संपति पिय मिलन बिपति बिचाल बियोग।

संपति बिपति जो हम कही अवर कहौ किछु लोग।। 308

सम्पूर्ण कृति ऐसे सुगठित दोहों से भरी पड़ी है। चौपाइयों में भाषा और शैली की यह चुस्ती कम ही मिलेगी। जायसी तथा अन्य अनेक कवियों में भी यह अंतर दोहों तथा चौपाइयों के शब्द संगठन में मिलता है, यद्यपि इतना अधिक नहीं।

मृगावती की लिपि :

मृगावती की लिपि के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं है। एक वर्ग का मानना है कि केवल मृगावती ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्रेमाख्यान काव्य अर्थात काव्यों की मूल प्रति नागरी लिपि में लिखी गयी होगी। और दूसरे वर्ग का मानना है कि प्रेमाख्यान काव्य चूंकि मुसलमान कवियों द्वारा रचे गये हैं, अतः उनकी लिपि नागरी होना सम्भव नहीं है। उनका तर्क इस प्रकार है–

1. सूफी कवि न केवल स्वयं मुसलमान थे, बल्कि उनके गुरू भी मुसलमान थे, उनके आश्रयदाता मुसलमान थे और उनके शिष्य भी मुसलमान थे। इसके अतिरिक्त सूफी मत का हिन्दुओं में प्रचार हुआ हो इसका भी कोई प्रमाण नहीं है, ऐसी स्थिति में इनकी

रचनायें अरवी, फारसी लिपि के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में लिखी गयी हों समीचीन प्रतीत नहीं होता है।

2. इनका दूसरा तर्क यह है कि सूफी काव्य ग्रंथों की रचना के समय नागरी लिपि को किसी भी मुसलमान शासक ने प्रश्रय नहीं दिया। अभी पचास वर्ष पूर्व तक अधिकांश कायस्थ परिवारों में रामायण गीता आदि का पाठ उर्दू फारसी में लिखी गयी कापियों से होता था। इग्लैंड और फ्रांस के पुस्तकालयों में न केवल सूरसागर आदि धार्मिक ग्रंथों की, वरन हिन्दी कवियों द्वारा रचित अनेक श्रृंगार काव्यों, यथा– केशवदास की रसिकप्रिया, बिहारी सतसई आदि की भी फारसी लिपि में लिखी प्राचीन प्रतियाँ सुरक्षित हैं। वे इस बात की द्योतक हैं कि, जिस समय प्रेमाख्यान काव्यों का श्रृजन किया गया, भारत में अरबी–फारसी लिपि का प्रचलन था। ऐसी अवस्था में कल्पना नहीं की जा सकती कि प्रेमाख्यान काव्यों के मुसलमान रचयिताओं ने अपने काव्यों की मूल प्रति नागरी लिपि में लिखी हों।

3. तीसरा महत्वपूर्ण आधार यह है कि उनका मानना है कि मुसलमान कवियों द्वारा रचित किसी काव्य की अब तक कोई भी नागरी–कैथी में लिखित प्रति ऐसी नहीं मिली है, जिसे सत्रहवीं शती से पूर्व की कहा जा सके और इन काव्यों की नागरी कैथी में लिखी, जो भी प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें कोई भी ऐसी नहीं है, जिसमें फारसी लिपि जनित विकृतियों की बहुतायत न हो। ये विकृतियाँ इस बात का स्पष्ट संकेत देती हैं कि उनकी पुरातन प्रतियाँ अरबी फारसी लिपि में थीं। इसके विपरीत इन काव्यों कीं, जो प्रतियाँ अरबी फारसी लिपि में उपलब्ध है उनमें से अनेक उपलब्ध नागरी कैथी प्रतियों से प्राचीन हैं और उनके पाठ अधिक संगत, स्पष्ट और प्रामाणिक जान पड़ते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त जैसे लेखक अपने मत को सिद्ध करते हैं कि मृगावती और अन्य सूफी रचनाओं की मूल प्रतियाँ अरबी फारसी में रही होंगी, नागरी लिपि में नहीं।

डा0 गुप्त के ही शब्दों में, ''जो लोग आदि प्रति के नागरी होने की कल्पना करते हैं उन्हें फारसी लिपि की प्रतियों में नागरी लिपि जनित विकृतियाँ खोजने के स्थान पर नागरी लिपि में लिखी ऐसी प्रतियों का प्रमाण उपस्थित करना चाहिय, जिसमें एक भी फारसी लिपि जनित विकृतियाँ न हों।. . . . . उन्हें दृष्टि में रखना ही होगा और मानना होगा कि इन काव्यों की मूल प्रतियाँ फारसी लिपि में लिखी गयीं थीं।''[1] (सन्दर्भ)

प्रेमाख्यान काव्यों की मूल प्रतियाँ नागरी लिपि में लिखी गयीं हैं, ऐसा मानने वाले लेखकों में डा0 माता प्रसाद गुप्त सबसे अडिग दृष्टिगत आते हैं।

1. डा0 माता प्रसाद गुप्त का मानना है कि ''मुस्लिम शासकों के अनेक सिक्के उपलब्ध हुये हैं, जिन पर नागरी लिपि का प्रयोग हुआ है।''[1] डा0 गुप्त का अनुमान है कि जब मुस्लिम शासक अपने सिकों में भी नागरी लिपि का प्रयोग करते थे तथा निशचित ही कुतबन और अन्य प्रेमाख्यान ग्रंथकारों ने हिन्दी काव्यग्रंथों में नागरी लिपि का प्रयोग किया होगा।

2. डा0 माता प्रसाद गुप्त का एक तर्क यह है कि जिस युग में दाऊद, कुतबन और मंझन आदि की रचनायें प्रस्तुत हुयी थीं, उसी युग में नागरी का एक ऐसा रूप प्रचार में आया, जो कैथ्री कहा गया है।[2]

मृगावती की लिपि सम्बन्धी धारणा अभी भी विद्वजनों के मध्य विवाद का विषय बनी हुयी है। प्राप्य तथ्यों के आधार पर दोनों मत सटीक प्रतीत होते हैं। हो सकता है भविष्य में और गहन अनुसंधान के फलस्वरूप किसी एक स्पष्ट मत का प्रत्यारोपण सम्भव हो सके।

---

1. भारतीय साहित्य, वर्ष 8, अंक 3, पृष्ठ– 87
2. भारतीय साहित्य, वर्ष 8, अंक 3, पृष्ठ– 87

मृगावती की उपलब्ध प्रतियाँ :

डा0 माताप्रसाद गुप्त ने मृगावती की पाँच प्रतियों को प्रामाणिक माना है।

1. बीकानेर प्रति 2. दिल्ली प्रति 3. बीकानेर में ही अनूप संस्कृत पुस्तकालय प्रति 4. एक डला प्रति 5. मनेर शरीफ प्रति। जबकि डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्ता ने मृगावती की प्रामाणिक 6 प्रतियाँ स्वीकार की हैं।

1. दिल्ली प्रति 2. एक डला प्रति 3. बीकानेर प्रति 4. काशी प्रति 5. चौखम्भा प्रति 6. मनेर शरीफ प्रति।

1. दिल्ली प्रति :

यह प्रति फारसी लिपि की नस्तालीक शैली में देशी कागज पर लिखी हुयी है। इसमें 90 पृष्ठ थे, जिसमें आरम्भ का एक पत्र अनुपलब्ध है। प्राप्त प्रतियों में यह सबसे कम खण्डित प्रति है। इस प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर 16 से 19 पंक्तियाँ हैं। इस प्रति में 426 कड़वक उपलब्ध हैं। इस प्रति के हासिये पर यत्र–तत्र मूल लिखावट से भिन्न लिखावट में पाठान्तर अंकित है।

इस प्रति में प्रारम्भ का पृष्ठ न होने के कारण सिरनामा अज्ञात है। अंत में भी रचयिता ने कोई पुष्पिका नहीं दी है। इस कारण ग्रंथ का नाम, लिपिकाल, लेखक आदि सभी अज्ञात हैं। लेखक शैली के आधार पर सैयद हसन असकारी का अनुमान है कि यह प्रति सोलहवीं शती के आरम्भ में तैयार की गयी होगी।[1]

मृगावती की यह प्रति भारतीय पुरातत्व विभाग के अरबी–फारसी अभिलेखों के विशेषज्ञ जियाउद्दीन अहमद देसाई के पास है। इस प्रति को प्रकाश में लाने का श्रेंय सुप्रसिद्ध इतिहासकार सैयद हसन असकरी को है।[2]

---

1. जरनल आफ बिहार रिसर्च सोसायटी खण्ड 41, पृष्ठ– 454
2. जरनल आफ बिहार रिसच्र सोसायटी खण्ड 41, पृष्ठ– 452–487

2. मनेर शरीफ प्रति :

यह प्रति फारसी लिपि की नस्तालीक शैली की ओर झुकती हुयी नस्ख शैली में लिखी हुयी है। इस प्रति के कुल 64 पृष्ठ उपलब्ध हैं। यह मूलतः मौलाना दाऊद कृत चंदायन की प्रति है। उसके प्रत्येक पृष्ठ के हासिये पर मृगावती के कड़वक लिखे गये हैं। ये कड़वक भी उसी लिपि में हैं, जिस लिपि में चंदायन की प्रति तैयार की गयी है।

यह प्रति मनेर शरीफ (जनपद पटना–बिहार प्राप्त) के खानकाह के सज्जादन शीन शाह इनाउत उल्लाह के संग्रहालय में है। उनके भाई मुरादुल्लाह के माध्यम से यह प्रति सैयद हसन असकारी को प्राप्त हुयी थी। उसी के आधार पर उन्होंने चंदायन और मृगावती पर लेख प्रकाशित किया था।[1]

3. एकडला प्रति :

यह प्रति कैथी लिपि में लिखी गयी है। प्रति में यत्र–तत्र विषय को सुग्राह बनाने के उद्देश्य से चित्रों का अवलम्बन लिया गया है। इसके प्रत्येक पत्र पर एक ओर मृगावती का एक कड़वक अंकित है, तथा दूसरी ओर उसी कड़वक के आधार पर अपभ्रंश शैली में अंकित चित्र है। इस प्रति के प्राप्त पत्र ज्यादा पुराने प्रतीत नहीं होते हैं। डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त इस प्रति को सत्रहवीं शदी का मानते हैं। एकडला जनपद फतेहपुर उ0 पद्ध में स्थित है। यह प्रति एकडला के मनसवदार हनुमानदीन ने, जिनके बंशधरों से यह प्रति प्राप्त हुयी है। सम्वत् 1890 (1828 ई0) के आसपास अपने संग्रह के हस्तलिखित ग्रंथों का पुनर्निरीक्षण कराया था। उस समय तक सायद यह प्रति जर–जर हो चुकी थी। इस कारण उसे खुरदुरे कागज पर चिपका दिया गया। फलस्वरूप ऊपर लिखा पाठ छिप गया। बाद में उस पर लिखी गयी सामग्री दोषग्रस्त अधिक है।

---

1. करेन्ट स्टडीज, पटना कालेज 1955 ई0 पृष्ठ– 16–23

यह प्रति 1954 में प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक शिव गोपाल मिश्र को मूल स्वामी के वंशधर ओमप्रकाश सिंह और राजेन्द पाल सिंह से प्राप्त हुयी थी। वर्तमान में यह प्रति काशी विश्वविद्यालय के भारत कला भवन में उपलब्ध है। इस प्रति में मात्र 250 पत्र हैं, जिनमें कड़वक संख्या 248 हैं।

4. <u>बीकानेर प्रति</u> :

यह प्रति मटमैले रंग के कागज पर कैथी लिपि में लिखी गयी है। इसके लिखने में काली और लाल दोनों प्रकार की स्याहियों का प्रयोग किया गया है। इस प्रति में मूलतः 86 पत्र हैं, किन्तु मृगावती 77 पत्रों में समाप्त हो जाती है।

शिवगोपाल मिश्र का मन्तव्य है कि यह प्रति प्राचीन है। उनका यह भी कहना है कि प्रति अंत से पूर्ण है फिर भी उसमें लेखक का नाम एवं लेखक काल नहीं पाया जाता है।[1]

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त का मानना है कि वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। अंत में पुष्पिका उपलब्ध है, जिसे शिव गोपाल मिश्र ने स्वयं दो स्थानों पर उधृत किया है।[2]

पुष्पिका इस प्रकार है– एती मृगावती कथा समय समांपती सुभ असुभ सी गुरू प्रसाद मसुमतीं। समयेऊ नम सर्वन बदीय। अती मुखी सोमावसरे।[3]

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त के अनुसार– पुष्पिका की अंतिम पक्ति सबसे महव्व की है। और इसमें लिपिकाल अंकित है, किन्तु इसका पाठ समुचित रूप से स्पष्ट नहीं है। यह प्रति बीकानेर प्रसिद्ध अनूप संस्कृत पुस्तकालय में है और बहुत त्रुटित अवस्था में है। इसकी लिपि कैथी है। प्रति लिपि कर्ता मुस्लिम ज्ञात होता है, क्योंकि प्रति के अनेक पृष्ठों के ऊपर के हासिये में अरबी लिपि में **'अल्लाह'** लिखा हुआ है।

---

1. कुतबन कृत मृगावती पृष्ठ– 21
2. मिरगावती पृष्ठ– 89
3. कुतबन कृत मृगावती पृष्ठ– 204

5. चौखम्भा प्रति :

यह प्रति एकडला प्रति की तरह ही सचित्र और कैथी लिपि में लिखी हुयी थी यह प्रति 1900 ई0 के आसपास चौखम्भा (काशी) स्थित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निजी पुस्तकालय में थी। वही उस समय नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से हस्तलिखित ग्रंथ की खोज करने वाले लोगों ने देखा था और उसका विवरण तैयार किया था, जो उस वर्ष की खोज रिपोर्ट मे प्रकाशित है। इस रिपोर्ट के प्रकाशन के पश्चात वहाँ से यह प्रति किसी समय गायब हो गयी और अब उसके अस्तित्व का कोई पता नहीं है। आज इसकी जानकारी का साधन एकमात्र खोज रिपोर्ट में दिया गया विवरण ही है।

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त के अनुसार– खोज रिपोर्ट के विवरणानुसार चौखम्भा प्रति का विवरण इस प्रकार है– 8" X 6 " के 350 पत्र थे और प्रत्येक पत्र पर 18 पंक्तियाँ थीं। उसमें चित्र और काव्य का अंकन किस ढंग से हुआ था इसका कोई उल्लेख नहीं है। रिपोर्ट में आदि अंत से 5 कड़वक उधृत किये गये हैं। उसके देखने से अनुमान होता है कि आरम्भ के 6 और अंत के चार कड़वक नहीं थे।[1]

6. काशी प्रति :

यह प्रति कैथी लिपि में काली स्याही से 4.5" X 6" आकार के कागज पर केवल एक ओर लिखी गयी बतायी जाती है। इसके केवल 7 पत्र उपलब्ध कहे जाते हैं, जिन पर पत्रांक 146 से 152 तक अंकित है। इनमें 25 कड़वक उपलब्ध हैं। यह प्रति भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित कही जाती है।

काशी प्रति की दो आधुनिक प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। एक प्रति भारत कला भवन में है एवं दूसरी प्रति अनूप राजकीय संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है। इस प्रति के 10 कड़वक परशुराम चतुर्वेदी ने अपने सूफी काव्य संग्रह में उधृत किये हैं।[2]

---

1. मिरगावती पृष्ठ– 91
2. सूफी काव्य संग्रह पृष्ठ 110–117

रचना का लक्ष्य :

किसी भी कृति के सृजन में कृतिकार का लक्ष्य सामाविष्ट होता है। निश्चित ही कुतबन ने मृगावती की रचना करके अपने लक्ष्य की प्राप्ति की होगी। कुतबन का लक्ष्य क्या था ? यह विचारणीय तथ्य है।

शिव गोपाल मिश्र ने कुतबन की इन पंक्तियों की ओर दृष्टिपात किया है–

मैं रस बात कही रस तौसों, जो रस कीजइ बात।

सो रस रहे दुहूँ जग ताकर, जो रस सौं रंगरात।।[1]

और कहा कि उपर्युक्त पक्तियों से यह ध्वनित होता है कि कुतबन का उद्देश्य रसभरी बात या प्रेम की कथा कहना मात्र था।

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने मिश्र के मत से भिन्नता व्यक्त करते हुये अपना मनतव्य इस प्रकार व्यक्त किया है, "जिस स्थल से यह उधृत किया गया है, वह प्रेम रस से सम्बन्ध अवश्य रखता है पर ऐसा स्थल नहीं है, जो कुतबन का प्रयोजन व्यक्त करता हो।"[2]

वस्तुतः कुतबन ने अपनी रचना में प्रेम कथा के अतिरिक्त भी बहुत कुछ रहस्यात्म ढंग से कहा है उस तथ्य को भी समझने की आवश्यकता है–

बहुत अरथ हहिं इहँ, जो सुधि से काहू बूझ।

कहेऊ जहाँ लग पारेउ, जो कहु बहै हियैं मैं सूझ।।[3]

इस काव्य में बहुत से अर्थ सन्निहित हैं। उनका समझना कुतबन ने पाठकों पर छोड़ दिया है। उनकी उक्त पंक्तियों से इतना अवश्यक ध्वनित होता है कि उन्होंने अपनी कथा में कुछ रहस्यपूर्ण तथ्यों को समाहित किया है।

---

1. डा0 माता प्रसाद द्वारा सम्पादित मिरगावती कडवक सं0 89– 6, 7
2. डा0 माता प्रसाद द्वारा सम्पादित मिरगावती पृष्ठ सं0 80
3. डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सं0 मिरगावती कड़वक सं0 431– 6, 3

सामान्य तरीके से पढ़ने पर मृगावती एक प्रेम कहानी के अतिरिक्त कुछ नहीं है, किन्तु कुतबन का सम्बन्ध सूफी संप्रदाय के साधकों से था। सूफी साधक प्रेम के माध्यम से परमात्मा का समीप्य प्राप्त करना चाहते हैं। उनका प्रेम निराकार ईश्वर के प्रति होता है, इस कारण उनके लिये उनका वर्णन प्रतीक द्वारा ही सम्भव हो पाता है। वे अपने इस प्रेम का वर्णन लौकिक प्रेम प्रदर्शन के प्रतीकों द्वारा किया करते हैं। वे अपने इस आदर्श प्रेम के वर्णन में ईश्वर को नारी रूप में स्वीकार करते हैं और लौकिक प्रेम के वर्णन में अलौकिक प्रेम की झलक देखते हैं। सम्भवतः कुतबन ने अपने उपर्युक्त शब्दों में इसी दिशा की ओर इंगित किया है और यह कहना चाहा है कि उन्होंने अपने इस प्रेमाख्यान के रूप में सूफियों की प्रेममूलक साधना का स्वरूप उपस्थित किया है।

इस दृष्टि से मृगावती को देखने पर मृगावती को ब्रह्म का, राजकुँवर को भक्तात्मा का, और दूत को गुरू का प्रतीक कहकर सूफी प्रेम साधना की व्याख्या की जा सकती है। किन्तु राजकुँवर का द्विपत्नीत्व इस आधार को खण्डित कर देता है। नायिका का नखशिख वर्णन और विवाहिता विरहणी रूपमणि का बारहमासा का श्रृजन लगता है कि ये दोनों वर्णन विस्तार अवधी प्रेम गाथाओं के अनिवार्य अंग से बन गये थे, इसलिये इस कथा में भी कवि ने इनको समेट लिया है। इसका कोई अन्य कारण प्रतीत नहीं होता है।

इन सूफी कवियों के प्रेम दर्शन में प्रेम के शारीरिक पक्ष को उसके मानसिक पक्ष का एक अनिवार्य अंग मानकर ही हमें उसे देखना होगा।

भवर वास परिमल सब लिया। औ सब अभिअ महारस पिया।

तिस्ना काम सांति मन भई। दुष बेदन उर कै सब गई।

पाँचों भूत किया जो अहे। ते सिर नावा अवंग होइ रहे।

कंवल धानि भंवरा निसि रहा। जाइ न जाइ प्रेम रस गहा।[1]

---

1. डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित मृगावती कड़वक सं0 238– 1,4

इस शारीरिक–मानसिक तत्व ने सूफी प्रेम दर्शन का वास्तविक रूप समझने में बड़ा भारी व्यवधान उपस्थित किया है। बड़े से बड़े समालोचक भी इस उलझन से बच नहीं सके हैं। किन्तु इसका कारण यह है कि वे आध्यात्मिकता को शारीरिकता मानसिकता से सर्वथा भिन्न वस्तु समझते आ रहे हैं। सूफी प्रेम दर्शन में यह नहीं है। पुरूष नारी का शारीरिक–मानसिक स्तर का प्रेम उसमें अपने आप में भी महत्वपूर्ण है। उसके सम्बन्ध में सूफी मान्यता या तो यह रही है कि वह ईश्वरीय प्रेम की सीढ़ी है और उसके सहारे ईश्वरीय प्रेम का अनुभव किया जा सकता है अथवा यह रही है कि नारी का पुरूष से वही सम्बन्ध है जो प्रकृति का ईश्वर से है, अतः स्त्री और पुरूष के बीच जिस प्रेम का विकास होता है वह ईश्वरीय होता है। अपने भारतीय संस्कारों के कारण पुरूष और नारी के बीच विकसित होने वाले प्रेम को हम सामान्यतः ईश्वरीय प्रेम में बाधक मानते हैं, इसलिये हम सूफी प्रेम के स्वरूप को ठीक–ठीक नहीं समझ पाते हैं।

सूफी प्रेम कथाओं में नायक नायिका का अनायास और सायास मिलन के बीच का सम्पूर्ण मार्ग प्रेमी के लिये दुखों से भरा पड़ा है प्रेमी को रस दुख का व्रत लेकर ही आगे बढ़ना होता है। प्रतीत तो ऐसा होता है कि समस्त सूफी प्रेम दर्शन एक प्रकार से दुखवाद का दर्शक है। मंझन की 'मधुमालती' और जायसी के पदमावत की तुलना में मृगावती में यह दुखवाद कम है, किन्तु है अवश्य।

जब मृगावती के पास प्रेमी (राजकुँवर) योगी के वेष में पहुँचता है और मृगावती उसे मरवाने की धमकी देती है, वह कह उठता है।

राजा मुएहि न मारिऊ काऊ। मुएं के मारें किछु नहिं साऊ।
तेहि दिन मुएंउ प्रेम जेहि खेला। सांप के मुह अंगुरी जौं मेला।
जो जिउ होइ तो मरद डराऊँ। सांस जीभ लै खिनक रहाऊँ।[1]

1. डा0 माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित मृगावती कड़वक स0 224– 1, 3

प्रेम मार्ग का पथिक चाहे पुरूष हो, चाहे स्त्री, दोनों को इस दुखवाद को स्वीकार करना पड़ता है मृगावती से उसकी एक सखी इसी प्रकार कहती है।

जो तुम्हं आहि प्रेम के साधा। आपुहि खांडि करहु दुइ आधा।

प्रेम सवाद सोइ पै बूझा। आपुहिं मेंटि ओहि पै सूझा।।

कहें हरख रस प्रेम न होई। जिउ जो देई पावइ सोई।

प्रेम उतंग ऊँच गड़ अहा। बाउर सोई जो बिनु दुख चहा।

प्रेम खेल जो चाहइ खेला। सिर सेउं खेलि जीउ पर हेला।

कुतबन कंगुरा प्रेम का ऊँचा अति रे उतंग।

सीस न दीजै पाव तर कर न पहुंचई खंग।।[1]

डा० माता प्रसाद गुप्त ने यह स्वीकारा है कि सूफी कवि कुतबन ने मृगावती की प्रेम कथा के माध्यम से अमरत्व प्राप्ति के लिये इस मरण मार्ग का संदेश दिया है। डा० गुप्त की ही लेखनी से,–"यह दुखवाद अपनी चरम सीमा पर तब पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है, जब वह मरणवाद में परिवर्तित हो जाता है और जिस प्रकार आगे आने वाले जायसी तथा मंझन ने प्रेम मार्ग को मरण मार्ग कहा है और मरण को ही अमरता प्राप्त करने का साधन बताया है उसी प्रकार किन्तु उनके पूर्व कुतबन ने भी अमरत्व लाभ के लिये इस मरण मार्ग का उपदेश किया है। कुतबन के अनुसार प्रेमी का जीवन तो उस दीपक का होना चाहिये, जो जलता हुआ ही जीता है, किन्तु जो इस प्रकार जीवन में अमरत्व का अनुभव करता है।"[2]

कवि ने जीवन की नश्वरता की ओर संकेत करते हुये वह प्रत्येक व्यक्ति को धर्म करते हुये ही भोग करने और मन से ईश्वर का स्पर्श करने के लिये उपदेश करता है, और वह कहता है कि लक्ष्मी अपनी किसी की कभी नहीं हुई है, यह समझते हुये संसार का उपभोग कर लेना चाहिये।

---

1. डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित मृगावती कड़वक सं० 194
2. मृगावती भूमिका पृष्ठ 38

कलिकरं मरम न जानइ कोई। आँखि के मरक काह दहुँ होई।

धरम करंते भोग कै मन परसहु करतार।

लच्छी होइ न आपनि बेलसि लेहु सयंसार।।[1]

मृगावती के उक्त कड़वक से परिलक्षित होता है कि कुतबन वैराग्यवादी नहीं हैं। उनका मानना है कि लक्ष्मी (सम्पत्ति) किसी की नहीं हुयी है। कवि मनुष्य को परमार्थी होकर करतार का चिन्तन करते हुये संसार में रमण करने का उपदेश करता हुआ दृष्टिगोचर प्रतीत होता है।

= = = = =0= = = = =

---

1. मृगावती कड़वक सं0 418

(ग) आलोच्य कृतियों में व्यवहृत शब्द भण्डार :

सामाजिक और सांस्कृतिक :

किसी कवि की भाषा में व्यवहृद शब्दावली के भीतर निहित, तत्कालीन समाज और संस्कृति की खोज का प्रयत्न, आधुनिक साहित्यिक समालोचना के ही नहीं वरन् ऐतिहासिक परम्परा की छानबीन के क्षेत्र में भी एक विशिष्ट वैज्ञानिक महत्व रखता है।

दाऊद मुल्ला और कुतवन की भाषा की पृष्ठभूमि और उनके द्वारा मान्य एवं प्रतिपादित विचारधारा की पृष्ठभूमि के सापेक्षिक सम्बन्ध की ओर ध्यान देने पर कई ऐसे रहस्यों का उद्घाटन होता है जो प्रस्तुत विषय की आधारभूत परिस्थितियों को समझने में बड़े सहायक सिद्ध होंगे। भाषा की पृष्ठभूमि पूर्वकालीन तथा समकालीन कवियों और सामान्य कवियों की भाषात्मक प्रवृत्तियों के अध्ययन से तथा सांस्कृतिक विचारधारा की पृष्ठभूमि पूर्ववर्ती एवं समकालीन समाज में प्रचलित व्यापक सांस्कृतिक मान्यताओं के सिंहावलोकन से भली भाँति समझी जा सकती है।

सूफी कवियों दाऊद मुल्ला और कुतवन के समय उत्तर भारत का जनसमुदाय सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा ही अव्यवस्थित रूप धारण कर चुका था। एक ओर तो कट्टर और एकांगी दृष्टिकोण रखने वाले विदेशी व्यक्ति अपनी अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं के न्यूनाधिक प्रचार पर बल दे रहे थे और दूसरी ओर दरबार तथा जनता दोनों के भीतर के कवि एवं सुधारक के रूप में प्रसिद्ध व्यक्ति, एक प्रकार के समन्वय का रूख अपना कर चल रहे थे। जहाँ तक सामान्य जनता के विभिन्न वर्गों में सम्बंधित समाजिक एवं सांस्कृतिक संकेतों का सम्बन्ध है, उनका अधिक स्पष्ट, प्रामाणिक एवं व्यापक स्वरूप हमें दूसरी कोटि के

व्यक्तियों द्वारा व्यवहृत भाषा के अंतर्गत मिलेगा, क्योंकि उनकी भाषा लोक संस्कृति के क्षेत्र को कहीं अधिक निकट से स्पर्श करती हैं। दाऊद मुल्ला, कुतवन, जायसी आदि सूफी काव्य परम्परा से जुड़े कवियों की भाषा जनभाषा है। उस समय जैसी जनता में प्रचलित थी वैसी ही ग्रहण कर ली गयी। चंदायन और मृगावती में घरेलू लोक संस्कृति से सम्बंधित प्रसंगों में प्राचीन एवं परम्परागत तथा सामयिक अंशों का एक साथ समावेश मिलता है। इनमें दाऊद मुल्ला और कुतवन के अपने सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभवों और दृष्टिकोणों की छाया स्पष्ट नजर आ रही है।

धार्मिक भावना के वोधक शब्द :

चंदायन और मृगावती में चौदहवीं शदी में कट्टरपंथी हिन्दू और मुसलमान जहाँ धार्मिक भावना के आधार पर समाज में वैमनुष्यता के वातावरण की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे। वहीं पर सूफी संतों ने राम और रहीम को एक रूप में प्रस्तुत कर दोनों समुदायों में भ्रातत्व भाव उत्पन्न करने का प्रयास किया। इन दोनों ग्रंथों में दोनों सुमुदायों के देवता, धर्म ग्रंथों, तिथि त्योहारों, ग्रह नक्षत्रों आदि का एक साथ समावेश मिलता है–

आराध्य एवं धर्म ग्रंथ :

सिरजनहारा, राम–रमायन, कन्ह,

(क) पहिले गावऊ सिरजनहारा। चंदायन कड़वक 1–1

(ख) तेहि मह राम रमायन चीता। मृगावती कड़वक 36–4
रावन हरी राम घर सीता।।

(ग) कन्ह सहस सोलह सैउं गोपी। मृगावती कड़वक 36–5

मुहम्मद कुरान

(क) नाऊँ मुहम्मद जगत पियारा। चंदायन कड़वक 6–1

(ख) अबाबकर, उमर, उसमान, अली सिंध ये चारि। चंदायन कड़वक 7–6

(ग) पढ़हि कुरान कठिन जो होई। मृगावती कड़वक 10–1

त्यौहार ग्रह–पत्रा

(क) माह मुहरर्म चॉदहि चारी। मृगावती कड़वक 11–2

(ख) कातिक परव दिवारी आई। चंदायन कड़वक 175–2

(ग) फागुन फाग जगत सब खेला। मृगावती कड़वक 324–1

(घ) आइर गयऊ बसंत सुहावा। मृगावती कड़वक 324–5

(ङ) गुनि गुनि पत्रा देखहु कौन गरह दहुँशुद्ध। मृगावती कड़वक 15–6

परिवार एवं अन्य रिश्तों के नाम :

चंदायन और मृगावती में सम–सामयिक समाज में परिवर एवं अन्य सम्बंधियों को लोक भाषा में जिन शब्दों से सम्वोधित किया जाता था यथावत प्रयुक्त किया गया है–

परिवार से सम्बंधित शब्द :

(क) नाऊँ काह कहि बोलई माता। मृगावती कड़वक 315–4

(ख) सातउ एक पिता कें जरमीं। मृगावती कड़वक 43–2

(ग) दीदी जाय मनावहु, चॉदा रजलस खाई। चंदायन कड़वक 46–7

(डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने दीदी का अर्थ माँ लगाया है)

(घ) देवर जेठ भाई सव लेसी। चंदायन कड़वक 260–5

(ङ) तुम्हरे घी जो सीरें आहा। चंदायन कड़वक 48–4

(च) पीउ न पूँछत बोलहु काहा। चंदायन कड़वक 48–4

(छ) सास न होउ माय तुम मोरी। मृगावती कड़वक 403–1

(ज) खरभरि सुनी सास बहुअन कें आई तेहिठा धाई। मृगावती कड़वक 398–6

(झ) मौजी कहत जरिहि तुम गाता। मृगावती कड़वक 394–3

(ञ) अवर वधाई ननद लै आई। मृगावती कड़वक 393–3

(ट) माइ मोरि तुम धाइ न होऊ। मृगावती कड़वक 49–1

(ठ) नाती पूत भए असवारा। चंदायन कड़वक 51–4

(ड) कहसि सुनहु तुम प्रान अधारी। मृगावती कड़वक 152–1

(ण) कहाँ कर तू बॉगर विटिया जारो सोई देश। चंदायन कड़वक 49–7

(त) बूढ़ी खोलिन तुम्हरी माई। चंदायन कड़वक 295–5

समाज में प्रचलित अन्य रिस्तों के नाम :

(1) कुरबोरन–इहँ कुरबोरन लाजि गॅवाई। चंदायन कड़वक 278–3

(2) कुलवंती अति सरुप सयानी और कुलवंती नारि संजोग। चंदायन क0 293–6

(3) सखी सहेलिन्ह– सखी सहेलिन्ह साथ छडायह। मृगावती कड़वक 83–4

(4) रसिया– चतुर सुजान छैल है रसिया। मृगावती कड़वक 255–7

(5) पतुरन्ह– पतुरन्ह अभरन पाएन्हि पावलही सिरभांग। मृगावती कड़वक 253–7

(6) कुॅवर– कुॅवर लाख दोई पानी चाहें। चंदायन कड़वक 21–3

(7) कुॅवर–कुॅवरी– कुॅवर कॅवरी इक इहॅवा बसा। चंदायन कड़वक 308–3

(8) जजमान– कहु जजमान सो कारन जिहि इहवा तुम आयेहु। चंदायन क0 289–6

(9) जोगिन– तू जोगीन यह भेष भरावसि। चंदायन कड़वक 261–1

(10) जोगी– जोगी सहस पाँच इक गावहिं। चंदायन कड़वक 20–5

(11) निपूती– कै रे निपूति चॉदा कोसी। चंदायन कड़वक 350–5

(12) सौति– लागिसि करई सौति कर दाई। मृगावती कड़वक 398–4

खाद्य पदार्थों के लिए प्रयुक्त शब्द :

चदांयन और मृगावती में खाद्य पदार्थो की एक बड़ी श्रृंखला है। कुतवन से अधिक दाऊद मुल्ला ने विभिन्न प्रकार के अपने समय के लोकप्रिय व्यंजनों का चंदायन में भपूर वर्णन किया है। इन पदार्थो को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

प्रथम– विभिन्न वस्तुओं से मिला कर बने पदार्थ; जैसे– पापर, मोतीचूर, बरा, मुगौरा, मिथौरी, कढ़ी, लपसी आदि।

द्वितीय– फलों और सब्जियों के नामों से बने पदार्थ; जैसे– अकछत, कनक, करेला, करौंदा, कुम्हड़ा, कैंथ, गोहूँ, तरुई चिरौंजी, जामुन आदि।

तृतीय– दूध, दही, घी आदि तथा उनसे बने व्यंजन।

दाऊद मुल्ला और कुतवन जनकवि थे, जनसामान्य की भाषा पर उकनी असाधारण पकड़ थी, उनकी सीधी पैठ थी। व्यंजनों का शब्द चित्र पाठक को सीधा चौदहवीं शदी के जनसामान्य के बीच लाकर खड़ा कर देता है।

प्रथम प्रकार के व्यंजनों के कतिपय उदाहरण :

(1)	पापर–	पापर पार भूँज उचाये।	चंदायन कड़वक 156–1
(2)	बरा मुंगौरा–	बरा मुंगौरा बड़तें कीन्हें।	चंदायन कड़वक 157–1
(3)	मिथौरी–	बने मिथौरी छड़कुल बरे।	चंदायन कड़वक 157–2
(4)	कढ़ी–	तुरसी धालि कढ़ी औटाई।	चंदायन कड़वक 157–5
(5)	लपसी–	लपसी सोंह बहुत कै लाई।	चंदायन कड़वक 157–5
(6)	मोतीचूर–	देखत मोतीचूर सुहावई।	चंदायन कड़वक 21–3
(7)	पकवान–	धरे पकवान जैतहूँत कहे।	चंदायन कड़वक 162–5
(8)	गुझियें–	पानि अदाकर गुझियें लावा।	चंदायन कड़वक 157–3

<u>दूसरे प्रकार के व्यंजनों के कुछ उदाहरण</u> :

(1) चाऊर– चाउर कन खॉड़ घिउ लोन तेल विसवार। चंदायन कड़वक 44–6

(2) करेला– करूऐं तेल करेला तरे। चंदायन कड़वक 156–2

(3) करौंदा– इमली | दरौंदा करौंदा अंबिली चारू। चंदायन कड़वक 155–5

(4) कुम्हड़ा– कुम्हड़ा भूँज साथ एक धरे। चंदायन कड़वक 156–2

(5) कैंथ– भूँजि कैंथ करेथ पकावा। चंदायन कड़वक 157–3

(6) चिरौंजी– मेज मजीठ चिरौंजी सुपारी। चंदायन कड़वक400–1

(7) कटहर– कटहर तार फरे अविरामा। चंदायन कड़वक 18–4

(8) जामुन– जामुन कै गिनवी को जाना। चंदायन कड़वक 18–4

(9) पान– पान नगर खण्ड सुरंग सुपारी। चंदायन कड़वक 28–4

(10) परवर– कुँदरैं | खेखसा परवर कुँदरें अहीं। चंदायन कड़वक 156–3

(11) घी, तुरई, अरूई– घी तुरई अरूई कहीं। चंदायन कड़वक 156–3

(12) पालक, चौलाई– चूका पालक और चौलाई। चंदायन कड़वक 156–4

(13) लौआ, लौकी– चिचिंडा, तोरई | लौआ चिचिंडा वहु तोरई। चंदायन कड़वक 156–5

(14) सौंपा, सोई– मैंथी | गंगल चुवई सौंफ औ, सोई मेथि पकान। चंदा0 क0 156–6

(15) भटा, टिन्डा– भटा टेंडस सौंधि तराये। चंदायन कड़वक 156–1

तीसरे प्रकार के व्यंजनों के नाम :

(1) दूध, भात– दूध भात ताहि भोनव दैहों और सोने के पगा। मृ0 क0 366'6

(2) घी, घिरत– खँडुई काढि घिरत में दीन्हें। चं0 क0 156–3

(3) मीठा, फीका, खाटा– मीठा, फीका, लोनगर, खाटा, कसैला तीत। मृ0क0148–6

(4) खीर– खीर दहिउ मोस मसउर औ सव पांच अंम्ब्रीत। मृ0 क0 148–7

(5) दूध– दूध फारि कै खिरसा– वॉधा दही सजाऊ। चं0 क0 157–6

कर्म या रोजगार सूचक शब्द :

प्रायः व्यवसायों के रूप में ही समाज के विभिन्न वर्गों तथा विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों के रहन–सहन तथा उनके द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं के सम्बन्ध में ठीक–ठीक जानकारी हो पाती है। चंदायन और मृगावती की शब्दावली के आधार पर विचार करें, तो उसमें व्यवसाय की दृष्टि से सामाजिक स्थिति की पर्तें सी खुली चली जाती हैं। दाऊद मुल्ला और कुतवन की शब्दावली यह निरूपित करती है कि जाति व्यवस्था जो, वैदिक काल में कर्मगत थी, चौदहवीं शदी तक आते–आते अपने विकृत रूप की चरम सीमा लॉघ चुकी थी। कर्मगत व्यवस्था पूर्णरूप से जातिगत हो चुकी थी। समाज में जाति के आधार पर कर्म या रोजगार सुनिश्चित हो चुका था–

(1) बनजारा– वहु बनिजारे खॉधहि छाए। चंदायन क0 207–6

(2) बैपारी (व्यापारी)– कंचनपुर जो अहे वैपारी। चंदायन क0 337–1

(3) कलवारिन (कलार की पत्नी)– निकरी मालिन और कलवारिन। चं0 क0 251–4

(4) कहार (पालकी लादने वाले)– पहर रात उठ चले कहारा। चं0 क0 389–3

(5) केवट (नाव खेने वाला)– पूँछा केवट पिरम भुलानॉ। चं0 क0 308–1

(6) धोवी, तेली, भड़भूँजा, नाई, कोरी– तेलि भूँज और कोरी धोवी नाऊ चेर।

चं0 क0 260–6

(7) वारी (पत्तल बनाने वाले)– राउत पायक साहन बारी। चं0 क0 96–3

(8) वॉस पोर– (वांसफार) चं0 क0

63–3

(9) वेड़िन (नाचने वाली नारी)– बेड़िन वॉस चड़त जनु आहा। चं0 क0 203–4

(10) बैना– चं0 क0 80–6

(11) भाट (चारण)– भाट कहा महर सों, तोपैं न वह बीर। चं0 क0 119–6

(12) भारिन (भाट की पत्नी)– वैस धगरिन भाटिन चली। चं0 क0 251–1

(13) नेगी (काम करने वाले)– राजइं नेगिन्ह कहा बुलाई। मृ0 क0 34–3

(14) मारी (माली)– दिन भा लोटक मारी बुलाना। चं0 क0 439–1

(15) मालिन (माली की पत्नी)– निकली मालिन और कलवारिन। चं0 क0 251–4

(16) थवई (भवन निर्माणक)– थवई बढ़ई और लुहारू। मृ0 क0 35–3

बढ़ई, लोहार

(17) चितेरा (चित्रकार)– चतुर चितेरा, अति रे विनानी। मृ0 क0 35–4

(18) पथेरा (पाथने वाले)– आए पथेरा और चुनिहारू। मृ0 क0 35–4

चुनिहार

(19) स्वर्णकार– आये सुनार जो ढारहिं पानी। मृ0 क0 35–4

(20) गड़रिया– एक गड़रिया अहै चरवाहा। मृ0 क0 167–3

परम्परागत जन विश्वासों के शब्द :

इस वर्ग के अंतर्गत जनता में प्रचलित वे सम्पूर्ण परम्परागत विश्वास आ जाते हैं जिनकी पुष्टि के लिए किसी विशेष तर्क अथवा बौद्धिक समाधान की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया जाता, वरन् उन्हें रेखागणित की स्वयंसिद्धियों की भांति मान लिया जाता है। लोग अपने जीवन के, नित्य एवं नैमित्तिक, उभय प्रकार के लौकिक व्यापारों के भीतर उन विश्वासों के प्रति सजग रहने का प्रयत्न करते हैं।

चंदायन और मृगावती में जिन विश्वासों और अंधविश्वासों का समावेश मिलता है उनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. व्याहीन छाडी जाय :

जिस महिला के साथ सामाजिक मान्यता प्राप्त विवाह सम्पन्न हुआ हो, जीवन पर्यन्त से त्यक्त करने की परम्परा नहीं थी–

कहसि व्याही न छाड़ी जाय। मृगावती कड़वक 369–5

2. सती प्रथा– (सती) :

चंदायन और मृगावती का सामाजिक और सांस्कृतिक कलेवर स्पष्ट कर रहा है कि चौदहवी शदी में सती परम्परा सर्वमान्य एक शुभ लौकिक परम्परा का रूप धारण किए हुए थी। राजकुँवर के प्रणान्त के उपरान्त मृगावती और रूपमिनि का सती होना इसका ह्रदय द्रावक प्रमाण है–

मृगावती और रूपमिनी लै कै बरी कुँवर के संघात। मृगावती कड़वक 423–6

3. देव पूजा में विश्वास (देव पूजि) :

चंदायन और मृगावती का सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन यह परिलक्षित कर रहा है कि समाज में कार्य की सफलता हेतु समाज का देवाराधना में अटूट विश्वास था--

देउ पूजि कै चाँदा। विनती ठाढ़ि कराई। चंदायन कड़वक 254–7

4. जादू मंतर में विश्वास (गुनी) :

जन साधारण का जादू मंतरों में विश्वास था इस तथ्य के भी साक्ष्य दाऊद मुल्ला और कुतवन ने अपने काव्य ग्रंथों में दर्शाये हैं– चाँदा को साँप के डसने पर एक गुनिया मंत्र से जिन्दा कर देता है–

दयी गुनी एक आनाँ– चाँदा लीन्हि जियाइ। चंदायन कड़वक 335–7

5. स्वपन की विश्वसनीयता विद्यमान थी (सपना) :

स्वप्न की वात काल्पनिक होती है, परन्तु चंदायन और मृगावती की शब्दावली यह व्यंजित कर रही है कि उस समय जन साधारण में सपने को पूर्व संदेश माना जाता था। मृगावती की सहेली का सपना उसको प्रियतम के मिलने का पूर्व संदेश दे रहा है–

कहइ बिचारि सखी एक लागी। सपना अस कोई देख सभागी। चं0 क0 365–1

श्रृंगार सूचक शब्द :

सूफी काव्यों में नायिका का नख–शिख वर्णन काव्य का अनिवार्य अंग सा प्रतीत होता है। चंदायन और मृगावती इस विशेषता से दूरी बना कर कैसे रचे जा सकते थे ? दाऊद मुल्ला और कुतवन का श्रृंगार वर्णन अनूठा और अनुपम है। इन ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दावली लोक श्रृंगार शैली की झाँकी प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ प्रतीत हो रहे हैं–

(1) कंगन– कर कंगन फिर भरे कलाई। चं0 क0 95–5

(2) कचोरा– भोंगत नारि कचोरा लाला। चं0 क0 86–2

(3) काजर– तिलक माँग चख काजर कीन्हा। चं0 क0 287–3

काजर रात चंदन भव ताता। मृ0 क0 289–2

(4) पायल, चूरा– चूरा पायल बाजहिं। चं0 क0 95–6

(5)	तेल, फुलेल–	तेल फुलेल दुवउ अनहनाए।	चं0 क0 41–1
(6)	वार (केश)–		पृष्ठ 403–3
(7)	बैनी–	बैनी गॅद जुही अरमावई।	चं0 क0 76–3
		चिहुर गूँद बैनी उरमावइ।	मृ0 क0 251–3
(8)	सारी–	पहिरि चॉद खिरोदक सारी।	चं0 क0 163–1
(9)	सेज–	सेज सौर कर नॉउ न जानौं।	चं0 क0 44–5
(10)	सैंदुर–	कै माजन सिर सैंदुर दीन्हा।	मृ0 क0 73–3
(11)	सिंगार–	सहज सिंगार भोग रस।	चं0 क0 74–7
(12)	मानिक (मणि)–	मानिक जोत जान वर।	चं0 क0 73–7
(13)	मॉग–	देखेउ मॉग बहुत जिय मारा।	मृ0 क0 50–1

<u>व्यवहारोपयोगी वस्तुओं के नाम</u> :

इस प्रकार के शब्द जनजीवन में प्रयुक्त होने वाले साधनों का वाचक करते हैं। दोनों काव्यग्रंथों में अपनाये गये कतिपय शब्द इस प्रकार हैं–

(1)	घर–	घर किय देख उजारेउ नाहा।	मृ0 क0 310–2
(2)	सुपेती–	सेत सुपेती सेज न भावै।	मृ0 क0 320–2
(3)	चूना–	काम दगध चूना होई रही।	मृ0 क0 330--5
(4)	चौडोल–	मृगावती चौडोल चढ़ाई।	मृ0 क0 356–3
(5)	खटवरि–	लै खट वाटि परी वै रानी।	मृ0 क0 400–1
(6)	चुल्हई–	चूल्हई आग न गागरि पानी।	मृ0 क0 400–1
	गागर		

(7) वैसाखी– पतरें काँखि हाथ वैसाखी। चं0 क0 420–3

(8) पालंग– पालंग सेज जो आन विछाई। चं0 क0 207–1

(9) पालकी– चढ़ी पालकी मैना रानी। चं0 क0 255–1

(10) नसैनी– हिरद नसैनी कहा सयाना। चं0 क0 239–3

(11) कापड़ (कपड़ा)– हीर पटोर सो भल कापर चं0 क0 28–6

<u>युद्ध से सम्बंधित शब्द</u> :

चंदायन और मृगावती में प्रयुक्त युद्ध सम्बन्धी शब्दावली यह ध्वनित करती है कि उस समय युद्ध में आधुनिक हथियारों की खोज तथा उनका श्रृजन नहीं हुआ था। पूर्व से प्रचलित अस्त्र–शस्त्र और अन्य साधनों के प्रयोग का प्रचलन था। काव्य–द्वै यद्यपि प्रेमाख्यान काव्य हैं फिर भी यत्र–तत्र छोटी–छोटी लड़ाइयों में युद्ध सम्बन्धी जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनमें से कतिपय शब्द इस प्रकार हैं–

(1) कटक– बसिठ जाइ कटक निपटावा। चं0 क0 104–1

(2) जमधर– फुनि जमधर सांते कर गहे। चं0 क0 131–5

(3) तरकस– बेलग सौ–सौ तरकस भरे। चं0 क0 113–2

(4) तरवार– फुनि काढ़सि बिजुरी तरवारा। चं0 क0 118–3

(5) तेग– फिरै तेग भुइँ पाउ उचावहु। चं0 क0 125–4

(6) तोपें– भाट कहा महर सौ तोपैं न वह पीर। चं0 क0 119–6

(7) धनुकारी (धनुषधर)– अगनित वीर वहुत धनुकारा। चं0 क0 97–2

(8) हथियार– विन हथियार भया राउत। चं0 क0 131–6

(9) रन– परे छाँह रन आइ। चं0 क0 116–6

(10) चढ़ा (चढ़ायी)– राजा एक नगर वहु चढ़ा। मृ0 क0 361–1

(11) सूर (बहादुर)– सूर जो अहे सिंह होई गाजे। मृ0 क0 361–3

(12) हनौ (मारना)– अव जगाई के हनौ पचारी, करौ सात दुइ खण्ड। मृ0क0 409–6

(13) वान– कुँवर बान गुन फौंक सँभारी। मृ0 क0 410–1

(14) गरजा– गरजा पूँछि मुहिम धरि मारी। मृ0 क0 410–4

<u>राजनीति सम्बन्धी शब्द सूची</u> :

राजनीति के विशद वर्णन से भारती वाङ्गमय भरा पड़ा है। चौहदवीं शदी तक आते–आते वह प्रौढ़ा अवस्था पर था। यद्यपि आधुनिक राजनैतिक गतिविधियाँ उस समय प्रचलन में नहीं थी, फिर भी जो स्वरूप राजनीति का था वह अनूठा था। चंदायन और मृगावती में समकालीन राज–काज पद्धति एवं प्रयुक्त पदों के लिए जो शब्द प्रचलन में थे, उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप इस प्रकार हैं–

(1) राजा– साह हुसैन आह बड़ राजा। मृ0 क0 7–1

(2) मंत्री– राजहिं पूँछि देख मन मंत्री। मृ0 क0 147–1

(3) नरिंद–महाजन– बइठे नरिंद महाजन भारी। मृ0 क0 207–5

(4) नेगी– नेगी हमही चलावहिं काजू। मृ0 क0 355–4

(5) महते– महते लोगन्ह महा गोसाई। मृ0 क0 355–3

(6) सिंहासन– छात सिंहासन इन्हहिं पै छाजा। मृ0 क0 7–1

(7) राजवंस– साचेहु राजवंश है कोई। मृ0 क0 147–2

(8) सभा– सभा जाइ कै बैठ सुजाना। मृ0 क0 153–3

(9) राजपाट– राज पाट छाड़ेउ सब जारेउं। मृ0 क0 172–3

विवाह सम्बंधी शब्द सूची :

प्रत्येक समय में मानव समाज के जीवनयापन के कुछ रीति रिवाज रहे हैं। भारतीय संस्कृति में इसे संस्कार की संज्ञा दी गयी है। संस्कार सोलह होते हैं। उनमें से एक विवाह संस्कार है। चंदायन और मृगावती में इस संस्कार के लिए प्रयुक्त शब्दावली उस समय की विवाह प्रणाली का सटीक द्योतन कर रही है–

(1)	विवाह–	करहु बियाह चॉद घर आवा।	चं0 क0 41–5
(2)	बरात–	भाट कलावंत बहुरिया, तस होइ चली बरात।	चं0 क0 42–7
(3)	बराती–	चीर पटोर बराती मॉगा।	चं0 क0 42–3
(4)	भॉवरि–	गॉठि जोरि कै भॉवरि दही।	मृ0 क0 150–5
(5)	गॉठ–	गॉहि बोलि बामन कर बॉधा।	मृ0 क0 150–1
(6)	मुकुट–	मुकुट वॉधि कै कुॅवर वैसारा।	मृ0 क0 149–4
(7)	जैमारा (जैमाला)–	रूपमिन कर जैमार गही।	मृ0 क0 149–5
(8)	रीतिचार–	रीति चार कुल अहीं सो किही।	मृ0 क0 150–5
(9)	दाइज (दायजा)–	दाइज अस करि दीतिसि जग मह।	मृ0 क0 150–6
(10)	मैके– ससुरे	मैके ससुरे कतहुॅ न ठाऊँ।	मृ0 क0 2396–5
(11)	सगाई–	राजा नीके करहु सगाई	च0 क0 38–4

आलोच्य कृतियों में व्यवहृत शब्द भण्डार :

चंदायन और मृगावती में उपलब्ध शब्द भण्डार को ऐतिहासिक (व्युत्पत्तयक) दृष्टि से चार वर्गों में रखा जा सकता है–

(क) तत्सम शब्द (ख) तद्भव शब्द

(ग) देशज शब्द (घ) विदेशज शब्द

(क) <u>तत्सम शब्द</u> : इनका मूल्यांकन करने के लिए सबसे पहले इस बात का स्मरण कर लेना चाहिए कि दाऊद मुल्ला और कुतवन अपनी कृतियाँ उस समय की जनभाषा में ही करना चाहते थे। कवियों और जनता दोनों के लिए संस्कृत भाषा दुर्बोध और अव्यवहारिक थी। इसी कारण कवि द्वै ने जनभाषा को ही अपनी कृतियों का माध्यम बनाया। जो भी तत्सम शब्द चंदायन और मृगावती में व्यवहृत हुए हैं वह वही शब्द हैं, जो भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक महत्व नहीं रखते, क्योंकि संस्कृत से ही क्रमशः पाली, प्राकृत अपभ्रंश आदि अवस्थाओं के बीच होकर विकसित होने के कारण ऐसे शब्दों की कोई भिन्न सत्ता हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। चंदायन और मृगावती में व्यवहृत तत्सम शब्दों के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं–

गज–	गज गौनहिं जग साँसै होई।	मृ0 क0 8–5
गृह–	पिता गृह दिन करतिहु पीसा।	मृ0 क0 398–2
दासी–	सेव करौं मैं दासी तोरी।	मृ0 क0 88–1
सलिल–	नैन सलिल कर मल–मल धोवा।	मृ0 क0 111–3
रसनां–	लोइन लाव न रसना हारै।	मृ0 क0 40–2
देह–	नैन नीर देह मुँह छिरकहिं।	चं0 क0 66–7
दिवस–	सिरजा इह दिवस बयारा।	चं0 क0 1–1
नृप–	छाड़ देश नृप भागा।	चं0 क0 13–6
नाग–	सुर नर नाग सीस फुन डोला।	मृ0 क0 58–5

(ख) <u>तद्भव शब्द</u> : जो शब्द संस्कृत और प्राकृत से विकृत होकर हिन्दी में आये हैं, वह तद्भव हैं। चंदायन और मृगावती में तद्भव शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

कान–	सवद सुहावन कान पर।	चं0 क0 22–7
साँप–	चाँदहि खाइह साँप।	चं0 क0 316–7

गयंद–	चित्त महुत्त गयांद जेऊं।	मृ0 क0 38–7
राजपुत–	अति स्वरूप राजपुत आहैं।	चं0 क0 177–2
घर–	घर–घर मंगल चार।	चं0 क0 29–7
तुरिय–	तिहि तुरिया चढ़ि लोर बहिरावा।	चं0 क0 395–3
जीभि–	मुंह मह जीभि सहस जौ होई।	मृ0 क0 10–4
घाट–	परस घाट सबै बाँधे।	मृ0 क0 24–6
धिय–	सहदेव महर घर चॉ।	चं0 क0 73–6
बेटी–	राज जीत घर बेटी दीजा।	चं0 क0 40–3
धूरि–	पाछे परई सो धूरि लगावा।	मृ0 क0 8–2
जोई–	कहॅक प्ररूष कहॉ कै जोई।	चं0 क0 39–4
सयाना–	सुन साधो तू पंडित सयाना।	चं0 क0 39–1
नैन–	नैन सीप जस मोतिहिं भरे।	चं0 क0 50–4
पदुम–	जस रे पदुम नागिन रस करै।	मृ0 क0 55–1
सवन–	सुरपति सभा सवन जो सुनी।	मृ0 क0 208–2
वासुकि–	वासुकि नाग पतारहि गवेऊ।	चं0 क0 116–1
अभ्भ–	सीतल सेत अभ्भ कर रूपा।	मृ0 क0 23–1
धर–	छाड़ि चली धर अधमित।	मृ0 क0 47–7
बान–	बान मार जग सऊँ फिर हेरा।	मृ0 क0 53–1
तरुनी–	एहिरे अवस्था तरुनि भुलानी।	मृ0 क0 287–3
वाट–	सो महि वाट आई दिखराऊ।	चं0 क0 198–4
कुटुम्ब–	जीत बुलाये लोग कुटुम्ब।	मृ0 क0 23–7

(ग) **देशज शब्द** : चंदायन और मृगावती में देशज शब्दों का प्रयोग यत्र–तत्र सीमित मात्रा में दृष्टिगत हुआ है। फिर भी जिस मात्रा में ऐसे प्रयोग आएं हैं, उनका भी अपना महत्व है और उसके पीछे भी कुछ विशेष परिस्थिति जन्य कारण अथवा कवियों का व्यक्तिगत उद्देश्य अवश्य विद्यमान है।

भोला (सरल) वि0–	ताकर मरम न जानई भोला।	मृ0 क0 98–3
भसल–	भसल वास रस चमकहिं भूले।	मृ0 क0 204–3
भॉवरि–	गॉठ जोरि कै भॉवरि दिही।	मृ0 क0 150–5
सहेली–	सखी सहेली हों साथ लगाई।	मृ0 क0 83–2
कोड (खेल)–	कोड करहिं रहसहिं सरवर महं।	मृ0 क0 42–7
गह (भाव)–	राजहिं देख कुँवर गह भरी।	मृ0 क0 136–3
चोख (शुद्ध) वि0–	सुझर पानि देखत अति चोखा।	मृ0 क0 25–1
नीक वि0–	धरमसार एक नीक उचावा।	मृ0 क0 154–1
पायंड (अनूववाला)–	पायंड छूटि तरंगम आए।	मृ0 क0 90–3
पोटरी (गठरी)–	पोटरी जो कांख पोथिलइ सेई।	मृ0 क0 339–4
वाखर–	वाखर तुरियन्ह पयेउ पलानी।	मृ0 क0 352–1
बीरा–	बीरी पान खंड़ि कै खाए।	मृ0 क0 74–2

(घ) **विदेशज शब्द** : चंदायन और मृगावती में उस समय जनभाषा का रूप धारण कर चुके कुछ विदेशज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। आलोच्य कृतियों में विदेशज शब्दों का प्रयोग सायास ने होकर अनायास ही प्रतीत होता है। दाऊद मुल्ला और कुतवन की भाषा में अरबी–फारसी तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का आगमन जिन परिस्थितियों में सम्भव हुआ है, अथवा जिन वैयक्तिक अथवा सामाजिक दृष्टिकोणों ने उनको विविध रूपों में उपस्थित होने का अवसर प्रदान किया है, उसका कारण यह है कि मुस्लिम बादशाहों एवं अन्य स्लाम धर्मानुयायी तुर्की,

अर्वी एवं फारसी लोगों का भारत आगमन एवं स्वयं कवियों का अरबी–फारसी का ज्ञाता होना।

आलोच्य कृतियों में प्रयुक्त हुए कुछ विदेशज शब्दों का रूप दृष्टव्य है–

खून–	चील खून मासें लै जावै।	चं0 क0 107–3
तीर–	तीर बैठि ते लेहिं भर आहें।	चं0 क0 21–4
सुल्तानु–	साहि फिरोज दिल्ली सुल्तानु।	चं0 क0 17–2
गुलाल–	मालति वेल गुलाल सुहाई।	मृ0 क0 202–4
गुजर–	हम कहँ गुजर देह तौ जाइ।	मृ0 क0 198–3
आगाह–	हँसत कुँवर कहँ भयऊ आगाहू।	मृ0 क0 99–1
गाहे(स्थल)–	अव लहि अइस न हुअ इहि गाहे।	मृ0 क0 44–4
मुहम्मद–	नॉउ मुहम्मद जगत पियारा।	चं0 क0 6–1
कुरान–	पदहि कुरान कठिन जो होई।	मृ0 क0 10–1
मुहर्रम–	माह मुहर्रम चॉदहि चारी।	मृ0 क0 11–2
पीर (सिद्ध)–		मृ0 क0 6–1

= = = = =0= = = = =

प्रकरण—3

संज्ञा परक पर्याय

(क) जाति वाचक संज्ञा पर्याय

(ख) व्यक्ति वाचक संज्ञा पर्याय

(ग) भाव वाचक संज्ञा पर्याय

(3) संज्ञापरक पर्याय

(क) जाति वाचक संज्ञा पर्याय :

जिन संज्ञायों से एक ही प्रकार की वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का बोध हो उन्हें जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। यथा–मनुष्य, घर, पहाड़, नदी आदि। मनुष्य कहने से संसार की मनुष्य जाति का, घर कहने से सभी तरह के घरों का, पहाड़ कहने से संसार के सभी पहाड़ों का और नदी कहने से सभी प्रकार की नदियों का जातिगत बोध होता है अथात् जो नाम व्यक्ति विशेष का निर्देशन करके वस्तु विशेष के सम्पूर्ण वर्ग की ओर संकेत करते हैं, उन्हें ही जातिवाची संज्ञाऐं कहा जाता है।

जातिवाचक संज्ञाएं निम्नांकित स्थितियों में होती हैं–

1. सम्बंधियों, व्यवसायों, पदों, कार्यो के नाम।
2. पशु पक्षियों का नाम– घोड़ा, गाय, कौआ, तोता, मैना आदि।
3. वस्तुओं के नाम– मकान, कुर्सी, पुस्तक आदि।
4. प्राकृतिक तत्वों के नाम– तूफान, बिजली, वर्षा, भूकम्प आदि।

चंदायन और मुगावती के व्यापक कलेवर में कवि द्वै ने इस प्रकार के असंख्य शब्दों का प्रयोग किया है। उक्त दोनों ग्रंथों में प्रयुक्त समानार्थी जातिवाचक संज्ञाओं का विवेचन इस प्रकार है–

✠ चंदायन– अगिन (अग्नि) :

अगिन का विशुद्ध रूप अग्नि है। मुल्ला दाऊद ने चंदायन में इस शब्द का प्रयोग पाँच[1] बार किया है। ये सभी शब्द विषय प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता को दृष्टिपथ में रखकर प्रयुक्त किये गये हैं। सभी स्थलों पर अगिन का प्रयोग साधारण अग्नि के रूप में किया गया है, किसी विशिष्ट प्रयोजन से नहीं।

---

1. चंदायन कड़वक सं. 35–6, 141–4, 143–1, 249–2, 450–5

2. <u>आग :</u>

'आग शब्द' अग्नि का तद्‌भव रूप है। विकास की प्रक्रिया में 'अग्नि' की पवित्रता का भाव 'आग' तक आते–आते लुप्त हो गया और अब वह सामान्य अर्थ का वाचक रह गया है। चन्दायन में इस शब्द का प्रयोग दो बार हुआ है–

लावई आग सेज दिन मोरी।[1]

आग लाई घर अपने, लोर दहॉ दिसि धावहूँ।[2]

यहाँ पर प्रथम 'आग' का प्रयोग विरहाग्नि के अर्थ में हुआ है और उसक दूसरा प्रयोग 'कष्ट' का द्योतक है।

3. <u>अंगारा</u> :

'अंगारा' 'आग' का ही परिवर्तित रूप है। कवि ने अंगारा का भी प्रयोग मुसीबत के भाव को व्यक्त करने के उद्‌देश्य से किया है। अंगारा शब्द का प्रयोग सभिप्राय है।

4. <u>झार</u> :

अग्नि का ही भाव 'झार' शब्द से ध्वनित होती है। कवि ने विरहाग्नि से दग्ध नायिका की स्थिति के द्योतन के लिये 'झार' शब्द का प्रयोग एक नवीन विरह चित्र का प्रस्तुतीकरण है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति मात्र एक बार[3] हुयी है।

5. <u>दौं</u> :

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग नायिका की बिरह–व्यथा की अभिव्यंजना के लिये हुआ है अर्थात् उक्त शब्द का प्रयोग दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'दौं' का प्रयोग साध ारण अग्नि के रूप में नहीं, बल्कि बिरहग्नि के भाव को प्रकट करने के लिये किया गया है। 'चंदायन' में 'दौ' शब्द का प्रयोग केवल एक बार हुआ है–

विरहा सतुर देह दौं लावइ। भसम करै मुख अंग चढ़ावई।।[4]

---

1. चंदायन कड़वक सं. 240–4
2. वही – 245–6
3. वही – 184–3
4. चंदायन कड़वक स. 406–3

मृगावती– आगि :

मृगावती में आगि शब्द 12 स्थलों[1] पर प्रयुक्त हुआ है। कुतवन ने इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया है। अधिकतर स्थलों पर आगि शब्द का प्रयोग नायिका की बिरहाग्नि की व्यंज्जना के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा–

जैसे हिं आगि जरति 'अही' उर महि येइं मेले अदिय तेल।[2] आगी[3] ओर अगिन[4] के रूप में भी आगी शब्द का प्रयोग हुआ है।

हुतासन :

कवि ने इस शब्द का प्रयोग मृगावती में दो[5] स्थलों पर किया है। आहुति के लिये प्रज्वलित अग्नि 'हुतासन' कही जाती है। हुताशन का शुद्ध रूप हुतासन है। हुतासन शब्द के प्रयोग में एक विशिष्ट प्रयोजन परिलक्षित होता है।

वैसंदर :

बैश्वानल का विकृत रूप है। इस शब्द का प्रयोग किसी विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हेतु नहीं, वल्कि अग्नि के साधारण रूप को इंगित करने के लिये किया है। मृगावती में इसकी आवृत्ति मात्र एक वार[6] हुई है।

अनल :

यह शब्द अग्नि की आवृत्ति का वाचक है, जो बहुत सी वस्तुओं को जलाकर भी तृप्त न हो, वह अनल है।[7] कुतबन ने मृगावती में इस शब्द का प्रयोग निम्नवत् किया है–

मूरति भरम छया पै रही। कया अनल विरहानल डही।[8]

यहाँ पर अनल शब्द का प्रयोग सटीक और साभिप्राय हुआ है।

---

1. मृगावती कड़वक सं. 40–3, 5, 160–7, 176–2, 195–6, 215–5, 267–5, 293–1, 327–1, 333–2, 385–7, 400–1
2. मृगावती कडवक सं. 195–6
3. मृगावती कडवक स. 245–5, 102–2
4. मृगावती कड़वक सं. 40–1, 68–5
5. मृगावती कड़वक सं. 216–6, 282–3
6. मृगावती कड़वक सं. 138–1
7. नास्ति अलः बहुदाहश वस्तु दहनेऽपि तृप्तिर्यस्थ सः।
8. मृगावती कड़वक सं. 31–5

पावक :

व्युत्पत्ति के अनुसार जो पवित्र करे वह पावक है।[1] कुतबन ने अग्नि के पवित्र रूप को व्यंजित करने के लिये ही पावक शब्द का प्रयोग किया है।

जेहि रसना ओहि नाउन आवा। पावक जेर मोख नहिं पावा।।[2]

पवित्र अग्नि भी मोक्ष नहीं प्राप्त करा सकती है। पावक शब्द का प्रयोग मृगावती में दो वार[3] हुआ है।

✠ अभरन (आभूषण) :

आभूषण शब्द का विकृत रूप अभरन है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग किसी भाव विशेष की प्रतीति हेतु नहीं किया गया है, बल्कि आभूषण संज्ञा को व्यक्त करने के लिये साधारण रूप में प्रयोग किया गया है। इसका प्रयोग एक बार[4] किया गया है।

गहन (गहना) :

गहना शब्द को ही गहन के रूप में कवि ने प्रयोग किया है। यह शब्द भी आभूषण की भाँति गहना के साधारण रूप को व्यक्त करने के दृष्टि से किया गया है। इसका भी प्रयोग चंदायन में मात्र एक बार[5] हुआ है।

✠ चंदायन– अरथ :

धन के अर्थ में प्रयुक्त 'अरथ' शब्द अर्थ का अशुद्ध रूप है चंदायन में इस शब्द का प्रयोग चार[6] स्थानों पर हुआ है। सभी स्थलों पर अर्थ के साधारण रूप का द्योतन करता है।

चंदायन– दरब :

संस्कृत के द्रव्य शब्द का तद्भव रूप है। चंदायन में इसकी आवृत्ति आठ[7] बार

---

1. पुनातीति।–शब्द कल्प द्रुम।
2. मृगावती कड़वक सं. 4–3
3. मृगावती कड़वक सं. 3–7, 4–3
4. च0 क0 210–3
5. च0 क0 210–3
6. च0 क0 67–6 105–3, 115–5, 291–4
7. च0 क0 32–6, 80–7, 172–7, 222–2, 337–6, 346–4, 351–7, 417–3

हुई है। दरब शब्द भी किसी अर्थ वैशिष्टय की दृष्टि से प्रयोग नहीं किया गया है। अरथ–दरब दो समानार्थी शब्दों का प्रयोग कर कवि वैभव के गाम्भीर्य स्वरूप को निरूपित करना चाहता है।

चंदायन धनु :

यह 'धन' का तद्भव रूप है। चंदायन में इसकी आवृत्ति एक[1] बार हुयी है। धन के साधारण रूप को व्यक्त करने के ही उद्देश्य से इसका प्रयोग हुआ है।

✠ **चंदायन अरथ (अर्थ) :**

अर्थ शब्द का तद्भव रूप है। 'चंदायन' में इसका प्रयोग केवल एक वार[2] हुआ है।

मौलाना दाऊद यह गित गाई। जेंरे सुना सो गा मुरझाई।

धनि ते सबद धनि लेखनहारा। धनि ते बोल अरथ बिचारा।।[3]

उद्धृत पंक्तियों में चंदायन के काव्य कौशल को कृतिकार ने स्वयं स्पष्ट किया है। अर्थ के साधारण भाव को व्यक्त करने के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

मृगावती–अरथ :

मृगावती में भी अरथ शब्द का प्रयोग हुआ है। किसी भाव वैशिष्ट्य की प्रस्तुति हेतु नहीं बल्कि उसके अभिधेयार्थ के द्योतन के लिये। ग्रंथ में इस शब्द का प्रयोग मात्र एक ही स्थल पर मिला है–

पढ़हि कुरान जो होई। अरथ कहहिं समुझावहिं सोई।[4]

चंदायन– भाऊ :

भाव शब्द का विकृत रूप है। चंदायन में इसका प्रयोग दो[5] स्थलों पर उपलब्ध है। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ का वाचक है।

रस मँह बिरस संचारे चितहि चढ़ाकस भाऊ।[6]

---

1. च0 क0 422–3
2. च0 क0 360–2
3. च0 क0 360–2
4. मृ0 क0 10–1
5. च0 क0 242–7, 246–4,
6. च0 क0 242–7

मृगावती– भावा–भाव :

मृगावती में भावा शब्द तथा भाव शब्द क्रमशः एक[1]–एक[2] बार प्रयोग किये गये हैं। दोनों स्थलों पर इनका साधारण रूप ही परिलक्षित होता है।

एक–एक बोलक दस–दस भावा[3]।

यहाँ पर भावा शब्द से अर्थ की प्रतीति स्पष्ट झलक रही है।

✠ चंदायन– अरथ :

अर्थ शब्द का विकृत रूप अरथ है। इस शब्द का प्रयोग चंदायन में एक स्थल पर अभिधेयार्थ के द्योतन हेतु इस प्रकार किया गया है–

घरी केस तू यहिं गुहरावसि। सोवत लोग केहि अरथ जगावसि।[4]

उक्त पंक्ति में अरथ का तात्पर्य कारण से है।

चंदायन–काज :

कार्य शब्द का तद्‌भव रूप है। इसका प्रयोग मात्र एक बार चंदायन में मिला है, जो निम्नवत् है–

अभरन काज न आवइ मोरे। रूप भुलानेउँ चाँदा तोरे।

✠ चंदायन– अरि :

किसी को आघात या पीड़ा पहुंचाने वाला व्यक्ति अरि कहलाता है।[5] चंदायन में शत्रुवाची इस शब्द का व्यवहार मात्र एक[6] ही बार हुआ है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से ही किया गया है। अर्थ वैशिष्ट्य या काव्यगत सौन्दर्य इन प्रयोगों में दृष्टिगोचर नहीं होता।

---

1. मृ0 क0 10–2
2. म0 क0 102–1
3. च0 क0 210–4
4. च0 क0 210–5
5. मानक हिन्दी कोश
6. च0 क0 376–5

चंदायन सतुर–सतुरहि :

सतुर शब्द शत्रु का ही एक रूप है। शत्रु शब्द संस्कृत की 'शद!' धातु से बना है। शत्रु का अर्थ है, जो नष्ट करे या जिसे नष्ट किया जाय वह शत्रु है। चंदायन में सतुर और सुतुरहि शब्द क्रमशः दो[1] और एक[2] स्थल पर ही प्रयुक्त हुआ है। अर्थ की दृष्टि से इन शब्दों में कोई वैशिष्ट्य प्रतीत नहीं होता है।

चंदायन–बैरिन :

बीरस्थ भावः बैर।[3] बैरयस्यास्तीति बैरी[4]। इस उत्पत्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि जो बैर भाव से युक्त है या जिसमें वीरता है, वह बैरी है। शत्रुता उन्हीं से होती है जिनमें दूसरों का सामना करने की सामर्थ्य हो। जो कायर और डरपोक होगा वह अपने से शक्तिशाली व्यक्ति का किसी प्रकार भी विरोध नहीं करेगा। इसी कारण वीरत्व के भाव को ही बैर कहा गया। चंदायन में बैरिक शब्द का प्रयोग एक[5]– बार किया गया है। यहाँ पर बैरिंन शब्द स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

✠ चंदायन– अहार :

अहार का तात्पर्य है भोजन। चंदायन में भोजन के अनेक पर्याय प्रयुक्त हुये हैं। कुछ साधारण अर्थ में एवं कुछ विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हेतु प्रयुक्त हुये हैं। चंदायन में अहार शब्द एक बार इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है।

खटरस होइ महारस, तिलकुट कियउ अहार।[6]

यहाँ पर अहार शब्द भोजन के साधारण भाव को व्यक्त करतने के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। किसी विशेष प्रयोजनार्थ नहीं।

---

1. च0 क0 349–1, 406–3
2. च0 क0 114–3
3. शब्द कल्प द्रुम।
4. हलायुध कोश।
5. च0 क0 348–1
6. च0 क0 155–7

चंदायन– रसोई :

भोजन के अनेक पर्यायवाची शब्दों में एक शब्द रसोई भी है, जिसका चंदायन में एक[1] स्थल पर प्रयोग किया गया है। रसायन से रसोई शब्द बना है। यहाँ पर विभिन्न रसायनों के योग तथा अन्य खाद्य पदार्थों से मिलकर बनायी गयी वस्तु रसोई है। यह शब्द यहाँ पर भोजन के अभिधेयार्थ को व्यक्त करता है।

चंदयान– पकवान :

पक् धातु से पकवान की रचना हुयी है। पक धातु में वान प्रत्यय के योग से पकवान शब्द का सृजन हुआ है। पकवान शब्द से ध्वनित होता है पका हुआ। भोजन शब्द से यह ध्वनित नहीं होता है कि यह पका हुआ है या कच्चा, लेकिन पकवान शब्द से स्पष्ट होता है कि अमुक खाद्य पदार्थ पका हुआ है। भोजन शब्द में जहाँ विस्तार है वहीं पकवान में अर्थ संकोच है। इस शब्द का प्रयोग एक ही स्थल पर इस प्रकार हुआ है–––

धरे पकवान जेत हुँत कहे। फल संधान लाख इक अहे।[2]

यहाँ पर पकवान शब्द साधारण भावाभिव्यति हेतु प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– अमरित :

अमृत शब्द का तद्भव रूप है। अमृत शब्द से ध्वनित होता है कि अमृत वह है जो अमर करे। परन्तु चंदायन में अमरित शब्द विशिष्ट भोजन की प्रतिति हेतु प्रयुक्त हुआ है। इसकी आवृत्ति एक ही स्थल पर निम्नवत् हुयी है–

अमरित जेवत माहुर भयो। जीव सो हर चाँदें लियो।[4]

यहाँ कवि ने उपमान (भोजन) और उपमेय (अमृत) में अभेद दर्शाया है। यहाँ अमृत शब्द की उपस्थिति काव्य में अर्थ सौन्दर्य स्थापन की कवि हृदयेक्षा की द्योतक है।

---

1. च0 क0 155–1
2. च0 क0 155
3. च0 क0 162–5
4. चं0 क0 163–4

चंदायन– रसायन :

'रस' शब्द में आयन प्रत्यय के लगाने से रसायन शब्द बना है। चंदायन में भोजन शब्द के अनेक पर्याय प्रयुक्त हुये हैं। सभी पर्याय एक दूसरे के समानार्थी होते हुये भी उनकी अर्थच्छाया भिन्न है। रसायन शब्द भोजन की भावाभिव्यक्ति के लिये अन्यत्र प्रयुक्त हुआ हो अभी तक दृष्टिपथ में नहीं आया है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है।

बहुल रसायन देखेऊँ चाखी। रस कहानी कहु महँ भाखी।।[1]

यहाँ रसायन शब्द विशिष्ट भोजन की प्रतिति का सटीक और सुन्दर प्रयोग है।

चंदायन– भुगुति :

चंदायन में डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने भुगुति शब्द का अर्थ भोजन बताया है।[2] चंदायन में भुगुति शब्द एक बार[3] आया है।

✠ **चंदायन– अखियाँ :**

आँख का बहुवचन अखियाँ है। आँख शब्द अक्षि का तद्भव रूप है। हिन्दी साहित्य में आँख का प्रचुर मात्रा में प्रयोग उपलब्ध है। आँख के सम्बन्ध में डा0 रामचन्द्र वर्मा ने एक संस्मरण की प्रस्तुति इस प्रकार की है– "मेरे विद्यागुरू स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा कहा करते थे– आँख की सभी बातें बुरी होती हैं। उसका आना बुरा, जाना बुरा, उठना बुरा, बैठना बुरा, देखना बुरा, दिखाना बुरा, सब कुछ बुरा[4]।" डा0 वर्मा के इस संस्मरण में आँख शब्द की महत्ता स्पष्ट झलक रही है। आँख जहाँ अभिधेयार्थ में एक इंद्रिय के रूप में प्रयुक्त होती है। वहीं इसका प्रयोग विद्वानों ने अपनी रचनाओं में व्यंजार्थ एवं लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु अधिक किया है।

---

1. च0 क0 184–4
2. च0 पृष्ठ 189
3. च0 क0 188–2
4. शब्दार्थ दर्शन पृ0 193

आँख का प्रयोग कुछ अवस्थाओं में एक बचन में होता है, कुछ अवस्थायें ऐसी भी हैं जिनमें आँख का प्रयोग बहुवचन में होता है। पर कुछ अवस्थायें ऐसी भी हैं, जिनमें आँख का प्रयोग विकल्प से दोनों बचनों में होता है। आँख आना (रोग) बहुधा एक बचन में ही प्रयुक्त होता है। यही बात आँख लगना के सम्बन्ध में भी है, जिसके चार अर्थ होते हैं– एक तो झपकी या हल्की नींद आना और दूसरा श्रृंगारिका प्रसंग में किसी के प्रति अनुरागात्मक प्रवृत्ति होना। किसी उर्दू शायर ने लिखा है– न लगी आँख जबसे आँख लगी। तीसरा अर्थ प्रतीक्षा के प्रसंग में होता है, जैसे– किसी ओर आँख लगाना। और चौथा अर्थ होता है– लोभ या लोलुपता के प्रसंग में, जैसे– तुम्हारी इस किताब पर हमारी बहुत दिनों से आँख लगी है। कड़ी निगाह या पूरे ध्यान के अर्थ में भी 'आँख' का सदा एक बचन में प्रयोग होता है, जैस– उस पर आँख रखना, कोई चीज उठा न ले जाय। आँखें तरेरना, आँखें निकालना, आँखें पथराना, आँखें फेरना आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं। आँखें ऊँची करना या आँख ऊँची करना, आँखें मटकाना या आँख मटकाना, आँख मिलाना या आँखें मिलाना आदि ऐसे प्रयोग हैं, जिनमें एक बचन का भी प्रयोग होता है और बहुवचन का भी। आँखों के प्रयोगों के सम्बन्ध में वचन का यह तत्व भाषा की शुद्धता के विचार से बहुत ही महत्व का है।

चंदायन में 'आँखियाँ' शब्द का प्रयोग एक स्थल पर इस प्रकार हुआ है–

उनत जोबन भई चाँदा रानी। नाँह छोट औ आँखियाँ कानी।।[1]

यहाँ पर 'अंखियाँ' शब्द का प्रयोग किसी व्यंजार्थ या लक्ष्यार्थ की विशिष्ट प्रतीति हेतु न होकर मात्र इंद्रिय बोधन हेतु अभिधेयार्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>मृगावती– आंखिउ, आंखिन्ह</u> :

मृगावती में भी आँख शब्द का प्रयोग कुतबन ने आंखिउ और आंखिन्ह के रूप में क्रमशः एक[2] और तीन[3] स्थलों पर किया है। सभी स्थलों पर कवि ने आँख शब्द का प्रयोग आँख के अभिधेयार्थ की प्रस्तुति हेतु किया है।

---

1. च0 क0 45–2
2. मृगा0 क0 334–4
3. मृगा0 क0 42–5, 342–3, 368–2

एक देवस मैं सोनत अहा। सांठि लिहिसि और आंखिउ द्रहा।।[1]

यहाँ पर आँख का प्रयोग इंद्रिय के भाव को व्यक्त कर रहा है।

चंदायन– लोयन :

लोचन शब्द का अपभ्रंश रूप है। चंदायन में इसका भी प्रयोग एक ही स्थल पर एक बार हुआ है।

जागत लोयन आधी राती। पहरेदार पिउ घर तरसहि राती।।[2]

नायिका पिय वियोग में रात भर जागती है। 'जागने' शब्द में ही आँखों की अर्थच्छाया निहित है। फिर भी दाऊद मुल्ला ने श्रुति माधुर्य एवं नाद सौंदर्य के लिये लोयन शब्द का पृथक से प्रयोग सटीक ही किया। इसका प्रयोग अभिधेयार्थ में ही हुआ है।

मृगावती– लोइन–लोयन :

मृगावती में लोइन और लोयन शब्द क्रमशः चार[3] बार एवं एक[4] बार प्रयोग किये गये हैं। सर्वत्र इन शब्दों का प्रयोग साधारण अर्थ की प्रतीति हेतु हुआ है। अर्थ वैशिष्ट्य की दृष्टि से किसी भी स्थल पर इसका प्रयोग अनुपलब्ध है।

लोयन सेत बरन रतनारे। कवल पत्र भँवर संवारे।।

यहाँ पर लोयन शब्द नायिका के रूप सौंदर्य के निमित्त अभिधेयार्थ में ही किया गया है।

चंदायन– नैन :

नयन शब्द का तद्भव रूप है। आँख का समानार्थी हैं। यह कहना अतियुक्ति न होगा कि हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक मुहावरे कदाचित नयन से ही सम्बद्ध है, जिनका वर्गीकरण और विवेचन बहुत ही श्रमसाध्य है। ये मुहावरे मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किये

1.
2. चं० क० 54–5
3. मृगा० क० 32–6, 40–2, 41--3, 276–5
4. मृगा० क० 55–1

जा सकते हैं। पहला भाग स्वयं शारीरिक इंद्रिय से सम्वद्ध रखने वाले मुहावरों का है जैसे– नयन मटकाना, नयनों से बात करना आदि। मुहावरों का दूसरा वर्ग नयन को देखने वाली शक्ति से सम्बन्ध रखता है। जैसे– नयन लड़ाना, नयन मिलाना आदि। मुहावरों का तीसरा वर्ग है, जिसमें विशुद्ध लाक्षणिक रूप से होने वाले प्रयोग आते हैं, जैसे– नयन का तारा, नयनों की पुतली, नयन चुराना आदि। नैन शब्द का प्रयोग भक्ति कालीन कवियों ने इस प्रकार किया है–

आव नहीं आदर नहीं नहिं नैनन सौं नेह।

तुलसी वहाँ न जाइये कंचन वरसें मेह।।[1]

रीतिकाल में सतसई की नायिका नयनों से बात करती नजर आती है। चंदायन में नैन शब्द की आवृत्ति नौ[2] बार हुयी है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार है–

नैन सीप जस मोतिहिं भरे। रोथसि चाँद आँसू तस डरे।।[3]

यहाँ पर कवि की विलक्षण काव्य प्रतिभा का समावेस दृष्टिगोचर हो रहा है। नायिका के नयनों को सीप बता कर रूपक अंलकार की प्रस्तुति अवलोकनीय है।

इसी प्रकार अधिकांश स्थलों पर नैन शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट व्यंजार्थ की प्रस्तुति हेतु प्रयुक्त नजर आता है।

मृगावती– नैन, नयन, नयनन, नैनन्ह :

मृगावती में नैन, नयन, नयनन एवं नैनन्ह शब्द क्रमशः इक्कीस[4], एक[5], एक[6], एवं एक[7] बार प्रयुक्त हुआ है। कुतबन ने कतिपय स्थलों को छोड़ कर प्रायः सभी स्थलों पर नयन शब्द को सामान्य अर्थ में ही ग्रहण किया है।

---

1. रामचरित मानस
2. चं0 क0 50–4, 66–7, 68–4, 69–1, 69–3, 79–1, 79–5, 79–6, 90–5
3. चं0 क0 50–4
4. मृगा0 क0 28–7, 23–2, 39–1, 4, 52–2, 61–7, 399–5, 39–1, 4, 3, 61–7, 111–3, 113–1, 200–6, 276–4, 290–7, 299–1, 343–6, 383–5, 399–5, 401–2, 293–4
5. मृगा0 क0 27–5   6. मृगा0 क0 71–7   7. मृगा0 क0 52–2

जा सकते हैं। पहला भाग स्वयं शारीरिक इंद्रिय से सम्वद्ध रखने वाले मुहावरों का है जैसे– नयन मटकाना, नयनों से बात करना आदि। मुहावरों का दूसरा वर्ग नयन को देखने वाली शक्ति से सम्बन्ध रखता है। जैसे– नयन लड़ाना, नयन मिलाना आदि। मुहावरों का तीसरा वर्ग है, जिसमें विशुद्ध लाक्षणिक रूप से होने वाले प्रयोग आते हैं, जैसे– नयन का तारा, नयनों की पुतली, नयन चुराना आदि। नैन शब्द का प्रयोग भक्ति कालीन कवियों ने इस प्रकार किया है–

आव नहीं आदर नहीं नहिं नैनन सौं नेह।

तुलसी वहाँ न जाइये कंचन वरसें मेह।।[1]

रीतिकाल में सतसई की नायिका नयनों से बात करती नजर आती है। चंदायन में नैन शब्द की आवृत्ति नौ[2] बार हुयी है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार है–

नैन सीप जस मोतिहिं भरे। रोथसि चाँद आँसू तस डरे।।[3]

यहाँ पर कवि की विलक्षण काव्य प्रतिभा का समावेस दृष्टिगोचर हो रहा है। नायिका के नयनों को सीप बता कर रूपक अंलकार की प्रस्तुति अवलोकनीय है।

इसी प्रकार अधिकांश स्थलों पर नैन शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट व्यंजार्थ की प्रस्तुति हेतु प्रयुक्त नजर आता है।

मृगावती– नैन, नयन, नयनन, नैनन्ह :

मृगावती में नैन, नयन, नयनन एवं नैनन्ह शब्द क्रमशः इक्कीस[4], एक[5], एक[6], एवं एक[7] बार प्रयुक्त हुआ है। कुतबन ने कतिपय स्थलों को छोड़ कर प्रायः सभी स्थलों पर नयन शब्द को सामान्य अर्थ में ही ग्रहण किया है।

---

1. रामचरित मानस
2. चं0 क0 50–4, 66–7, 68–4, 69–1, 69–3, 79–1, 79–5, 79–6, 90–5
3. चं0 क0 50–4
4. मृगा0 क0 28–7, 23–2, 39–1, 4, 52–2, 61–7, 399–5, 39–1, 4, 3, 61–7, 111–3, 113–1, 200–6, 276–4, 290–7, 299–1, 343–6, 383–5, 399–5, 401–2, 293–4
5. मृगा0 क0 27–5
6. मृगा0 क0 71–7
7. मृगा0 क0 52–2

चंदायन– चख :

चक्षु शब्द का तद्भव रूप चख है। चंदायन में दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग मात्र दो[1] ही स्थलों पर किया है। दोनों स्थलों पर आँख के साधारण अर्थ के द्योतन हेतु इस शब्द का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ–

मृगावती– चख, चक्ख, चखा :

मृगावती में कुतबन ने चख, चक्ख एवं चखा शब्दों का प्रयोग क्रमशः पांच[2] बार एक[3] बार और एक[4] ही बार किया है। इसमें अधिकांश स्थलों पर इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में किया गया है।

मृगावती– सरिल :

आँख का पर्यायवाची शब्द सरिल है। इस शब्द का प्रयोग मृगावती में मात्र एक[5] ही बार प्रयुक्त हुआ है। वह भी साधारण अर्थ में।

रोवै बहुत सरिल सब लोहू। जोरे देख तेहि उठै मरोहू।।

यहाँ राजकुमार के रोने से आँख रक्ताभ हो गयीं हैं। आँख के साधारण अर्थ को व्यक्त करने हेतु इसका प्रयोग हुआ है।

✠ चंदायन– उजियारा, उजियारी, उजियार, अजियारें :

यह उज्ज्वलता शब्द से उजाला और फिर उजियारा रूप में विकसित हुआ है। चंदायन में उजियारा, उजियारी, उजियार एवं उजियारें क्रमशः चार[5] बार, एक बार[6], एक बार[7] एवं एक बार हुआ है।

सभी स्थलों पर उजियारा शब्द का प्रयोग उजियारा के साधारण अर्थ के द्योतन हेतु हुआ है।

---

1. चंदा0 क0 293–4, 443–6
2. चं0 क0 293–4,
3. चं0 क0 47–5, 67–5, 61–2, 67–5, 73–3,
4. चं0 क0 56–1
5. चं0 क0 72–5
6. चं0 क0 30–2
7. चं0 क0 1–3, 6–1, 43–3, 75–5

एक स्थल पर उजियारी शब्द का प्रयोग उजियारा के स्त्रीलिंग के रूप में हुआ है।

सहदेव मंदिर चाँद औतारी। धरती सरग भई उजियारी।।[1]

इस स्थल पर काव्य रचना के प्रयोजनार्थ उजियारी शब्द का प्रयोग किया गया है। जो सटीक है। रचना की आधी पंक्ति के बाद औतारी शब्द का प्रयोग हुआ है। काव्यकला की दृष्टि से ईकारान्त की आवृत्ति हेतु उजियारी शब्द का प्रयोग किया गया है।

<u>चंदायन– चमकारा, चमका</u> :

चमक शब्द का परिवर्तित रूप ही चमकारा और चमका है। चंदायन में चमकारा शब्द दो[2] वार और चमका शब्द का प्रयोग एक[3] वार हुआ है। सभी स्थलों पर इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में किया गया है।

✠ **<u>चंदायन– कनक</u> :**

संस्कृत कोशों में इस शब्द की व्युत्पत्ति देते हुये कहा गया है कि जो कांति या चमक से युक्त है, वह कनक है।[4] जातरूप शब्द यदि सोने के सौन्दर्य पर बल देने वाला शब्द है तो कनक उस रूप की दीप्ति को उजागर करने वाला। इसके अतिरिक्त इस शब्द के ह्रस्व–कोमल वर्ण माधुर्य और लालित्य की भी सृष्टि करते हैं। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति दो[5] बार हुयी है। दोनों स्थलों पर कनक के साधारण अर्थ का द्योतन नजर आता है।

<u>मृगावती– कनक</u> :

मृगावती में कनक शब्द का प्रयोग कुतबन ने तीन[6] स्थलों पर किया है। दो स्थलों पर हेतुत्पेक्षा अलंकार की सृष्टि हेतु किया है तथा एक बार कनक के साधारण अर्थ की प्रतीति हेतु किया है। उदाहरणार्थ–

कांचे कँवल कनक वीर पिया। अइस बरन विधि आछे कह दिया।[7]

---

1. चंदा० क० 33–1
2. चं० क० 1–5, 82–3
3. चं० क० 117–6
4. जातं प्रशस्तं रूपं यस्य। शब्दल कल्पद्रुम
5. चं० क० 31–5, 84–2
6. मृ० क० 58–1, 71–3, 207–4
7. मृ० क० 71–3

यहाँ पर मृगावती का श्रृंगार वर्णन करते हुये कवि की कल्पना है कि मृगावती कच्ची कमल कलिका को विधाता ने ऐसा वर्ण दिया है जैसे मानो उसने सोने का जल पी लिया हो। उक्त स्थल पर उपमेय (मृगावती का वर्ण) में उपमान (कनक जैसा वर्ण) आरोपित होने से हेतुत्प्रेक्षालंकार हुआ।

चंदायन– कंचन :

यह संस्कृत की कज्ज धातु से बना है, जिसका अर्थ है चमकना। इस दृष्टि से इसका अर्थ कनक से बहुत भिन्न नहीं है, परन्तु धुन्यात्मक दृष्टि से दोनों में अंतर अवश्य दिखाई पड़ता है। लघुमात्राओं वाले कनक शब्द में संयुक्त वर्णों वाले कंचन शब्द की अपेक्षा अधिक कोमलता और मधुरता है। चंदायन में कंचन शब्द का प्रयोग एक[1] ही वार मिला है। इस शब्द के प्रयोग में किसी विशिष्ट भाव की अभिव्यति झलक रही हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है। इसका प्रयोग कंचन के साधारण अर्थ की प्रतीति हेतु ही किया गया है।

मृगावती– कंचन :

मृगावती में कुतबन ने कंचन शब्द की आवृत्ति चार[2] बार की है।

श्रवन सुमेल छोट नहिं लावे। सींप संवारि कंचन जनु आंवे।।[3]

उक्त स्थल पर मृगावती के श्रृंगार वर्णन में कानों को सोने का ढला हुआ बताकर उत्प्रेक्षालंकार की छटा दर्शनीय है। अन्य स्थलों पर कंचन शब्द अभिधेयार्थ में प्रयोग किया गया है। कंचन में जहां दिप्ति का भाव समाहित है वहीं कुन्दन शुद्धता के भाव का द्योतक है।

मृगावती– कुंदन :

मृगावती में कुंदन शब्द का प्रयोग दो बार मिला है। दोनों स्थलों पर मृगावती के श्रृंगार वर्णन में इस शब्द का प्रयोग हुआ है–

झरकहिं दुंहूं दिसि दामिनी लवै। कै रे अगिन मुख कुंदन तवै।।[4]

---

1. चंदा0 क0 77–7
2. मृ0 क0 57–1, 103–5, 314–6, 375–5
3. मृ0 क0 57–2
4. मृ0 क0 71–1

यहाँ संदेह की स्थिति उत्पन्न हो जाने से संदेहालंकार की प्रस्तुति अवलोकनीय है।

बरन सुनहु औ कहौं सुनाई। कुंदन कै जनु देह झरकाई।।[1]

उपर्युक्त स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार के निर्माण हेतु कुंदन शब्द का प्रयोग हुआ है।

<u>चंदायन– सोन, सोनें, सोवन</u> :

यह संस्कृत के स्वर्ण शब्द का अवभ्रंश रूप है। स्वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति देते हुये संस्कृत कोशों में कहा गया है कि जो सुंदर वर्ण से युक्त है, वह स्वर्ण है।[2] चंदायन में स्वर्ण का ही परिवर्तित रूप सोन, सोनें एवं सोवन क्रमशः दो बार, एक[3] बार एवं एक[4] ही बार हुआ है।

सोन रूप भल अभरन आई। दिन दिन पहिरहु चीर धो आई।।[5]

उक्त स्थल पर सोन शब्द का प्रयोग अभिधेयार्थ में ही हुआ है। यहाँ पर चॉदा की सास चॉदा को समझा रही है। कि सोने के अच्छे गहने पहिनो।

नाक सरूप अइस मैं कहा। जानु खरग सोनकर अहा।।[6]

यहाँ पर दाऊद ने चॉदा की नासिका वर्णन में सोन शब्द उत्प्रेक्षा अलंकार की रचना हेतु प्रयुक्त किया है। इस प्रकार अन्यत्र स्थलों पर भी इन शब्दों का प्रयोग किसी भाव विशिष्ट की प्रतीति हेतु ही हुआ है।

✠ <u>चंदायन– कथा</u> :

कथा शब्द 'कथ' धातु में 'आ' प्रत्यय लगा देने से बना है। डा0 गोविन्द चातक ने कथा का पर्याय कहानी माना है।[7] कथा का अर्थ है कहानी, कहानी एवं कथा यद्यपि एक दूसरे के पर्याय है फिर भी अर्थच्छाया प्रथक–प्रथक स्पष्ट नजर आ रही है। कथा शब्द का प्रयोग विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन क्रम को शब्दबद्ध करके रचित ग्रंथ को कथा की संज्ञा देंगे।

---

1. मृ0 क0 71–1
2. शब्द कल्पद्रुम
3. चं0 क0 113–5
4. चं0 क0 77–2
5. चं0 क0 47–4
6. चं0 क0 80–5
7. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश

जैसे रामायण, महाभारत आदि। जबकि कहानी किसी छोटी घटना को क्रमबद्ध लिख कर प्रस्तुत करना है।

चंदायन में कथा शब्द का प्रयोग तीन बार[1] साधारण अर्थ में इस प्रकार हुआ है–

तोर कहा में यह खण्ड गावऊ। कथा कवित के लोग सुनॉउ।[2]

<u>चंदायन– कहानी</u> :

डा0 हरदेव बाहरी ने कहानी का पर्याय कथा को माना है। कथा का अल्प रूप कहानी है। कथा और कहानी एक दूसरे के पर्याय होते हुए भी एक दूसरे के अर्थ को छू भर पा रहे हैं। चंदायन में कुतबन ने कहानी शब्द का प्रयोग मात्र एक ही स्थान पर अभिधेयार्थ के रूप में किया है।

गीत नाद सुर कवित कहानी, कथा कहु गावन हार।[3]

<u>मृगावती कहानी</u> :

मृगावती में कुतबन ने कहानी शब्द का प्रयोग तीन बार[4] साधारण अर्थ में किया है।

<u>मृगावती कस्था</u> :

कथा का परिवर्तित रूप कस्था है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[5] वार साधारण अर्थ में हुआ है।

<u>मृगावती– गाथा</u> :

कथा एवं गाथा दोनों पर्याय होते हुए भी दोनों की अर्थच्छाया भिन्न है। कथा में जहां गद्यरूप में कहने की ध्वनि का प्रस्फुटन हो रहा है वही गाथा में उसी विषय का पद्य रूप में अभिव्यक्ति का भाव सन्निहित है।

मृगावती में गाथा शब्द एक[6] बार साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

---

1. चं0 क0 72–6, 360–4, 205–7
2. चं0 क0 360–4
3. चं0 क0 72–6
4. मृगा0 क0 111–2, 22–3, 134–4
5. मृगा0 क0 11–3,
6. मृगा0 क0 146–5

मृगावती– कथा :

कथा शब्द का प्रयोग मृगावती में एक बार मिला है। रूपमिनी विवाह प्रकरण में राजा द्वारा राजकुमार की योग्यता का आंकलन करते समय इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में इस प्रकार हुआ है–

धरी धरइ मान सगुन विचारा। कहइ कथा (आरजा) अपारा।।[1]

✠ चंदायन– कपारा :

कपाल शब्द का अपभ्रंश रूप है। यद्यपि कपाल का सामान्य अर्थ सिर ही माना जाता है तथापि यह उससे कुछ भिन्न है। व्युत्पत्तिपरक अर्थानुसार 'जो मस्तक की रक्षा करता है वह कपाल है मनुष्य का वास्तविक मस्तिष्क वह है, जो इस वाह्य कपाल के भीतर रहता है। इस आंतरिक मस्तिष्क में रचित विभिन्न अवयवों की रक्षा के लिये हड्डियों का एक ढांचा होता है। इसे ही कपाल या खोपड़ी कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग अधिकांशतः प्रेतों, पिशाचों, या तांत्रिकों के संदर्भ में किया जाता है, क्योंकि कपाल का सम्बन्ध मुख्यतः मृत्यु के बाद की अवस्था से है। ऐसा विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य के शरीर के जल जाने पर कापालिक या प्रेत मस्तक के उस अवयव को लेकर साधना अथवा क्रीड़ा करते हैं।

चंदायन में दाऊद ने कपार शब्द का प्रयोग एक बार किया है।

फुनि काढ़सि बिजुरी तखारा। डाक दइ कै हनसि कपारा।।[2]

उक्त स्थल पर कपारा शब्द साधारण अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। धॅवरू और बॉठा की लड़ाई में धॅवक ने जो बार किया वह कपाल पर ही लगेगा। यहाँ पर कपारा शब्द सटीक ही प्रयुक्त हुआ है।

---

1. मृ0 क0 146–5
2. कं मस्तकं पालयतीति। शब्द कल्पद्रुम
3. मृ0 क0 118–3

मृगावती– कपार :

मृगावती में कुतबन ने कपार शब्द का एक स्थल पर इस प्रकार प्रयोग किया है–

जेहि दिन विधना निरभए तेहि दिन लिखा कपार।[1]

भाग्य में विश्वास रखने वालों का मत है कि विधाता भाग्य–ललाट में लिखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुतबन में काव्य की आवश्यकतानुसार ललाट के स्थान पर कपार का एक नवीन प्रयोग किया है।

मृगावती– लिलार :

यह ललाट शब्द का ही तद्भव रूप है। अबधी में प्रेमारण्यानक काव्यों की रचना करने वाले सूफी कवियों ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है और प्रायः भाग्य के अर्थ में।

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार दृष्टिगत हुआ है।

सात सरग चढ़ि धावों कोई अंक न मिटइ लिलार।।[2]

यहाँ पर कुतबन ने लिलार शब्द का प्रयोग परम्परागत रीति से किया है। लिलार और कपार एक दूसरे के पर्यायवाची अवश्य है, लेकिन प्रत्येक में समाहित विवक्षाओं को अपने में समेट सकने की क्षमता दोनों में से किसी में नहीं है। लिलार और कपार में निहित अर्थभेद प्रथक–प्रथक हैं। उक्त लिलार शब्द का प्रयोग सार्थक और सटीक है।

चंदायन– माथ :

यह मस्तक शब्द का अपभ्रंश रूप है। सामान्य जीवन में यह सर्वाधिक प्रचलित शब्द है और इसका प्रयोग शरीर के उस अंग के लिये किया जाता है जो भौहों के ऊपर तथा सिर के नीचे है। इस दृष्टि से मस्तक और माथा में विशेष अंतर नहीं है, किन्तु मस्तक शब्द में जो उच्चता भाव है वह माथा में नहीं है। माथा केवल अंग विशेष का द्योतक है। चंदायन में एक[3] स्थल पर साधारण अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

---

1. मृगा0 क0 163–6
2. मृगा0 क0 163–7
3. चंदा0 क0 356–4

चंदायन– मस्तक :

मस्तक को शरीर का प्रधान एवं श्रेष्ठ अंग माना है। इस अंग पर किसी व्यक्ति को बिठालने का तात्पर्य है– उसे विशेष सम्मान देना। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग मात्र एक ही बार दाऊद ने किया है। वह भी मस्तक के अभिधेयार्थ की प्रस्तुति हेतु–

बाँझपन एक पॅवर है ठाढ़ा। तिलक दुआदस मस्तक काढ़ा।।[1]

चंदायन– खपाई :

खोपड़ी का अपभ्रंश रूप खपाई है। डा0 हरदेव बाहरी[2] एवं डा0 गोविन्द चातक[3] ने खोपड़ी को सिर की हड्डियों का ढांचा माना है। चंदायन में खपाई शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है–

दोउ आनैं बॉधि खपाई। पॉयक बैठे करहिं बड़ाई।।[4]

उक्त स्थल पर खपाई शब्द का प्रयोग अभिधेयार्थ में हुआ है।

✠ मृगावती– कवंल :

इस पुष्प विशेष की उत्पत्ति स्थल जल है। अपने सौंदर्य से यह जल को शोभित करता है इसलिये इसे कमल कहा जाता है।[5]

कवंल शब्द कमल का अपभ्रंश रूप है। मृगावती में कवंल शब्द का प्रयोग इक्कीस बार[6] हुआ है। कतिपय स्थलों को छोड़ कर सर्वत्र कवंल शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ के रूप में हुआ है।

लोयन सेत बरन रतनारे। कवॅल पत्र पर भवॅर संवारे।।[7]

उक्त स्थल पर मृगावती की आँखों का वर्णन करते समय कवि ने काव्य सौंदर्य की अभिवृद्धि हेतु उत्प्रेक्षालंकार की सृष्टि की है।

---

1. चंदा0 क0 420–2
2. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
3. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश
4. चंदा0 क0 119–2
5. कं जलं अलति अलंकरोति वा। शब्द कल्प द्रुम
6. मृ0 क0 25–4, 26–6, 55–1, 67–2, 71–3–4, 84–7, 124–5, 151–7, 162–5, 191–1, 200–1, 220–1, 223–2, 250–4, 283–6, 291–1, 310–4–5–6, 312–3
7. मृगा0 क0 55–1

मृगावती– पदुम :

पद्म शब्द का अपभ्रंश रूप पदुम है। ऐसी पौराणिक मान्यता है कि लक्ष्मी कमल के आसन पर शोभित होती हैं। इसी कारण कमल को पद्म भी कहा गया है। पदुम शब्द का प्रयोग मृगावती में एक बार हुआ है।

लट जो लटकि गाल पर परै। जस रे पदुम नागिन रस करै।।[1]

यहाँ उत्प्रेक्षालंकार की छठा दर्शनीय है।

मृगावती– कंज :

मृगावती में कुतबन ने कंज शब्द का भी प्रयोग मात्र एक ही बार काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु किया है। काव्य में श्रुति माधुर्य की उपस्थिति ऐसे ही प्रिय शब्दों से सम्भाव्य होती है।

कहा प्रीतम पेधिहों दुहुं लोइनह विहें सति।

केंज सरोवर नीर जिमि सरब अंग पसरंति।।[2]

यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार की रचना अनूठी है।

✠ चंदायन– कान :

संस्कृत के कर्ण का तद्भव रूप कान है। चंदायन में इसकी आवृत्ति चार[3] बार हुयी है। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ का वाची है।

मृगावती– कान, कानू :

मृगावती में कुतबन ने इन शब्दों का क्रमशः एक बार[4] एवं तीन[5] बार प्रयोग इस प्रकार किया है।

बात नीरदं कही अनुसारी। सुनहु कान दै कहउं संवारी।।[6]

इस प्रकार कान के सभी प्रयोग साधारण अर्थ के वाचक है।

---

1. मृ0 क0 51–3
2. मृगा0 क0 116–7
3. चं0 क0 22–7, 53–1, 148–4, 414–3
4. मृगा0 क0 12–2,
5. मृगा0 क0 11–5, 119–3, 12–2
6. मृगा0 क0 12–2

चंदायन– स्त्रवन :

श्रवण शब्द का अपभ्रंश रूप स्त्रवन है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक स्थल पर साधारण अर्थ की प्रतीति हेतु हुआ है–

स्त्रवन लगि मंत्र उँह कही। सुनतहि लोग अचम्भै रही।[1]

मृगावती– सवन :

मृगावती में कुतबन ने सवन शब्द का प्रयोग तीन बार किया है। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ का वाचक है।

राजा एक सवन हम सुना। अति रे दानि लोना बहुगुना।।[2]

देखेऊं एक कुंरगिनि महा। सवन न सुनेउं कहौं दहु कहा।।[3]

सुरपति सभा सवन जो सुनी। तेहु विसेख बैठं बहुगुनी।।[4]

✠ **मृगावती– कानन** :

मृगावती में कानन शब्द का प्रयोग एक बार रूपमिनी–संदेश–निवेदन (बारहमासा) खण्ड में हुआ है।

कानन फिर पिक पंचम बोला। जोबन कली विगसि मुँह खोला।।[5]

यहाँ पर कानन एक सुन्दर उपवन के भाव को प्रकट कर रहा है।

मृगावती– फुलवारी :

फूलों से जो परिपूर्ण हो उसे फुलवारी कहा गया है। कुतबन ने मृगावती में फुलवारी शब्द का प्रयोग सात[6] स्थलों पर किया किया है। कतिपय स्थलों को छोड़कर सभी प्रयोग फुलवारी के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

सभा जानु फूली फुलवारी। कुँवर बैठ खाड़े रन भारी।।[7]

---

1. चंदा0 क0 336–1
2. मृगा0 क0 13–1
3. मृगा0 क0 32–3
4. मृगा0 क0 208–2
5. मृगा0 क0 325–4,
6. मृगा0 क0 123–3, 202–3, 203–6, 204–1, 208–3, 245–1, 325–4
7. मृगा0 क0 245–1

यहाँ पर काव्य सौंदर्य एवं अर्थ सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये कवि ने सभा (उपमेय) को फुलवारी (उपमान) की सम्भावना व्यक्त करके उत्प्रेक्षालंकार की सृष्टि की है।

दरिसित परिमल पीप विसारी। सुदल सुरूप फुली फुलवारी।।[1]

उपमेय (नायिका के विकसित अंगों) को उपमान (फुलवारी) बताकर कवि ने रूपक अलंकार की अनौखी छटा विखेरी है।

✠ <u>चंदायन– कापर, कापड़</u> :

कापर और कापड़ एक ही रूप हैं। 'ड' का 'र' ध्वनि में उच्चरित होने के कारण यह अंतर प्रतीत हो रहा है। कपड़ा का परिवर्तित रूप कापड़ है। मात्रा, लय एवं गति के आग्रहवस कपड़ा का कापड़ प्रयोग जान पड़ता है। चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः एक[2] एक[3] बार प्रयुक्त हुए हैं।

<u>चंदायन– वस्त्र, वस्तर</u> :

जिससे ठका जाता है वह वस्त्र है।[4] चंदायन में वस्त्र शब्द दो[5] बार आया है। दोनों स्थलों पर साधारण अर्थ का वाची है।

<u>चंदायन– वॉना</u> :

जो चारों ओर से धारण किया जाय वह वॉना है। यह शब्द वस्त्र का पर्याय होते हुए भी भव्यता एवं सौंदर्य की व्यंजना करता है। वस्त्र का समानार्थक होते हुए भी अपनी विशिष्ट अर्थच्छाया से युक्त है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[6] बार मिला है।

औरहिं दीन्हि जिहि जस जानॉ। सब लोगहिं कहँ देतसि बानॉ।।

<u>चंदायन– चीर</u> :

जो वृक्ष अथवा कटि प्रदेश के लिए आवरण का कार्य करता है, वह चीर है।[7] चंदायन में इस शब्द का प्रयोग तीन[8] बार हुआ है।

---

1. मृगा0 क0 325–4
2. चंदा0 क0 27–4
3. चंदा0 क0 28–7
4. शब्द कल्प द्रुम
5. चंदा0 क0 41–1, 192–4
6. चंदा0 क0 397–2
7. चिनोति अवणोति वृक्ष कटिदेशा दिकं वा। शब्द कल्प द्रुम
8. चंदा0 क0 47–4, 50–5, 52–1–

सोन रूप भल (अभरन) आई। दिन–दिन पहिरहु चीर धोआई।।[1]

यहाँ पर चीर शब्द अभिधेयार्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अन्यत्र भी किसी विशिष्ट अर्थ का वाची न होकर साधारण अर्थ की प्रस्तुति करता है।

✠ **चंदायन– कीरा :**

कीड़ा शब्द का परिवर्तित रूप है। कीड़ा शब्द कीट से बना है। कीट जमीन में रहने वाले जीव हैं। सर्प इसी श्रेणी का जीव है, अतः दाऊद ने सर्प को कीरा संज्ञा दी है। जन भाषा में भी सर्प को कीरा की संज्ञा से पुकारा जाता है।

चंदायन में कीरा शब्द की आवृत्ति मात्र एक[2] बार साधारण अर्थ में हुई है।

चंदायन– सांप :

यह सर्प शब्द का तद्भव रूप है और जन भाषा में प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है। मूल शब्द की अपेक्षा इस शब्द में अधिक भयंकरता है। यह जन्तु विशेष की विषाक्तता पर अधिक बल देता है। इसी कारण सर्प की तुलना में अधिक प्रभावी है।

सर्प शब्द सृप धातु से बना है, जिसका अर्थ है सरकना। सर्प की यही विशेषता होती है कि वह पेट के बल रेंग कर चलता है। उसकी इसी विशेषता के कारण उसे सर्प कहा जाता है। आरम्भ में इस शब्द का प्रयोग किसी भी रेंग कर चलने वाले प्राणी के लिये किया जाता था। कालांतर में इसका अर्थ संकोच हो गया और 'सांप' के परिसीमित अर्थ में व्यवहृत होने लगा।

चंदायन में इसका प्रयोग एक[3] स्थल पर सांप के साधारण अर्थ में मिलता है।

चंदायन– बासुक :

बासुक शबद में बसुधा की ध्वनि समाहित है। सर्प बसुधा के अंदर रहता है उसी पर रैंग कर चलता है इस कारण इसे बासुक कहा गया है।

---

1. चंदा० क० 47–4
2. चंदा० क० 67–3
3. चंदा० क० 316–7

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दाऊद ने एक[1] बार किया है।

गज गमनैं डर सांसों भयउ। बासुकि नाग पतारहिं गयउ।।

<u>चंदायन– उरग</u> :

पेट के बल चलने के कारण सांप को उरग भी कहा जाता है।[2] भुजंग और सर्प शब्दों की भाँति यह शब्द इस जन्तु की गति की विशेषता पर आधारित है।

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[3] बार हुआ है। कवि ने सामान्य अर्थ में ही इस शब्द को ग्रहण किया है।

<u>चंदायन– विषहर</u> :

विषहर शब्द का तत्सम रूप विषधर है। विषधर में दो ध्वनियाँ निहित हैं। प्रथम विष की परिचायक है और दूसरी 'धारण करने' की। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ विष को धारण करने वाला अर्थात 'सर्प'। इसका प्रयोग चंदायन में उत्प्रेक्षालंकार की सृष्टि के लिये एक बार हुआ है।

भँवर बरन सौं देखी बारा। जनु विषहर लर वरे भंडारा।।[4]

<u>चंदायन– भुझंगहि, भुजंगू</u> :

जो वक्र गति से चलता है, वह भुजंग है।[5] यह शब्द सर्प के चलने की एक अन्य विशेषता की ओर संकेत करता है। इस प्राणी की यह विशेषता है कि यह सीधी रेखा में नहीं चलता अपितु टेड़े–मेढ़े चलता है, अतः कहा जाता है कि इसकी गति इसके वक्र स्वभाव की सूचक हैं।

चंदायन में भुझंगहि , भुजंगू दोनों शब्दों का एक–एक बार प्रयोग हुआ है।

कै गयउं कछु दइ मुकरावा, दोस भुवंगहि लाग।[6]

---

1. चंदा0 क0 116–1
2. उरसा गच्छति। शब्द कल्प द्रुम
3. चंदा0 क0 68–5
4. चंदा0 क0 76–1
5. भुजं वक्रं गच्छति। शब्द कल्प द्रुम
6. चंदा0 क0 350–6, 85–2

चाँद को भुजंग ने डस लिया। यहाँ पर भुवंगहि शब्द सर्प के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>मृगावती– भुअंगम, भुजंग</u> :

मृगावती में भुअंगम एवं भुजंग शब्द क्रमशः दस बार[1] एवं एक[2] बार प्रयुक्त किए गये हैं। कतिपय स्थलों को छोड़कर सभी स्थलों पर कुतबन ने भुजंग शब्द का प्रयोग रूपक और उत्प्रेक्षालंकार की रचना के लिये प्रयुक्त किया है।

मृगावती के वालों का वर्णन करते हुए कुतवन की कल्पना है कि सिर पर काले वालों की लटें ऐसी प्रतीत हो रहीं थी मानों काले भुजंग (सर्प) लड़ रहे हों। यहाँ उत्प्रेक्षा की छटा मनोहारी है।

सिर पर लहि आए धुंधुरारे। लहरान्हि भरे भुअंगम कारे।।[3]

इसी प्रकार रूपक की प्रस्तुति अनुपम है–

विखम भुअंगम बेनी भई। मारग ओही सीस सो गई।।[4]

<u>चंदायन– नाग</u> :

जो अपनी विषाग्नि से दूसरों को जला दे, वह नाग है।[5] चंदायन में नाग शब्द की आवृत्ति एक बार हुई है। यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार की प्रस्तुति अवलोकनीय है–

लॉवे केस मुर वॉध धराये। जानु सैंदुरी नाग सुहाये।।[6]

<u>मृगावती– नाग, नागिन, नागिनि</u> :

मृगावती में नाग शब्द का प्रयोग पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों लिंगों में हुआ है। नाग शब्द का प्रयोग दो[7] बार और नागिन शब्द का प्रयोग एक[8] बार तथा नागिनी शब्द का प्रयोग भी एक[9] ही बार हुआ है।

लट जौ लटकि गाल पर परै। जसरे पदुम (1) नागिन रस करें।।[10]

---

1. मृगा0 क0 51–5, 65–5, 114–1, 119–2, 120–1, 121–3, 122–2, 193–7, 318–3
2. मृगा0 क0 56–1
3. मृगा0 क0 51–5
4. मृगा0 क0 65–5
5. दहत्यस्मात विषाग्निनेति। शब्द कल्प द्रुम
6. चंदा0 क0 76–2
7. मृगा0 क0 51–1, 68–5
8. मृगा0 क0 51–5
9. मृगा0 क0 51–3
10. मृगा0 क0 51–3

यहाँ उत्प्रेक्षा की व्यंजना हृदयग्राही है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी रूपक और उत्प्रेक्षा की सृष्टि ने काव्य सौंदर्य में चार चाँद लगा दिये हैं।

✠ चंदायन– कुंजरै :

हाथी के प्रशस्त दातों के आधार पर उसे कुंजर की संज्ञा दी गयी है।[1] कुँजरै शब्द कुँजर का अपभ्रंश है। चंदायन में यह शब्द एक बार इस प्रकार आया है–

चोटहिं महावत आंकुस गहें। बन कुँजरै डर राख न रहें।[2]

यहाँ पर हाथी के साधारण अर्थ का बोधक है।

मृगावती– कुँजर :

मृगावती में कुतबन ने कुँजर शब्द का प्रयोग तीन स्थलों पर इस प्रकार किया है–

कुँन्जर बिरह सरीर बान दलइ विंधांसइ खाइ।[3]

पिय गल गज्जहु सिंह होइ कुंजर बिरह पराई।।[4]

दोनों स्थलों पर बिरह उपमेय में कुन्जर उपमान का आरोप रूपक की सृष्टि कर रहा है।

चंदायन– गज :

संस्कृत कोशों में इस शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा गया है कि जो अपने मद से उन्मत होता है वह गज है।[5] यहाँ गज से कवि का अभिप्राय मदमत्त हाथी से तो है, परन्तु यह मत्तता अब उन्मत्तता अर्थात पागलपन की सीमा को स्पर्श कर रही है। अनेक बार हाथी इतना उन्मत्त हो जाता है कि वह अपने में नहीं रहता है और उपद्रव तथा विध्वंस करने लगता है। काम क्रोधादि विकार भी इसी मत्त हाथी के समान हैं, जिन्हें वश में करना बड़ा कठिन होता है। इन मनोविकारों की प्रवलता और विनाशकारी प्रवृत्ति की तुलना के लिय गज के समान

---

1. प्रशस्तः कुज्जः हनुर्दन्तो वा अस्त्यस। शब्द कल्प द्रुम
2. चंदा0 क0 116–4
3. मृगा0 क0 319–6
4. मृगा0 क0 319–7
5. गजति मदेन मत्तो भवतीति। शब्द कल्पद्रुम

कोई उपयुक्त एवं सार्थक शब्द नहीं हो सकता। गज शब्द की इस विशेषता के कारण रहस्य सम्प्रदाय में इसका अर्थ **'मन'** भी किया जाता है क्योंकि दोनों ही समान रूप से चंचल, बलशाली और वश से परे हैं।[1] चंदायन में गज शब्द की आवृत्ति इस प्रकार हुई है–

गज पवनै डर साँसें भरेउ। बासुकि (नाग) पतारहिं गयउ।।[2]

यहाँ पर 'गज' शब्द की मद्मत्ता इसी से झलक रही है कि उसके भय से बासुकि पाताल को पलायन कर गया।

<u>मृगावती– गज</u> :

मृगावती में कुतबन ने 'गज' शब्द का प्रयोग दो बार किया है। एक स्थल पर शाह हुसैन की सेना की महत्ता का वर्णन अनुठा है–

मदमस्त गजों के चलने पर आकाश में इन्द्र और पाताल में बासुकी दोनों की बुद्धि विचलित हो जाती है। काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु कुतबन का अतिश्योक्ति का निम्न प्रयोग मनोहारी है।

गज गौनहिं जग सांसौ होई। बासुकी इन्द्र दुहू बुधि खोई।।[3]

गवन करै जनु समुंद हिलोरी। गज मराल सेउं लिहेसि अजोरी।।[4]

उक्त पंक्ति में मृगावती की मदमस्त चाल की समता उन्मत्तता का प्रतीक गज से करना कुतबन की हिन्दी शब्दों में निहित अर्थच्छायाओं का गम्भीर ज्ञान का द्योतन करता है। शब्द श्रवण से श्रोता एक विशिष्ट प्रतीति का अनुभव करना चाहता है। इस विशिष्ट प्रतीति का अनुभव कराने की क्षमता कुतबन की शब्द शक्ति में समाहित दृष्टिगत आ रही है।

<u>मृगावती– हाथी</u> :

जन भाषा का प्रचलित शब्द हाथी है। गज के प्रयुक्त समानक शब्दों में सबसे

---

1. मानक हिन्दी कोश
2. चंदा0 क0 116–1
3. मृगा0 क0 8–5
4. मृगा0 क0 74–4

अधिक लोकप्रिय शब्द हाथी है। गज से जहाँ मदमत्तता का भाव ध्वनित होता है वहीं हाथी से विशालता के भाव का द्योतन होता है। विशालकाय की समता के लिए 'हाथी जैसा शरीर' उक्ति का प्रयोग जन प्रचलित है।

मृगावती में हाथी शब्द का प्रयोग चार वार[1] आया है। सभी स्थलों पर हाथी शब्द अभिधेयार्थ में विशालता के भाव की प्रतीति हेतु प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– गयंद :

यह संस्कृत के गजेन्द्र शब्द का तद्भव रूप है। मद से मत्त हाथी को गज कहा जाता है और गजेन्द्र की मत्तता तो कल्पना से भी परे की वस्तु है। बंधा हुआ मत्त हाथी येन–केन–प्रकारेण अपने बंधन तोड़ ही डालता है। मृगावती में गयंद शब्द का प्रयोग दो[2] वार हुआ है।

मृगावती मैमंत :

डा० माता प्रसाद गुप्त ने मैमंत का अर्थ 'मदोन्मत्त हाथी' से किया है। कुतवन ने मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक स्थल पर किया है।

देखिय हुवइ न पाइप कुम्भ स्थल मैमंत।।[3]

✠ **चंदायन– कुँवर :**

कुमारयति क्रीड़तीति।[4] इस व्युत्पत्ति के आधार पर हम कह सकते हैं कि कुमार वह है, जिसका मन मुख्यतः क्रीड़ादि की ओर ही रहता है। चंदायन में कुँवर शब्द का प्रयोग शब्द कल्प द्रुम की उक्त वीरभाषा से भिन्न प्रतीत होता है। चंदायन का कुँवर वयस्क है। चंदायन में कुँवर शब्द की आवृत्ति एक स्थल[5] पर हुई है। वह भी साधारण अर्थ में।

---

1. मृगा० क० 13–6, 140–7, 165–2, 319–3
2. मृगा० क० 38–7, 411–6
3. मृगा० क० 67–7
4. शब्द कल्प द्रुम
5. चंदा० क० 21–5

मृगावती– कुँवर :

कुँवर शब्द मृगावती में इक्कीस बार[1] प्रयुक्त हुआ है। सभी स्थलों पर कुँवर के साधारण अर्थ का वाचक है।

चंदायन– राजपूत :

राजपूत शब्द का अपभ्रंश रूप राजपूत है। चंदायन में राजपूत शब्द राजा के पुत्र का वाची है। दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग एक[2] स्थल किया है।

मृगावती– राजपूत :

मृगावती में राजपूत शब्द की आवृत्ति चार[3] बार हुयी है। सभी प्रंसगों में राजपूत के साधारण अर्थ का वाचक है।

✠ चंदायन– केरि, केलि :

मन बहलाव के लिए किया गया कोई भी मनोरंजन कार्य केलि या क्रीड़ा कहलाता है।[4] यद्यपि कौतुक में भी मनोविनोद की अर्थच्छाया है किन्तु उसमें उत्सुकता या जिज्ञासा या आश्चर्य का जो भाव विराजमान रहता है वह **'केलि'** में नहीं देखा जा सकता है। केलि का ही परिवर्तित रूप केरि है। चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः एक[5]–एक[6] बार प्रयुक्त हुये हैं। अर्थ की दृष्टि से इनका सामान्य प्रयोग है।

मृगावती– केलि :

मृगावती में केलि शब्द दो[7] बार प्रयुक्त हुआ है। दोनों स्थलों पर केलि शब्द के साधारण अर्थ का वाचक है।

चंदायन कौतुक :

विभिन्न कोशों में दिए गये कौतुक शब्दों के अर्थों का अनुशीलन करने से ज्ञात

---

1. मृगा0 क0 89–2, 92–5–6, 94–1–2–4, 95–2, 98–1–2, 99–1–4, 100–1, 104–2, 107–1, 109–5, 114–5, 121–4, 122–2–5, 127–4
2. चंदा0 क0 177–2
3. मृगा0 क0 18–5, 75–1, 144–2, 153–4
4. मानक हिन्दी कोश
5. चंदा0 क0 22–1
6. चंदा0 क0 226–1
7. मृगा0 क0 25–6, 257–6

होता है कि इस शब्द में कौतूहल एवं आश्चर्य के भान की प्रधानता है। अद्‌भुत जिज्ञासातिशयः।[1] अर्थात इस शब्द में किसी विलक्षण बात को देखकर आश्चर्य और उसके विषय में अधिकाधिक जानने की उत्सुकता दोनों ही भाव निहित है। इसके अतिरिक्त हर्ष, अभिलाषा, उत्सव, विनोद आदि अन्य अर्थ भी मिलते हैं। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में दो[2] बार हुआ है।

<u>मृगावती– कौतुक</u> :

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[3] बार साधारण अर्थ में हुआ है।

✠ <u>चंदायन– खड्ग, खरग, खरगहि</u> :

खड़ग का ही रूप खरग और खरगहि है। 'ड़' और 'र' के उच्चारण में समानता होने के कारण यह परिवर्तन नजर आ रहा है। चंदायन में तीनों शब्दों का प्रयोग दाऊद मुल्ला ने क्रमशः पन्द्रह बार[4], छैः[5] बार एवं एक[6] बार प्रयोग किया है। सभी प्रयोग खड़क के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

<u>चंदायन– कटार, कटारा, कटारी</u> :

कटार एवं कटारी दोनों एक ही शब्द के दो रूप हैं। दोनों शब्दों का प्रयोग जनसाधारण द्वारा समान रूप से होता है। **'कटार'** शब्द खड़ग का समानार्थी होते हुए भी अर्थच्छाया में भेद है। खड़ग के छोटे रूप को कटार कहते है। चंदायन में तानों शब्दों का प्रयोग क्रमशः तीन बार[7], चार बार[8] एवं एक बार[9] हुआ है। चंदायन में कटार शब्द का प्रयोग सर्वत्र साधारण अर्थ में हुआ है।

<u>चंदायन– तरवार, तरवारि, तरवारी</u> :

तलवार शब्द का परिवर्तित रूप तरवार है। तरवार, तरवारि एवं तरवारी कविता में

---

1. वाचस्यपत्यम।
2. चंदा0 क0 32–7, 318–1
3. मृगा0 क0 252–7
4. चंदा0 क013–2,117–5–6, 125–4–7, 128–2, 130–4, 133–6, 134–2,137–1, 140–2–5, 142–5, 297–6, 320–6
5. चंदा0 क0 27–5, 30–6, 80–5, 354–1, 357–1, 359–7
6. चंदा0 क0 113–3
7. चंदा0 क0 121–6, 133–4–5
8. चंदा0 क0 316–4, 347–2, 357–1–7
9. चंदा0 क0 428–4

तुक, मात्रा आदि की आवश्यकता के कारण कवि ने शब्दों का रूप परिवर्तित किया है। दाऊद मुल्ला ने तीनों शब्दों का प्रयोग क्रमशः एक बार[1], दो बार[2], एवं एक[3] ही बार साधारण अर्थ में किया है।

चंदायन– जमधर :

जमधर भी चंदायन में दाऊद मुल्ला ने कटार के समानार्थी शब्द के रूप में प्रयोग किया है। यद्यपि इस शब्द का प्रयोग अन्यत्र प्रयुक्त हुआ दृष्टिपथ में, नहीं आया है। डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने जमधर का अर्थ झुकी नौकवाली कटार[4] बताया है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग मात्र एक बार[5] साधारण अर्थ में हुआ है।

✠ **चंदायन– खाट :**

जनसाधारण द्वारा, सर्वाधिक प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है। चारपाई शब्द का पर्यायवाची है। चार पायों से बनी हुई वस्तु चारपायी है। चंदायन में खाट शब्द एक[6] बार खाट के साधारण अर्थ की प्रतीति हेतु प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन पालंग :

पंलग शब्द का परिवर्तित रूप पलंग है। यह खाट का समानार्थी शब्द है। खाट एवं पलंग एक दूसरे के समानार्थी होते हुये भी अर्थच्छायायें भिन्न–भिन्न हैं। खाट शब्द से ध्वनित होता है कि पलंग का छोटा रूप है। 'खाट' शब्द जनसाधारण द्वारा प्रयोग किये जाने के भाव का द्योतन करता है, जबकि पलंग शब्द में वैभवशालिता का भाव समाहित है। खाट जहाँ गरीब और मजलूमों द्वारा प्रयोग किये जाने के भाव की वाची है वही पलंग शब्द सम्पन्नों द्वारा प्रयोग किए जाने के भाव को समाहित किये हुये है।

चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति दो[7] बार हुई है।

---

1. चंदा0 क0 118–3,
2. चंदा0 क0 121–6, 141–6
3. चंदा0 क0 137–1
4. चंदा0 पृष्ठ 153
5. चंदा0 क0 131–5
6. चंदा0 क0 396–5
7. चंदा0 क0 396–5, 444–7

✠ चंदायन खून :

खून यह फारसी भाषा का शब्द है। विदेशज होते हुए भी हिन्दी ने अपने परिवार जैसा बना लिया है। जनवाणी खून का भाव व्यक्त करने के लिए सबसे अधिक प्रयोग इसी शब्द का करती है। डा0 हरदेव बाहरी ने खून शब्द का अर्थ खून करना अर्थात् कत्ल करना भी माना है।[1] चंदायन में खून शब्द का प्रयोग प्राणी के लहू के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रयोग दाऊद मुल्ला ने मात्र एक[2] ही बार किया है।

चंदायन– लोहू :

लहू शब्द का विकृत रूप लोहू है। खून का रंग लाल होता है, इसलिए इसे लहू कहा गया है। चंदायन में लोहू शब्द एक स्थल पर खून के साधारण अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया गया है।

महर काजि में जीउ निबारेउँ। गार पसेऊ वहाँ लोहू डारेउँ।।[3]

चंदायन– रकत :

यह रक्त का ही विकृत रूप है। रक्त शब्द भी लाल रंग के भाव को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे रक्तमय नेत्र, रक्त कलश, रक्त कमल आदि। यहाँ लाल नेत्र, लाल कलश एवं लाल कमल में निहित लालिमा के भाव को रक्त से व्यक्त किया गया है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति अभिधेयार्थ में दो[4] बार हुई है।

✠ चंदायन– खेह :

डा0 हरदेव बाहरी ने खेह, क्षार, धूल, राख, एवं भस्म को एक दूसरे का समानार्थी माना है।[5] चंदायन में खेह शब्द का प्रयोग एक बार[6] आया है।

---

1. राजपाल हिन्दी शब्द कोश।
2. चंदा0 क0 107–3
3. चंदा0 क0 214–5
4. चंदा0 क0 69–2, 107–3
5. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
6. चंदा0 क0 172–1

चंदायन– छार :

क्षार शब्द का विकृत रूप है। यह राख के साधारण अर्थ को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[1] बार हुआ है।

चंदायन– धूरी :

धूल शब्द का परिवर्तित रूप है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है।

सीस चढ़ायसु पागै धूरी। अस मांर जनु लीजै चूटी।।[2]

यहाँ पर **'धूरी'** शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हेतु किया गया है। पैरों की धूल सिर पर लगाना एक विशिष्ट भाव का परिचायक है। सिर पर पैरों की धूल उसी की लगाई जाती है जो विशेष सम्मानीय होता है। इस प्रकार की स्थिति की भावाभिव्यक्ति मात्र धूल शब्द से ही हो सकती है। यहाँ पर क्षार या भस्म आदि उस ध्वनि के वाचक नहीं बन सकते हैं।

चंदायन– भसम :

यह शब्द भस्म का तद्भव रूप है। तथा धूल का समानार्थी है। किसी वस्तु को जलाकर नष्ट कर देने की प्रक्रिया को भस्म संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। आर्येवेद में विभिन्न पदार्थों को जला कर भस्म तैयार किया जाता है। यथा स्वर्ण भस्म, मोती भस्म आदि। इसे स्वर्ण धूल नहीं कहा जा सकता है। धूल और भस्म में यही अर्थच्छाया का अंतर है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है।[3]

चंदायन– बभूत :

बभूत शब्द भी भस्म का पर्यायवाची है। डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने बभूत शब्द का अर्थ भस्म लिखा है।[4] बभूत शब्द चंदायन में एक[5] बार आया है। बभूत भस्म का ही रूप है। अर्थच्छाया भिन्न है। बभूत जाद–मन्तर में प्रयोग की जाती है।

1. चंदा0 क0 409–7
2. चंदा0 क0 172–2
3. चंदा0 क0 187–3
4. चंदा0 पृष्ठ 189
5. चंदा0 क0 188–3

✠ चंदायन– गीतहार :

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने गीतसर का अर्थ गायक माना है।[1] दाऊद मुल्ला ने कविता में लय, तुक और मात्रा की आवश्यकता पूर्ति एवं शब्द वैविध्य तथा शब्द माधुर्य की दृष्टि से गावन हार के स्थान पर गित हार शब्द का अविधेयार्थ में एक बार इस प्रकार प्रयोग किया है–

मोर मन रैन देवस सुख राख, भूँजसु गाउँ गितहार।।[2]

चंदायन– गावनहार :

गावनहार जन भाषा का प्रचलित शब्द है। गावनहार का अर्थ है गायक अर्थात् गाने वाला। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति दो बार[3] हुई है। दोनों स्थलों पर गावनहार का प्रयोग गायक के साधारण अर्थ के वाचन हेतु हुआ है।

✠ चंदायन– घर :

जन साधारण में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला शब्द है। यद्यपि अनेक शब्द मेहमानों की भाँति आ जा रहे हैं। लेकिन **'घर'** शब्द चंदायन से लेकर आज तक जन मानस की वाणी पर अपना एकाधिकार कायम किये हुए है। चंदायन में 'घर' शब्द का प्रयोग आठ[4] बार आया है। सभी स्थलों पर 'घर' शब्द के साधारण अर्थ की प्रस्तुति कर रहा है।

मृगावती– घर :

चंदायन की भाँति मृगावती में भी कुतबन ने घर शब्द का प्रयोग दस[5] बार किया है। सभी स्थलों पर साधारण अर्थ ही ध्वनित होता है।

चंदायन– मंदिर :

घर का समानार्थी मन्दिर है, परन्तु दोनों की अर्थच्छाया प्रथक–प्रथक है। घर साधारण व्यक्तियों के रहने का स्थल है, जबकि मंदिर देवी देवताओं के रहने का बोध कराता

1. चंदा0 पृष्ठ 116
2. चंदा0 क0 72–7
3. चंदा0 क0 72–6, 78–6
4. चंदा0 क0 29–7, 35–2, 37–4, 40–3, 41–4, 41–5, 43–3, 54–5
5. मृगा0 क0 14–7, 28–5, 33–3, 35–1, 93–2, 131–2, 145–3, 164–5, 333–1, 361–7

है। चंदायन में मंदिर शब्द व्युत्पत्ति परक भाव का वाची न होकर घर शब्द के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

महिर मंदिर जेइहिं जेवनारा। लीन्हि पान भरो असवारा।।[1]

<u>मृगावती– मंदिर</u> :

मृगावती में मंदिर शब्द का प्रयोग चौदह[2] बार हुआ है। कतिपय स्थलों को छोड़कर शेष सभी स्थानों पर मंदिर शब्द घर के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>मृगावती– गेह</u> :

घर का समानार्थी शब्द है। मृगावती में एक बार प्रयोग हुआ है।

कंचपुर कै वाट जो जानां। चार ढुंढाई गेह तहि आना।।[3]

उक्त स्थल पर गेह शब्द घर के ही भाव का वाचक है।

<u>मृगावती– भवन</u> :

भवन शब्द और गेह या घर की अर्थच्छायायों में भिन्नता है। 'घर' जहाँ साधारण व्यक्तियों के निवास स्थल का परिचायक है वही 'भवन' भव्यता के भाव का वाचक है। मृगावती में भवन शब्द दो[4] बार प्रयुक्त हुआ है।

(क) भवन अपूरव देहु उचाई।[5]

(ख) फुनि जो देखंसि फिर कैं भवन अपूरुव एक।[6]

दोनों स्थलों पर भवन शब्द अपने व्युतिपत्ति परक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>मृगावती– गृह</u> :

यह हिन्दी का तत्सम रूप है। घर और गेह के ही अर्थ में इसका प्रयोग होता है। मृगावती में कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग एक[7] बार घर के साधारण अर्थ के बोधन हेतु किया है।

---

1. चंदा0 क0 41–2
2. मृगा0 क0 15–1, 34–2, 35–5–6, 34–4, 43–1, 81–7, 85–4, 92–1, 142–3, 249–3, 254–2, 347–2, 393–2
3. मृगा0 क0 112–4
4. मृगा0 क0 34–3, 123–6
5. मृगा0 क0 34–3
6. मृगा0 क0 123–6
7. मृगा0 क0 398–2

पाव परसि मोहि देहु असीसा। पिता गृह दिन करतिहु पीसा।[1]

यहाँ पर कुतबन ने गृह शब्द को प्रयोग अर्थ सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु किया है। पिता गृह का साधारण अर्थ है पिता का घर और व्यंजार्थ हुआ पिता का घर अर्थात पीहर।

✠ चंदायन– घोर :

घोटक शब्द का तद्भव रूप घोड़ा है और घोड़ा का विकृत रूप घोर है। 'ड़' और 'र' उच्चारण से घोड़ा शब्द घोरा बना और यही घोर बन गया। चंदायन में घोर शब्द का प्रयोग छैः बार[2] हुआ है।

मृगावती– घोड़, घोरा, घोर :

तीनों रूप घोड़ा शब्द के ही विकृत रूप हैं। मृगावती में तीनों[3] शब्द क्रमशः एक–एक बार प्रयुक्त हुए हैं।

चंदायन– तुरिया :

चंदायन में तुरिय शब्द एक बार प्रयोग हुआ है। तिहि तुरिया चढ़ि लोर बहिरावा।[4]

मृगावती– तुरिय :

मृगावती में भी कुतबन ने घोड़ा शब्द का समानार्थी तुरिय शब्द का प्रयोग तीन[5] बार हुआ है।

चंदायन– तुरंग :

घोड़ा का समानार्थी तुरंग है। इसका प्रयोग चंदायन में एक बार[6] मिला है।

मृगावती– तुरंग :

मृगावती में भी तुरंग शब्द दो[7] स्थलों पर आया है।

---

1. मृगा० क० 398–2
2. चंदा० क० 217–5, 27–4, 32–6, 42–5, 44–2, 395–3
3. मृगा० क० 21–1, 20–1, 13–6
4. चंदा० क० 395–3
5. मृगा० क० 8–4, 21–6, 31–1,
6. चंदा० क० 112–4
7. मृगावती क० 20–4, 20–5

चंदायन– तुखार :

मूलतः यह मध्य एशिया स्थित शब्दों के एक कवीले और उसके मूल निवास स्थान का नाम था। यहाँ से आने वाले घोड़ों को तुखार कहते थे। पीछे वह अश्व का पर्याय बन गया।[1]

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार[2] हुआ है। इस शब्द का प्रयोग व्यत्पत्ति परक अर्थ में हुआ है।

मृगावती– तुखार :

मृगावती में भी तुखार शब्द का प्रयोग अपने व्युत्पत्ति परक अर्थ में एक बार[3] हुआ है।

✠ चंदायन– चेरी :

चेरी शब्द का प्रयोग नौकरानी के अर्थ में प्रयोग किया गया है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दाऊद मुल्ला ने तीन[4] स्थानों पर किया है।

मृगावती– चेरी :

कुतबन ने भी चेरी शब्द का प्रयोग मृगावती में एक स्थल पर इस प्रकार किया है–

घोरन बहुते चेरीं चढ़ाईं।[5]

यहाँ पर चेरी शब्द का प्रयोग दासी के अर्थ में हुआ है।

चंदायन– दासि :

दासी शब्द का विकृत रूप दासि है। दासी शब्द की व्युत्पत्ति में दासता से सम्बन्धित होने की ध्वनि प्रतीत हो रही है। दासता का तात्पर्य है गुलामी। गुलामी करने वाले को दास कहा गया है और दास का ही स्त्रीलिंग दासी है। डा0 हरदेव बाहरी ने 'दासी' को दास वर्ग की स्त्री माना है[6]। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार[7] हुआ है।

---

1. डा0 परमेश्वरी लाल चं0 पृ0 142
2. चंदा0 क0 112–1
3. मृगा0 क0 90–7
4. चंदा0 क0 32–1, 44–3, 50–1
5. मृगा0 क0 356–2
6. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
7. चंदा0 क0 434–7

मृगावती– दासी :

मृगावती में भी दासी शब्द का प्रयोग नौकरानी के ही अर्थ में दो बार[1] हुआ है।

मृगावती– कामी :

दासी में जहाँ दासत्व भाव की प्रधानता परिलक्षित होती है वहीं कामी में काम करने का भाव प्रधान है। 'दासी' काम करने वाली हो सकती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि कामी या काम करने वाली दासी हो। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार[2] हुआ है।

मृगावती– धाय :

धाय शब्द का प्रयोग भी काम करने वाली महिला के लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द का प्रयोग मृगावती में एक बार[3] ही हुआ है।

✠ चंदायन– जल :

पानी के पर्यायों में यह शब्द सर्वाधिक प्रचलित है। व्युत्पत्यर्थ के अनुसार जल वह है, जो धान्यादि वस्तुओं का आधार है और संसार को जीवनदान देता है।[4] ह्रस्व वर्णो से युक्त इस शब्द में कहीं भी सटीक बैठ जाने की क्षमता है और यह लोक जीवन में भी सबसे अधिक प्रचलित है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग सामान्य प्रचलित अर्थ में ही हुआ है। चंदायन में इसका प्रयोग एक[5] बार हुआ है।

मृगावती– जल :

कुतबन ने मृगावती में जल शब्द का प्रयोग पाँच बार[6] किया है। सभी स्थलों पर जल शब्द अपने साधारण अर्थ का वाचक है।

चंदायन– नीर :

प्रत्येक स्थान पर सरलता से उपलब्धि के कारण जल को नीर की संज्ञा दी जाती है।[1] चंदायन में इस शब्द का प्रयोग चार[6] बार हुआ है। कवि ने इस कोमलता व्यंजक शब्द का प्रयोग प्रायः भावुक एवं मधुर भावों के संप्रेषण के लिए किया है।

---

1. मृगा0 क0 88–1, 230–6,
2. मृगा0 क0 350–1
3. मृगा0 क0 47–6
4. धीमते अनेनति धान्यं तस्य भावः धान्यं जीवनोपयोगी क्रिया। जलति लोकान् जल। जीवयतीत्यथर्थः। शब्द कल्पद्रुम
5. चंदा0 ग0 22–3,
6. मृगा0 क0 32–7, 32–9, 39–5, 85–2, 276–7
7. नयति प्राययति स्थानात स्थानान्तरामिति। शब्द कल्प द्रुम
8. चंदा0 क0 24–3, 24–4, 48–6, 66–7

<u>मृगावती– नीर, नीरू, नीरा</u> :

तीनों शब्द नीर के ही रूप है। मृगावती में इन शब्दों का छैः बार[1] प्रयोग हुआ है। तीनों शब्द क्रमशः दो बार, दो बार एवं दो बार प्रयुक्त हुए हैं।

कांचे कमल कनक नीर पिया।

अइस बरन विधि ओहि कह दिया।।[2]

रूपक अलंकार की छटा अवलोकनीय है।

<u>चंदायन– पानी, पानू, पानि</u> :

पय से पानी बना है। पय शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से दी गई है।

1. जो गतिशील है।[3]
2. जिसे पिया जाता है।[4]

यह अनेकार्थक शब्द दूध और पानी दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। चंदायन में पानी, पानू एवं पानि शब्द क्रमशः छैः[5] बार, एक[6] बार तथा तीन[7] बार प्रयुक्त हुए हैं।

<u>मृगावती– पानी, पानि</u> :

मृगावती में कुतबन ने पानी शब्द का प्रयोग बहुतायत में किया है। पानी शब्द का प्रयोग ग्यारह[8] बार एवं पनि शब्द बारह[9] बार प्रयुक्त हुआ है।

गंग तरंग भई एहि पानी। और सलिला रे अलप वडवानी।।[10]

कतिपय स्थलों को छोड़कर सर्वत्र पानी शब्द अपने साधारण स्वरूप की प्रस्तुति कर रहा है।

<u>मृगावती– सलिल</u> :

यह शब्द जल की गतिशीलता के गुण को रेखांकित करता है। इसकी व्युत्पत्ति

---

1. मृगा0 क0 57–5, 71–3, 10–5, 319–2, 244–4, 329–1
2. मृगा0 क0 71–3
3. पय गतौ– शब्द कल्प द्रुम।
4. पय्यते पीयतेवा। शब्द कल्पद्रुम।
5. चंदा0 क0 30–4, 46–4, 47–3, 48–1, 50–5, 51–2
6. चंदा0 क0 24–1
7. मृगा0 क0 3–7, 22–2, 32–4, 33–2, 276–3, 276–7, 279–2, 233–2, 432–3, 352–1 400–1
8. मृगा0 क0 25–1, 35–4, 52–7, 153–5, 205–2, 277–3, 278–4, 238–3, 343–4, 373–1, 383–3, 482–7,
9. मृगा0 क0 276–3

देते हुए कहा गया है कि जो चलता है वह सलिल है[1] इसका अभिप्राय यह है कि कुएं या तालाब का स्थिर जल सलिल नहीं कहा जा सकता है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग चार[2] स्थलों पर पानी के ही अर्थ का द्योतक है।

मृगावती– अम्भ :

अम्बु का विकृत रूप है। अम्बु शब्द अवि धातु से बना है, जो ध्वनि करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस आधार पर इसका अर्थ हुआ कि जो ध्वनि करता है। इसका अर्थ हुआ कि गतिशील जल को ही अम्बु कहा जायेगा, क्योंकि जल के गिरने से या बहने से ही ध्वनि उत्पन्न होती है स्थिर जल में नहीं। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है। प्रयोग व्युत्पत्ति परक अर्थ में नहीं है।

सीतल सेत अम्भ कर रूपा।।[3]

✠ मृगावती– जीभि :

जिह्वा का तद्भव रूप जीभि है। मनुष्य की दस इंद्रियां मानी गयी हैं। पांच कर्मेंद्रियां और पांच ज्ञानेंद्रियां। जीभ मनुष्य की पांच ज्ञानेंद्रियों में से एक है। समस्त प्रकार के स्वादों का ज्ञान जीभि ही कराती है। मृगावती में 'जीभि' शब्द का प्रयोग छः बार[4] जीभ के साधारण अर्थ का उद्घाटन करने हेतु हुआ है।

मृगावती– रसना :

रसना शब्द जहां जिह्वा के अर्थ में प्रयुक्त होता है वहीं यह शब्द कटिबंध और डोरी के अर्थ का भी निरूपण करता है। मृगावती में रसना शब्द की आवृत्ति चार[5] बार हुई है। चारों बार यह शब्द जीभ के साधारण अर्थ का वाचक है। चखने से विभिन्न रसों का ज्ञान जीभ ही कराती है इस लिए इसका नाम रसना पड़ा।

---

1. सलति गच्छतीति। शब्द कल्प द्रुम
2. मृगा0 क0 111–3, 111–6, 39–7, 124–7
3. मृगा0 क0 25–1
4. मृगा0 क0 10–4, 32–1, 88–1, 62–5, 190–6, 224–3, 346–7
5. मृगा0 क0 4–3, 40–2, 62–1, 368–2

✠ <u>चंदायन टोपी</u> :

सिर पर पहिनने वाले वस्त्र का नाम है। जैसे गांधी टोपी। डा0 हरदेव बाहरी ने राज मुकुट, ताज, टोपी के आकार का धातु आदि का बना गहरा ढक्कन (जैसे चिलम ढकने की टोपी), शिकारी जानवर की आँख पर लगाने की पट्टी आदि के अर्थ बोधन हेतु टोपी शब्द का प्रयोग सही माना है।[1] चंदायन में टोपी शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है।

साहि फिरोज दिल्ली बड़ राजा। छात पाट और टोपी छाजा।।[2]

उक्त पंक्ति में टोपी 'ताज' के भाव के द्योतन हेतु किया है। प्रयोग सटीक और व्युत्पत्ति परक है।

<u>चंदायन– पागा</u> :

पागा शब्द पगड़ी शब्द का विकृत रूप है। पगा शब्द का विकासक्रम इस प्रकार है

पगा– संस्कृत। पटक– प्राकृत एवं हिन्दी में पगड़ी बना पगड़ी यद्यपि टोपी शब्द का समानार्थी है, परन्तु अर्थच्छायायें भिन्न हैं। टोपी, कपड़े को काट कर मशीन या हाथ से सिले हुए वस्त्र का नाम है, जबकि पगड़ी एक लम्बे कपड़े से निर्मित की जाती है। इसमें सिलाई नहीं होती है। यही लम्बा कपड़ा सिर पर बाँधने पर पगड़ी की संज्ञा से जाना जाता है। चंदायन में पागा शब्द का प्रयोग भी एक[3] ही बार हुआ है। यह भी पगड़ी के साधारण अर्थ के वाचन हेतु।

✠ <u>चंदायन– तन</u> :

इस शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए संस्कृत कोशों में कहा गया है कि जो विस्तार करता है या विस्तृत होता है वह तन (शरीर) है।[4] 'तन' शब्द का प्रयोग चंदायन में दो[5] बार हुआ है। तन शब्द शरीर के अन्य पर्यायों की अपेक्षा अधिक कोमल और मनोहारी है। नायिका

---

1. चंदा0 क0 राजपाल हिन्दी शब्द कोश
2. चंदा0 क0 8–1
3. चंदा0 क0 25–3
4. तनोति तन्यते इति वा। तन विस्तृतौ। शब्द कल्प द्रुम
5. चंदा0 क0 48–5, 53–2

के कोमल और सुन्दर शरीर को तन की संज्ञा से प्रयुक्त करना काव्य में श्रुति माधुर्य को स्थापित करता है। चंदायन में इस शब्द को दो[1] बार प्रयोग किया गया है। दाऊद मुल्ला ने 'तन' शब्द का प्रयोग व्युत्पत्तिपरक अर्थ में करके अपने शब्द ज्ञान का अनूठा परिचय दिया है–

काम लुबुध बिरहैं तन जरा।[2]

मृगावती– तन :

इस शब्द की व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में तन शब्द का प्रयोग छैः बार[3] हुआ है। इस शब्द का प्रयोग सभी स्थलों पर तन के साधारण अर्थ के द्योतन हेतु हुआ है। उदाहरणार्थ–

देखत तन झर–झर कर गई।[3]

नायिका की बरौनियों को देखकर नायक का तन जर्जर हो गया।

चंदायन– कया :

'काय' संस्कृत से आगत तत्सम शब्द है। उसी का तद्भव शब्द काया है। काय काया का ही रूप है। विभिन्न कोशों में काय शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से दी गयी है। एक व्युत्पत्ति के अनुसार प्रजापति जिसका देवता है, वह काया है।[4]

वामन शिवराम आप्टे के कथानुसार जिसमें अस्थि इत्यादि का संयोजन होता है, वह काया है।[5]

चंदायन में 'काया' शब्द का प्रयोग दो[6] स्थानों पर हुआ है। दोनों स्थलों पर यह शब्द 'काया' के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

---

1. चंदा0 क0 48–5, 53–2
2. चंदा0 क0 48–5
3. मृगा0 क0 54–1
4. कः प्रजापतिर्देवताऽस्य। शब्द कल्प द्रुम
5. चीयतेऽस्मिन अस्थ्यादि कमिति कायः। संस्कृत हिन्दी कोश
6. चंदा0 क0 66–6, 111–3

मृगावती– कया :

शब्द की व्युत्पत्ति का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दाऊद मुल्ला की भाँति कुतबन ने भी काया शब्द का प्रयोग 'कया' के ही रूप में किया है। कुतबन ने इस शब्द का छेः[1] बार प्रयोग किया है।

कया अनल विरहानल डही।[2]

जिउ लइ गई कहइ केहि आगें कया न आहि परान।[3]

उक्त दोनों पक्तियों में कया शब्द शरीर के समानक के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। किसी विशिष्ट अर्थाच्छाया की सृष्टि हेतु नहीं।

चंदायन– बदन :

मुख के द्वारा खाने, काटने जैसे कार्यो के अतिरिक्त बोलने का कार्य भी सम्पन्न होता है। बदन शब्द मुख की इसी विशेषता पर बल देता है।[4] डा0 हरदेव बाहरी ने शरीर का पर्याय बदन को भी माना है। 'बदन' शब्द इन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। दाऊद मुल्ला ने बदन शब्द का प्रयोग 'शरीर' के भाव के बोधन हेतु किया है। उदाहरणार्थ–

चन्द्र बदन मुख फँफर दीसा।[5]

बदन पसीज बूंद जो आवहिं।[6]

उपर्युक्त दोनों पंक्तियों में 'बदन' शब्द 'शरीर' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– बदन :

बदन शब्द की व्युत्पत्ति का विश्लेषण ऊपर किया जा चुका है। मृगावती में भी कुतबन ने बदन शब्द का प्रयोग 'शरीर' के भाव को व्यक्त करने के लिए किया है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग पाँच[7] बार हुआ है।

कंवल बदन सब अहइं सो नारीं।[8]

---

1. मृगा0 क0 28–7, 31–5, 34–4, 41–6, 68–5, 301–4
2. मृगा0 क0 31–5
3. मृगा0 क0 41–6
4. बदति अनेन इति–शब्द कल्पद्रुम।
5. चंदा0 क0 50–2
6. चंदा0 क0 77–3
7. मृगा0 क0 31, 4, 46–3, 52–3, 124–3, 421–2
8. मृगा0 क0 46–3

चंदायन– देह–देहा :

निरंतर वृद्धिमान होने के कारण शरीर को देह भी कहा गया है।[1] इसके अन्य समानार्थक शब्दों में किसी में क्षीण होने का भाव है, किसी में गति का और किसी में कर्म भोग का साधन होने का, लेकिन पर्याय कहे जाते हुए भी व्युत्पत्यर्थ की दृष्टि से देह अपनी स्वतन्त्र अर्थच्छाया से युक्त होने के कारण इनमें से किसी का भी पूर्व पर्याय नहीं कहा जा सकता । चंदायन में उक्त दोनों शब्द देह के व्युत्पत्ति परक अर्थ में लिए गये हैं। दोनों का प्रयोग एक–एक बार निम्नवत हुआ है–

नैन नीर देह मुँह छिरकंहि।[2]

रकत हीन कोइला भइ देहा।[3]

दोनों स्थलों पर 'देह' शब्द का प्रयोग शब्द के साधारण अर्थ का वाचक है।

मृगावती– देह–देहा :

इस शब्द की व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में दोनों शब्द क्रमशः दो–दो[4] बार अपनाये गये हैं। सभी स्थलों पर 'देह' के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

चन्दन देह न लाव निसंभारा।[5]

जाड़ धूप नहिं लागइ देहा।[6]

मृगावती– गात, गाता :

यह संस्कृत के गात्र शब्द का तद्भव रूप है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार जो गमन करता है, अथवा जिससे गमन किया जाता है, वह गात है। इस व्युत्पत्ति में गमन की दो प्रकार से व्याख्या की गयी है। 1. जो मृत्यु के पश्चात अपने कारण भूत पंच तत्वों में गमन करता है, वह गात है। 2. जिसकी सहायता से मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। इससे स्पष्ट है कि गात शब्द में गति की प्रधानता है।[7] कवि ने संस्कृत के कठोर

---

1. देग्धि प्रतिदिनम्। दिह वृद्धौ। शब्द कल्प द्रुम
2. चंदा0 क0 66–7
3. चंदा0 क0 85–5
4. मृगा0 क0 41–1, 193–7, 41–1, 41–5
5. मृगा0 क0 41–1
6. मृगा0 क0 41–5
7. गच्छत्यनेन गात्रं। शब्द कल्प द्रुम

प्रतीत होने वाले शब्द गात की अपेक्षा श्रुति मधुर एवं कोमल शब्द गात को अपनाया है।

मृगावती में दोनों शब्द क्रमशः एक–एक बार प्रयुक्त हुए हैं।

हम तुम्हं नाही बीच किछु जिव एकै दुहुँ गात।[1]

सगलेउ गात लॉवि नहिं छोटी।[2]

उक्त दोनों पंक्तियों में कुतबन ने गात शब्द का प्रयोग शरीर के पर्यायवाची शब्द के रूप में शब्द वैविध्य की दृष्टि से साधारण अर्थ में अपनाया है।

<u>मृगावती– पेड़िहि</u> :

पिंड शब्द का विकृत रूप है। पिंड शब्द शरीर का वाची होने के साथ–साथ (1) गोल पदार्थ के लिए (2) ठोस गोल वस्तु के लिए (3) गेहूँ जौ आदि के गीले आटे का गोला, जो हिन्दू धर्म में श्राद्ध के समय पितरों के नाम दिया जाता है। का भी बोध कराता है।

पिण्ड शब्द का विकास क्रम इस प्रकार है–

संस्कृत में पिण्ड, पाली भाषा में भी पिण्ड रहा आगे चलकर प्राकृत में पिंड बना और हिन्दी में भी इसका तद्भव रूप पिंड के रूप में स्वीकारा गया। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग कुतबन ने एक बार निम्न रूप में किया है।

पेडिहि छाँड़ि कंत हम गया।[3]

उक्त स्थल पर 'पेडिहि' शब्द शरीर का वाचक है। रूपमिनी कह रही है कि हमारा पति हमें अर्थात हमारे 'पेडिहि' (शरीर) को छोड़कर चला गया है।

<u>मृगावती– शरीर, सरीरा :</u>

'शरीर' शब्द 'शरीर' का विकृत रूप है। शरीर शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए संस्कृत कोशों में कहा गया है कि, जो रोग आदि से नष्ट होता रहता है वह शरीर है।[4] इस व्युत्पत्ति

---

1. मृगा0 क0 2586
2. मृगा0 क0 72–1
3. मृगा0 क0 303–1
4. शीर्य्यते रोगादि नायत। शब्द कल्पद्रुम।

से स्पष्ट है कि यद्यपि काया, गात, देह आदि भी शरीर के पर्याय ही कहे जाते हैं, तथापि इस शब्द में निरंतर क्षीण होने का जो भाव है, वह अन्य किसी शब्द में दृष्टिगत नहीं होता, अतः वे सभी शब्द एक ही वस्तु के संकेतक होते हुए भी अर्थच्छाया की भिन्नता रखते हैं।

शरीर शब्द का विकास क्रम इस प्रकार है–

संस्कृत में शरीर, पाली और प्राकृत में सरीर के रूप में प्रयुक्त हुआ और हिन्दी में पुनः संस्कृत का तत्सम रूप शरीर ही स्वीकार कर लिया गया।

मृगावती में दोनों शब्द क्रमशः एक बार और चार[1] बार प्रयोग हुए हैं। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ के वाची है किसी विशिष्ट अर्थ की झलक इनमें दृष्टिगत नहीं होती है।

मृगावती– घट :

डा0 हरदेव बाहरी ने घट शब्द का समानार्थक कलश, घड़ा, देह, शरीर, अंतःकरण एवं मन शब्दों को स्वीकारा है। मृगावती में कुतबन ने घट शब्द का प्रयोग दो स्थलों पर किया है। दोनों स्थलों पर शरीर के साधारण अर्थ का वाचक है।

जो घट मह जिउ होई।

जेहि घट रहइ परान।[2]

मृगावती– धर :

'धर' शब्द धड़ का विकृत रूप है। धड़ शब्द का विकासक्रम इस प्रकार है–

प्राकृत में धड़ बना। आगे चलकर हिन्दी में धड़ के रूप में प्रयुक्त होने लगा। धड़ शब्द का प्रयोग प्राणी के शरीर के गले के नीचे के भाग को कहते हैं[1] जनभाषा में सिर–धड़ मिलकर पूरा शरीर बनाना है। अर्थात् खण्डित शरीर धड़ कहलाता है। परन्तु कुतबन ने मृगावती में इस व्युत्पत्तिपरक अर्थ से हट कर सम्पूर्ण शरीर को ही धर शब्द की संज्ञा दी है–

धड़ि चली धर अधमित पारधि हनेउ सो धावतं।[3]

---

1. मृगा0 क0 22–7, 21–2, 41–5, 6–1
2. मृगा0 क0 28–6, 33–7
3. मृगा0 क0 47–7

यहाँ पर राजकुँवर के अर्धमृत धड़ (शरीर) को छोड़कर अप्सरायें चलीं गयी। धड़ शब्द 'शरीर' का ही वाचक है।

✠ <u>चंदायन– रूखा, रूख :</u>

जनभाषा का शब्द है। जनसाधारण के बीच वृक्ष का समानक है। चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः दो बार और एक बार कुल तीन बार[1] प्रयुक्त हुए हैं। सभी स्थलों पर वृक्ष के पर्यायवाची रूप के द्योतक हैं।

<u>मृगावती– रूख :</u>

चंदायन की भाँति मृगावती में भी पेड़ के पर्यायवाची शब्द के रूप में रूख शब्द का प्रयोग दो बार[2] हुआ है। दोनों बार वृक्ष के साधारण अर्थ की प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

<u>चंदायन– पेड़</u> :

चंदायन में पेड़ शब्द वृक्ष के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। किसी अर्थ विशिष्ट की अभिव्यक्ति हेतु नहीं। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति एक[3] बार मिली है।

<u>मृगावती– पेड़</u> :

मृगावती में कुतबन ने पेड़ शब्द को तीन[4] बार ग्रहण किया है तीनों बार पेड़ शब्द अभिधेयार्थ में प्रयुक्त हुआ है।

सुमर पेड़ पालव सटकारे।[5]

<u>चंदायन– तरुवर</u> :

तरुवर वृक्ष का पर्यायवाची है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति दो[6] बार मिली है। दोनों स्थलों पर पेड़ के साधारण रूप में प्रयुक्ति है।

---

1. चंदा0 क0 18–2, 68–5, 101–1
2. मृगा0 क0 2[illegible]–7, 251–3
3. चंदा0 क0 248–2
4. मृगा0 क0 2[illegible]–1, 64–1, 70–3
5. मृगा0 क0 70–3
6. चंदा0 क0 6[illegible]–3, 99–6

मृगावती– तरुवर :

कुतबन ने भी वृक्ष के स्थान पर तरुवर का किसी विशिष्ट प्रयोजन में प्रयोग न करके साधारण अर्थ में तीन[1] बार प्रयोग किया है।

विरह आगि तन तरुवर दहा।[2]

चंदायन– बिरख :

विरिख शब्द का मूल रूप वृक्ष है। चंदायन में विरिख शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में दो[3] बार हुआ है।

सोई विरख सोई तरुवर।[4]

मृगावती– बिरिख :

मृगावती में भी कुतबन ने विरिख शब्द का प्रयोग पेड़ के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया है। इसकी आवृत्ति मृगावती में चार[5] बार हुयी है।

देखिन्हि एक विरिख अति हरा।[6]

✠ **चंदायन– तीर :**

यह फारसी भाषा का शब्द है। विदेशज शब्द होते हुए भी हिन्दी भाषी क्षेत्र में जनजीवन में घुलमिल गया है। बाण के अतिरिक्त, इसका दूसरा अर्थ है– शक्ति। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[7] स्थलों पर मिला है। दोनों स्थलों पर अपने साधारण अर्थ की प्रस्तुति करता है।

चंदायन– सर :

इस शब्द की मूल धातु है शृ, जो हिंसा के अर्थ में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार शर वह है, जिसके द्वारा हिंसा की जाए या जो हिंसा का माध्यम है।[8] युद्ध में शत्रुओं के लिए

---

1. मृगा0 क0 21–6, 25–7, 304–5,
2. मृगा0 क0 304–5
3. चंदा0 क0 68–2, 249–6
4. चंदा0 क0 249–6
5. मृगा0 क0 21–3, 24–5, 202–1
6. मृगा0 क0 24–5
7. चंदा0 क0 2–2, 21–4
8. शृणा त्यनेनेति। शृहिंसे। वाणः। शब्द कल्पद्रुम

मृत्यु का कारण होने के आधार पर ही बाणों को शर कहा गया होगा। 'शर' शब्द का तद्भव रूप सर है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है–

सर तीखे जिंह मार फिरावइ।[1]

यहाँ पर 'सर' शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>मृगावती– सर</u> :

'बाण' के पर्यायवाची शब्द 'सर' का प्रयोग मृगावती में भी हुआ है। सर शब्द की व्युत्पत्ति उपर्युक्त ही है। मृगावती में कुतबन ने 'सर' शब्द का प्रयोग एक स्थल पर किया है–

पनचनाहिं लगात सर देखा।[2]

शर दुष्मन की मृत्यु कर देता है। इसी भाव को यहाँ व्यक्त करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। 'सर' अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ का वाचक है।

<u>चंदायन– बान</u> :

यह संस्कृत के बाण शब्द का तद्भव रूप है। यह बाण के चलने से होने वाली ध्वनि पर बल देने वाला शब्द है। जो ध्वनि करता है, वह बाण है।[3] चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति तीन[4] बार अभिधेयार्थ में हुई है।

<u>मृगावती– बान</u> :

बान शब्द की व्युत्पत्ति ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में 'बान' शब्द तीर का पर्यायवाची शब्द के रूप में व्यक्त हुआ है। किसी विशिष्ट अर्थ का वाचक न होकर साधारण अर्थ में ही इसका प्रयोग हुआ है। मृगावती में दो[5] ही बार इसका प्रयोग उपलब्ध है। उदाहरणार्थ–

बान मार जा सउं फिरि हेरा।[6]

---

1. चंदा0 क0 78–4
2. मृगा0 क0 53–2
3. बणनं बाणः शब्दस्त दस्यास्तीति। शब्द कल्पद्रुम
4. चंदा0 क0 78–1, 78–2, 354–4
5. मृगा0 क0 38–5, 53–1
6. मृगा0 क0 53–1

__मृगावती– बेधा__ :

बेधना क्रिया से बेध शब्द बना है। बेधना का तात्पर्य है वस्तु के आर–पार होना। मृगावती में इस शब्द की आवृत्ति एक बार हुई है।

वह वियोग बेधा न सभारै।[1]

उक्त पंक्ति में राजकुँवर की वियोग व्यथा को बाण का रूप प्रदान किया गया है।

✠ __मृगावती– तीर__ :

तीर का अर्थ है नदी का किनारा। बाण का पर्यायवाची भी तीर होता है। मृगावती में तीर शब्द का प्रयोग चार[2] बार मिला है। सभी स्थलों पर सरोवर के किनारे के द्योतन हेतु इस शब्द का प्रयोग हुआ है। डा0 हरदेव बाहरी ने तीर शब्द का अर्थ केवल नदी के किनारे को बताया है।[3] मृगावती में कुतबन ने सरोवर के किनारे को भी तीर संज्ञा से सम्बोधित किया है जो सटीक प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ–

सरवर तीर बरिस दिन रहा।[4]

__मृगावती– घाट__ :

संस्कृत के घट्ट शब्द का तद्भव रूप घाट है। घाट शब्द का विकासक्रम इस प्रकार मिला है– संस्कृत और प्राकृत में घट्ट रूप रहा और आगे चलकर 'घट्ट' शब्द घाट के रूप में हिन्दी में स्वीकारा गया। डा0 हरदेव बाहरी ने नदी के किनारे को घाट का पर्यायवाची स्वीकारा है।[5] दोनों शब्दों में अर्थभेद यह है कि किनारा कुदरती रूप में होता है, जबकि घाट सीढ़ीनुमा बनाया जाता है, इसी को घाट कहा है। घाट में निहित अर्थच्छाया को दृष्टिगत रखकर कुतवन ने 'घाट' शब्द का प्रयोग दो[6] बार किया है।

परसधाट सबै बाँधे जरे रतन बहु लाइ।[7]

उक्त पंक्ति में 'घाट' अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

---

1. मृगा0 क0 39–5
2. मृगा0 क0 22–6, 42–1, 69–5, 314–1
3. राजपाल हिन्दी शब्द कोश।
4. मृगा0 क0 42–1
5. राजपाल हिन्दी शब्द कोश।
6. मृगा0 क0 24–6, 159–7
7. मृगा0 क0 24–6

✠ चंदायन– दिवस, देवस, दिन :

चंदायन में दिवस शब्द तत्सम रूप में अपनाया गया है। दिवस का तद्भव रूप दिन है। संस्कृत में दिवस, प्राकृत में दिवह और आगे चलकर हिन्दी में दिन में परिवर्तित होकर प्रयुक्त हुआ।

चंदायन में दिवस, देवस और दिन तीनों शब्द क्रमशः तीन बार, पाँच बार एवं छैः बार कुल चौदह[1] बार प्रयुक्त हुआ है सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ की प्रस्तुति कर रहा है।

मृगावती– दिन, देवस, दिवस :

कुतबन ने भी मृगावती में दिन शब्द को मात्रा, तुक, लय आदि की आवश्यकता पूर्ति के लिए दिन, देवस और दिवस के रूप में एक ही शब्द का प्रयोग किया है। सभी स्थलों पर दिन शब्द के साधारण अर्थ का वाचक है। इन शब्दों का क्रमशः चार बार, तीन बार, एवं दो बार कुल नौ[2] बार हुआ है।

दुइरे मांस दिन दस महं जोरत यह ओरानेउं जाइ।[3]

चंदायन– बार :

'बार' शब्द जहाँ 'दिन' का पर्याय है वही बार शब्द का प्रयोग बालक और बाल के अर्थ में भी किया जाता है। चंदायन में प्रयुक्त स्थल पर 'बार' शब्द दिन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। रवि, शनि आदि ग्रहों के साथ बार शब्द के योग से ध्वनित होता है कि रवि का दिन शनि का दिन चंदायन में बार शब्द एक[4] बार आया है। संस्कृत और पाली में 'वार' और हिन्दी में तद्भव रूप 'बार' रूप मिलता है।

मृगावती– वासुर, वासर :

वासर शब्द का विकृत रूप वासुर है। वासर दिन का पर्यायवाची है। इस शब्द ने संस्कृत, पाली, प्राकृत एवं हिन्दी तक की यात्रा में अपना वास्तविक स्वरूप यथावत रखा

---

1. चंदा0 क0 1–1, 35–1, 71–5, 18–7, 25–5, 43–5, 45–6, 46–1, 47–4 54–3, 66–3, 72–1, 73–5, 79–6
2. मृगा0 क0 3–5, 11–6, 27–6, 301–1, 18–2, 18–3, 144–3, 166–4, 384–5
3. मृगा0 क0 11–6
4. चंदा0 क0 95–3

हिन्दी भाषा में ही नहीं विश्व की अनेक भाषाओं में कतिपय शब्द ही ऐसे हैं जो हजारों बर्षों से जनवाणी पर एकाधिकार कायम रख कर अवाध गति से गतिमान हैं, लेकिन कहीं भी अपना रूप परिवर्तित नहीं होने दिया।

मृगावती में वासुर शब्द दो[1] बार और वासर एक[2] बार आया है। सभी स्थलों पर दिन का पर्याय बन कर अपने अभिधयार्थ की ही प्रस्तुति कर रहा है किसी विशिष्ट अर्थ की नहीं।

निधि–वासुर किछु चीन्ह न ताही।[3]

☒ चंदायन– देव :

डा0 हरदेव बाहरी ने देव शब्द का अर्थ स्वर्ग का दिव्य शक्ति सम्पन्न अमर प्राणी को माना है।[4] सम्मानित व्यक्तियों के लिए आदरसूचक शब्द के रूप में भी देव शब्द का प्रयोग होता है। यथा– गुरूदेव, चित्र–देव आदि। चंदायन में देव शब्द का प्रयोग एक बार मिला है।

देव सराहहिं तैसों गारी।[5]

चंदायन– देवता :

डा0 हरदेव बाहरी[6] और डा0 गोविन्द चातक[7] ने देव का समानार्थी शब्द देवता को माना है। इस शब्द का प्रयोग चंदायन में एक बार आया है।

गन गंधर्व रिसि देवता।[8]

✠ मृगावती-- धार :

धार शब्द संस्कृत, पाली और प्राकृत में यह शब्द 'धारा' रूप में प्रयुक्त हुआ है। आगे चलकर इसी का तद्भव रूप धार बना। धार शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे– पानी की धार, दूध की धार, मूसलाधार वर्षा और किसी हथियार की धार।

मृगावती में धार शब्द का प्रयोग हथियार की धार के रूप में एक बार किया है–

खरग धार जसि माँग सिर आहीं।[9]

---

1. मृगा0 क0 166–3, 301–2
2. मृगा0 क0 9–7
3. मृगा0 क0 166–3
4. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
5. चंदा0 क0 86–3
6. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
7. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश
8. चंदा0 क0 34–7
9. मृगा0 क0 50–5

मृगावती– सान :

सान शब्द किसी हथियार पर धार रखने वाले पत्थर को कहा जाता है। कुतबन ने सान को धार के अर्थ में प्रयुक्त किया है–

विखहिं बुझाई सान खर लाए।[1]

डा0 माता प्रसाद गुप्त ने भी इसका अर्थ 'प्रखर शाण लगाए हुए' अर्थात् 'तेज धार' किया है।

✠ चंदायन– धिया, धी :

धिया का तात्पर्य है बेटी। यह शब्द संस्कृत में दुहिता। पाली में धीता। प्राकृत में धीआ। अपभ्रंश में धीय और हिन्दी में धी, धीऊ और धीऊ के रूप में मिलता है। चंदायन में इन शब्दों की आवृत्ति क्रमशः दो[2] बार और एक बार हुई है। सभी स्थलों पर बेटी के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

सहदेव महर कर धिय चाँदा चहुँ भुवन उजियार।[3]

चंदायन– बेटी, बिटिया :

'बेटी' शब्द का प्राकृत रूप बिट्टी, अपभ्रंश बिट्टिए और हिन्दी में बेटी रूप मिलता है। चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः तीन बार और दो बार कुल पाँच बार मिलते हैं। सभी स्थलों पर बेटी के अभिधेयार्थ के वाचक हैं।

राय जीत घर बेटी छीजा।[4]

✠ मृगावती– धूरि :

धूल का विकृत रूप धूरि है। धूल शब्द संस्कृत में धूलि, प्राकृत में धूलि और हिन्दी में धूल रूप में मिलता है। मिट्टी या पत्थर के बारीक कण धूल कहलाते हैं। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग दो[5] बार मिला है। दोनों स्थलों पर धूल के साधारण अर्थ के वाची हैं।

पाँछे परई सो धूरि लगावा।[6]

---

1. मृगा0 क0 53–3
2. चंदा0 क0 36–3, [illegible]–6, 106–2
3. चंदा0 क0 73–6
4. चंद0 क0 38–7, [illegible]–3, 47–6, 47–2, 49–7
5. चंदा0 क0 40–3
6. मृगा0 क0 7–3, [illegible]

मृगावती– खेह :

धूल का समानार्थक खेह है। 'धूल' और 'खेह' साधारणतः एक ही अर्थ के वाचक हैं। जनभाषा में 'धूल' शब्द के प्रयोग का अधिक्य है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिला है।

तुरिय टाप असि खेह उड़ानी।[1]

यहाँ पर खेह शब्द धूल के ही भाव का वाचक है।

✠ **चंदायन– नगर :**

जहाँ पर्वत के समान विशाल आकार वाले महल हों वह नगर कहलाता है।[2] इसे बहुलोक वासस्थान भी कहा गया है। बहुलोक के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि नगर व्यापार आदि क्रियाओं में निपुण चारों वर्णों के लोगों, अनेक जातियों, शिल्पियों तथा देवताओं से युक्त होता है। रामचन्द्र वर्मा ने गांव और कस्वे से बहुत बड़ी मनुष्यों की बस्ती को नगर की संज्ञा दी है।[3] जहां गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हों और जहां विभिन्न जातियों एवं कर्म क्षेत्रों वाले लोगों का निवास हो वह स्थान नगर कहलाता है।

चंदायन में नगर शब्द का प्रयोग पाँच[4] बार गया है। अधिकतर अपने व्युत्पत्यर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है, यथा–

पैठि वौरिया नगर दुआरा।[5]

चंदायन– पुर :

पुर शब्द संस्कृत की पुर धातु से बना है। इस शब्द का अर्थ है 'आगे जाना' इस प्रकार पुर शब्द का अर्थ हुआ– जो निरंतर आगे बढ़े या विकास करे।[6] मोनियर विलियमस बहुत बड़े भवनों से युक्त उस स्थान को पुर कहते हैं जो विस्तार में एक कोस से कम न हो

---

1. मृगा0 क0 8–4
2. नृगा इव प्रसादादयः संति यत्र। शब्द कल्पद्रुम
3. मानक हिन्दी शब्द कोश
4. चंदा0 क0 17–3, 71–2, 71–7, 73–2, 73–3
5. चंदा0 क0 71–2
6. परति अग्रे गच्छतीति। शब्द कल्पद्रुम

और जो चारों तरफ से खाई से घिरा हो। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

बुहत लोग पुर आवा।[1]

पुर शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है।

चंदायन– गाँऊ :

यह शब्द संस्कृत में ग्राम, पाली प्राकृत में ग्राम अपभ्रंश में गांव और हिन्दी में ग्राम के रूप में मिलता है। नगर और पुर से छोटा रूप गांव का होता है। चंदायन में नगर पुर और गांव समान रूप से एक ही अर्थ के वाचक प्रतीत होते हैं। चंदायन में गांऊं शब्द दो[2] बार आया है।

चंदायन– बस्ती :

वसती का विकृत रूप बस्ती है। वसती का तात्पर्य है वास करने का स्थान।[3] जिस स्थान पर मनुष्य एक समूह बना कर रहते हैं वह स्थान वसती कहलाता है। गांव और वसती एक दूसरे के समानक तो हैं ही एक ही अर्थ के वाची भी। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक स्थल पर मिला है।

सकर दिवस बन बस्ती भँवई।[4]

उक्त स्थल पर बस्ती शब्द गांव के ही अर्थ का द्योतक है।

चंदायन– अस्थान :

स्थान शब्द का ही विकृत रूप है। स्थान शब्द जहां गांव, नगर आदि रहने के स्थान के अर्थ में प्रयुक्त होता है, वहीं यह शब्द निम्नांकित के भाव का भी वाची है। 1. जगह 2. पर 3. स्थिति (जैसे आपका अमुक राजनैतिक दल में क्या स्थान हैं।) 4. घर (जैसे आपका स्थान कहाँ है।) 5. देश भूभाग (जैसे आप किस स्थान के निवासी हैं।) 7. नगर (जैसे आप

---

1. चंदा० क० 441–6
2. चंदा० क० 27–6, 71–3
3. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
4. चंदा० क० 193–3

किस स्थान पर पैदा हुए।) चंदायन में यह शब्द एक बार मिला है–

नगर उजैन मोर अस्थान्।[1]

यहाँ पर अस्थान शब्द नगर उजैन के द्योतन हेतु हुआ है।

चंदायन– देश :

डा0 हरदेव बाहरी ने नगर, गांव आदि का पर्याय देश को माना है।[2] चंदायन में देश शब्द एक बार ग्रहण किया गया है।

बाजिर कौन देश सो नारी।[3]

उक्त पंक्ति में देश शब्द नगर की अभिव्यंजक है।

चंदायन– नद, नारा :

यह संस्कृत की नद धातु से बना शब्द है, जो संम्वृद्धि के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।[4] इसके अतिरिक्त जल के प्रवाह से उत्पन्न शब्द के कारण भी सरिता को नदी कहा जाता है।[5]

चंदायन में तीनों शब्दों का प्रयोग क्रमशः एक–एक[6] बार साधारण अर्थ में हुआ है।

चंदायन– बैतरनी :

संस्कृत में इस शब्द का रूप वैतरणी अपभ्रंश में बइतरणि और हिन्दी में वैतरणी रूप मिलता है। वैतरणी भी एक नदी का नाम है। साधारण नदी और वैतरणी में अर्थ भेद यह है कि नदी पृथ्वी पर स्थित है और वैतरणी पौराणिक कथानुसार यम के द्वार के पास की एक कल्पित नदी है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

राजा नैन बैतरनी बहा।[7]

उक्त पंक्ति में 'बैतरनी' शब्द नदी के भाव का वाचक है। लोकोक्ति है 'आँखों से नदी बहने लगी' इसी भाव का द्योतक उक्त शब्द है।

---

1. चंदा0 क0 73–2
2. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
3. चंदा0 क0 74–4
4. नदतीति नदः नद संवृद्धि। शब्द कल्पद्रुम
5. नदीति प्रवाह वेगेन शब्दायते इति। शब्द कल्पद्रुम
6. चंदा0 क0 [illegible]0–3, 280–3, 102–4
7. चंदा0 क0 96–1

मृगावती– सलिला :

सलिल से सलिला शब्द की रचना हुई है। सलिल का अर्थ है पानी और सलिला का नदी। सलिल शब्द जल की गतिशीलता के गुण को रेखांकित करता है। इसकी व्युत्पत्ति देते हुए कहा गया है कि जो चलता है वह सलिल है।[1] इसका अभिप्राय यह है कि कुंए या तालाब का स्थिर जल सलिल नहीं कहा जा सकता। जल की गतिशीलता वाले गुण के कारण ही नदी को सलिला कहा गया है–

मृगावती में इस शब्द की आवृत्ति दो[2] बार हुई है।

नैन सलिल मद डूबौं।[3]

यहाँ पर सलिल व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त न होकर जल के साधारण भाव का द्योतक है।

मृगावती– सरिता :

संस्कृत में सरित शब्द की व्युत्पत्ति है– सरतीति–सृगतौ। अर्थात् जो निरंतर गतिशील है वह सरित् है। स्पष्ट है कि नदी के जल की प्रवाह मयता के कारण उसे सरिता की संज्ञा दी गयी है।

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[4] बार नदी के साधारण अर्थ के वाचक के रूप में किया है।

✠ चंदायन– नरिन्द :

संस्कृत के 'नरेन्द्र शब्द का विकृत रूप नरिन्द है। नरः और इन्द्र शब्द के योग से नर + इन्द्र = नरेन्द्र बना है। नरों में जो श्रेष्ठ है वह नरेन्द्र है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग राजा के साधारण अर्थ में एक बार हुआ है।

तू नरिन्द देश कह राऊ।[5]

---

1. सलति गच्छतीति। शब्द कल्प द्रुम
2. मृगा० क० 39–7, 276–3
3. मृगा0 क0 124–7
4. मृगा० क० 124–7
5. चंदा0 क0 40–2

<u>मृगावती नरिंद</u> :

दाऊद मुल्ला की भाँति कुतबन ने भी नीरंद शब्द को राजा के अर्थ में अपनाया है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग दो[1] बार मिला है।

निसि नरिंद सब ठाढ पुकारै।[2]

यहाँ पर नरिंद राजा का साधारण अर्थ बोध करा रहा है।

<u>मृगावती– गजपति</u> :

जिन राजाओं के पास युद्ध में गज प्रयोग के हेतु होते थे उन राजाओं को गजपति कहा जाता था। 'गजपति' यद्यपि राजा का समानक शब्द है, फिर भी अर्थ भेद की दृष्टि से दोनों में अंतर है। जिस राजा के पास 'गज' नहीं होते थे उसे गजपति नहीं कहा जा सकता था। 'राजा' शब्द दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता था। गजपति में अर्थ संकोच है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग दो[3] बार अपने व्युत्पत्यर्थ में ही हुआ है।

<u>चंदायन– नृप</u> :

नृप, राजा, राऊ और नरिंद शब्द परस्पर समानार्थी शब्द है। चंदायन में नृप शब्द एक बार राजा के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

हाड़ देश नृप भाग।[4]

<u>चंदायन– राजा, राजें</u> :

दोनों शब्द राजा के ही रूप हैं। नृप का समानक राजा शब्द का भी प्रयोग चंदायन में हुआ है। इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः आठ[5] बार और एक[6] बार हुआ है। सभी स्थलों पर यह शब्द अभिधेयार्थ में प्रयुक्त हुआ है–

राजा के निज बरउल आवँहिं।[7]

---

1. मृगा0 क0 12–2, 40–40–2
2. मृगा0 क0 40–2
3. मृगा0 क0 206–5
4. चंदा0 क0 13–6
5. चंदा0 क0 8–1, 36–5, 37–3, 38–4, 73–2, 74–2, 76–3, 78–7
6. चंदा0 क0 77–6
7. चदा0 क0 36–5

मृगावती– राजा, राजई :

कुतबन ने भी नृप का पर्यायवाची राजा शब्द को प्रयोग मृगावती में बहुतायत में किया है। मृगावती में राजा शब्द पन्द्रह[1] बार और राजई शब्द का प्रयोग आठ[2] बार साधारण अर्थ में हुआ है।

राजई जन दौराए ततखन जंगम आवहु हंकराई।[3]

चंदायन– राउ :

राउ शब्द भी राजा का समानार्थक है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति पाँच[4] बार हुई है। सभी स्थलों पर राजा के साधारण अर्थ का वाचक है।

सुन कै चाँद राउ अँगरानाँ।[5]

मृगावती– राउ :

मृगावती में राउ शब्द को कुतबन ने छैः बार[6] साधारण अर्थ में प्रयुक्त किया है।

सुना राउ बहु उठा मरोहू।[7]

चंदायन– सुल्तानु :

सुल्तान का ही परिवर्तित रूप सुल्तानु है। दाऊद मुल्ला का हिन्दी की तरह अरबी और फारसी भाषा पर भी एकाधिकार था। डा0 हरदेव बाहरी ने सुल्तान शब्द अरबी और फारसी दोनों में प्रयुक्त होना माना है। चंदायन में एक बार इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में हुआ है।

सहि फिरोज दिल्ली सुल्तानु।[8]

'सुल्तान' और 'राजा' शब्द में अर्थ भेद यह है कि राजा शब्द हिन्दी में तद्भव है और 'सुल्तान' विदेशज। राजा हिन्दू राजाओं के लिए प्रयुक्त होता है और सुल्तान मुस्लिम शासकों के लिए।

---

1. मृगा0 क0 13–2, 15–1, 15–3, 16–2, 26–3, 30–4, 31–2, 31–4, 32–1, 33–8, 34–7, 86–2, 89–6, 259–2
2. मृगा0 क0 112–6, 136–1, 137–2, 139–1, 144–7, 146–1, 162–2, 251–3,
3. मृगा0 क0 112–6
4. चंदा0 क0 32–7, 6–2, 74–1, 75–6, 80–1
5. चंदा0 क0 74–1
6.–मृगा0 क0 4–7, 16–7, 19–6, 21–1, 112–1, 112–3
7. मृगा0 क0 21–1
9. चंदा0 क0 17–2

✠ मृगावती– नाग :

संस्कृत का तत्सम रूप है। संस्कृत में नाग के रूप में मिला है। 'नाग' जहाँ सर्प के अर्थ का वाचक है वहीं हाथी के अर्थ में भी नाग शब्द व्यवहृत होता है। मृगावती में सांप के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग दो बार[1] हुआ है।

सुर नर 'नाग' शीश पुनि डोला।[2]

मृगावती– भुअंगम :

भुजंग शब्द सांप का पर्यायवाची है। भयानकता का भाव समाहित होने से सर्प को भुजंग या भुअंगम कहा गया है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिला है।

विखम भुअंगम बेनी भई।[3]

यहाँ पर भुअंगम शब्द भयानकता के भाव को ध्वनित कर रहा है।

✠ चंदायन– तिरी, तिरिया :

ये सभी शब्द संस्कृत के स्त्री शब्द के अपभ्रंश रूप है। स्त्री शब्द की व्युत्पत्ति सम्भवतः सूत्री या सोत्री से है, जिसका अर्थ होता है प्रसव करके अथवा संतान उत्पन्न करने वाली नारी की ही तरह स्त्री का प्रयोग भी सामूहिक और सार्विक रूप में होता है। बोल–चाल में स्त्री शब्द प्रायः पत्नी या भार्या का भी वाचक हो गया है।

चंदायन में इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः दो–दो बार[4] नारी के साधारण अर्थ में हुआ है–

जो सो तिरी फिर दिखरावइ।[5]

मृगावती– सुतिय, तिरिया, तिरी :

चंदायन और मृगावती में स्त्री के अपभ्रंश रूप तो मिलते हैं, लेकिन इनके मूल शब्द

1. मृगा० क० 51–1, 58–5
2. मृगा० क० 58–5
3. मृगा० क० 65–5
4. चंदा० क० 70–3, 73–4, 36–4, 74–5
5. मृगा० क० 70–3

स्त्री का प्रयोग कहीं दृष्टिपथ में नहीं आया है। मृगावती में तीनों शब्द क्रमशः एक–एक बार[1] स्त्री के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं–

कहसि अवधि आहइ मोहि जित सेउ बैठौं तिरी न पाए।[2]

मृगावती– कामिनी :

मृगावती में कामिनी शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ में दो[3] स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है–

कनक कलस उर कामिनी रस भरि धरे अनंत।[4]

शब्द की व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है।

चंदायन– अबलहिं :

अबला शब्द का ही रूप अबलहिं है। संस्कृत के अबल शब्द का स्त्रीलिंग रूप अबला है, जिसका अर्थ है– बल से रहित या शक्ति से हीन। स्त्रियाँ स्वभावतः पुरूषों की तुलना में असमर्थ या दुर्बल मानी जाती हैं; और अबला उनकी इसी दुर्बलता का सूचक है। पर कहीं–कहीं पर यह शब्द नारी और स्त्री का पर्याय भी माना जाता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग स्त्री के साधारण अर्थ में दो[5] स्थलों पर प्रयोग किया गया है–

अबलहिं अइस न काहू सो भई।[6]

मृगावती– अबला :

शब्द व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। कुतबन ने अबला शब्द का प्रयोग नारी के अर्थ में दो[7] बार किया है–

अबला सरिल जो सलिल भई किमिकारन कॅह एह।[8]

1. मृगा0 क0 14–5, 330–7, 127–6
2. मृगा0 क0 127–6
3. मृगा0 क0 53–6, 67–6
4. मृगा0 क0 67–6
5. चंदा0 क0 48–5, 270–3
6. चंदा0 क0 270–3
7. मृगा0 क0 124–7, 300–7
8. मृगा0 क0 124–7

<u>चंदायन– नारी</u> :

यह नर शब्द का स्त्रीलिंग रूप है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार धर्माचार लज्जा, सेवा, श्रद्धा आदि गुणों से पूर्ण स्त्री ही नारी है।[1] चंदायन में नारी शब्द का प्रयोग सात[2] बार मिला है। नारी शब्द के सभी प्रयोग अर्थ की दृष्टि से सामान्य दृष्टिगत होते हैं।

बाजिर कौन देश सो नारी।[3]

<u>मृगावती– नारी</u> :

शब्द की व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में नारी शब्द का प्रयोग ग्यारह[4] बार प्रयुक्त हुआ है। सभी स्थलों पर नारी के साधारण रूप की प्रस्तुति कर रहा है।

चतुर सयानि विचच्छिनि नारी।[5]

<u>चंदायन– कामिनी</u> :

संस्कृत के कामिन शब्द का स्त्रीलिंग कामनी है जिसका पहला अर्थ है– कामना करने वाला; और दूसरा अर्थ है– अनुराग या प्रेम करने वाला। अर्थ की दृष्टि से कामिनी भी प्रेम करने वाली अथवा प्रेम की पात्री सुन्दरी का वाचक है। चंदायन में कामिनी शब्द एक बार आया है–

सेज न भाउ रूचि न कामिनी।[6]

उक्त पंक्ति में कामिनी शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयोग हुआ है।

<u>मृगावती– जोवन वारी :</u>

शब्द की व्युत्पत्यक व्याख्या दी जा चुकी है। चंदायन की भाँति मृगावती में भी स्त्री के पर्यायवाची शब्द के रूप में जोवनवारी शब्द का प्रयोग दो[7] बार अपने मूल अर्थ में हुआ है।

झमक चलीं सब जोबन बारी।[8]

---

1. नर धर्म्माधार युक्ता। शब्द कल्पद्रुम
2. चंदा0 क0 28–5, 32–5, 74–4, 76–5, 34–7, 78–6, 86–2
3. चंदा0 क0 74–4
4. मृगा0 क0 67–1, 78–1, 88–3, 127–4, 230–7, 242–6, 257–4, 260–5, 273–1, 298–2, 298–5
5. मृगावती कडवक 257–4
6. मृगावती कड़वक 246–6
7. मृगा0 क0 28–2, 77–4
8. मृगा0 क0 77–4

उक्त पंक्ति में जोबनबारी शब्द यौवनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, अतः यहाँ पर यह शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ का द्योतन करता है।

<u>चंदायन– धनि :</u>

धनि शब्द का विकासक्रम निम्नलिखित है– संस्कृत में यह शब्द धन्या के रूप में मिला है, आगे चलकर प्राकृत में यह धन्ना के रूप में परिवर्तित हो गया, पुनः अपभ्रंश में आकर धणि बना और हिन्दी में इसका तद्भव रूप धनि एवं धन सर्व विदित है। धनि शब्द विवाहित युवती स्त्री एवं पत्नी के लिए प्रयुक्त होता है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति तीन[1] बार हुई है।

कहौं सखी माह मास की बात। करसि रांग सबै धनि राता।[2]

उक्त स्थल पर दाऊद मुल्ला ने धनि शब्द विवाहित 'यौवनाओं' के अर्थ में ग्रहण किया है, अतः यह शब्द व्युत्पत्यर्थ में सटीक प्रयुक्त हुआ है।

<u>चंदायन– जोई :</u>

जोइन का विकृत स्वरूप जोई है। संस्कृत में योगिनी, प्राकृत में जोइणी तथा हिन्दी में तद्भव रूप जोइन है। जोइन जोगी की स्त्री को कहते हैं। चंदायन में जोई शब्द का प्रयोग दो बार[3] किया गया है।

कहाँ कै पुरूख कहाँ कै जोई।[4]

दाऊद मुल्ला ने जोई शब्द का प्रयोग व्युत्पत्यर्थ में न करके स्त्री के साधारण अर्थ में किया है।

<u>चंदायन– जोवनवारी :</u>

'जोवनवारी' शब्द 'यौवनवाली' या 'यौवना' का ही विकृत रूप है। संस्कृत का

---

1. चंदायन कड़वक 46–2, 54–1, 274–1
2. चंदायन कड़वक 54–1
3. चंदायन कड़वक 29–1, 39–4,
4. चंदायन कड़वक 29–1

'यौवनम्' शब्द पाली में 'यौब्बन' बना और हिन्दी में अपने तत्सम् रूप में ही स्थापित हो गया। इसी शब्द से 'यौवना' बना। 'यौवना' जवान स्त्री को कहा जाता है। स्त्री और यौवना दोनों की पर्यायवाची हैं। परन्तु अर्थच्छाया भिन्न है। एक वृद्ध स्त्री को स्त्री तो कहा जा सकता है परन्तु यौवना नहीं इसी प्रकार एक जवान स्त्री को स्त्री तो कहा जा सकता है परन्तु वृद्धा नहीं। इस प्रकार अर्थ विस्तार के कारण स्त्री में औरत के सभी रूप समाहित हैं परन्तु अर्थसंकोच के कारण यौवना (जोवनवारी) मात्र जवान स्त्री के लिए प्रयुक्त होगा। चंदायन में जोवनवारी शब्द एक स्थल पर अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

गावहिं अपुरब जोबनबारी।[1]

मृगावती धनि :

धनि शब्द मृगावती में तीन[2] स्थलों पर ग्रहण किया गया है। सभी स्थलों पर यह शब्द स्त्री के साधारण अर्थ का वाचक न होकर अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

लोक कहा सुनहु धनि चाँदा, गबन करब अब साँझ।[3]

चंदायन– गोरी :

स्त्री के समानार्थक शब्दों में गोरी का भी प्रयोग चंदायन में किया गया है। यह शब्द संस्कृत के गौरी शब्द का तद्भव रूप है। प्राकृत में इसका रूप गउरी और अपभ्रंश में गोरि मिलता है। हिन्दी में गोरी शब्द गौर वर्ण स्त्री को कहा जाता है। परन्तु आज जनसाधारण इसका प्रयोग पत्नी के लिए भी प्रयुक्त करने लगे। पत्नी गोरी हो या काली। इस शब्द से ध्वनित अर्थच्छाया का लोप हो गया है। चंदायन में गोरी शब्द एक बार दृष्टिपथ में आया है–

देव सराहहि तैसौ गोरी।[4]

यहाँ चंदा के लिए गोरी शब्द प्रयुक्त हुआ है।

---

1. चंदायन कड़वक 32–5
2. मृगावती कडवक 62–7, 286–6, 300–7
3. मृगावती कड़वक 286–6
4. चंदायन कडवक 86–3

मृगावती– गोरी :

मृगावती में भी स्त्री का पर्यायवाची गोरी शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है।

पिउ सेवइ बुधिवंति सो गोरी।[1]

जो पिय की सेवा करे वही स्त्री (गोरी) बुद्धिमती है। यहाँ कवि ने 'गोरी' शब्द व्युत्पत्यर्थ में न करके पतिपरायण के रूप में प्रयुक्त किया है।

चंदायन– महरी :

'महरी' शब्द ब्रज में प्रतिष्ठित स्त्रियों के लिए एक आदर सूचक शब्द है। कहारिन एवं वर्तन माँजने वाली महिला का बोधन भी यही शब्द कराता है। संस्कृत में इस शब्द का रूप महार्या है। इसी शब्द का तद्भव रूप हिन्दी में महरी है।

चंदायन में महरी शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है।

तू महरी के जाति अकेली।[2]

केवट द्वारा चाँदा को 'महरी जाति' शब्द से सम्बोधित किया जाना यह ध्वनित कर रहा है कि दाऊद मुल्ला ने महरी शब्द व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त न करके औरत के साधारण स्वरूप को चित्रित किया है।

मृगावती– तरुनी :

तरुण शब्द का स्त्री रूप तरुणी है। तरुणी का ही दूसरा रूप तरुणी है। तरुण का अर्थ है युवक, अतः तरुणी दोनों स्त्री के एक ही रूप के वाचक हैं। 'यौवना' शब्द की व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है।

मृगावती में 'तरुनी' शब्द का प्रयोग तीन[3] स्थलों पर हुआ है।

एहि रे अवस्था तरुनि भुलानी।[4]

---

1. मृगावती कड़वक 403–5
2. चंदायन कड़वक 306–4
3. मृगावती कड़वक 287–3, 317–6, 331–4
4. मृगावती कड़वक 287–3

यहाँ पर तरुनी शब्द 'यौवना मृगावती के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी यह शब्द 'यौवना' के ही अर्थ में ही हुआ है।

<u>मृगावती– जनीं, जनि</u> :

'जन' शब्द का स्त्री रूप जनी है। जिस प्रकार 'नर' से 'नारी' बना उसी प्रकार 'जन' से जनी। जहाँ 'जन' शब्द सभ्य एवं सुशिक्षित समाज द्वारा प्रयुक्त होता है; (यथा– **जन–जन, 'जन गण मन अधिनायक जय हे'** आदि), वहीं जनी शब्द अशिक्षित समाज में ही समाहित होकर रह गया। मृगावती में जनी और जनि शब्द क्रमशः दो स्थलों पर[1] एवं एक स्थल पर प्रयुक्त हुए हैं–

सासु के आए दुवौ जनि रहीं।[2]

कुतबन ने जनी और जनि शब्दों का प्रयोग तीनों स्थलों पर स्त्री के अभिधेयार्थ में ही किया है।

<u>मृगावती– रामां</u> :

डा0 हरदेव बाहरी ने 'रामा' शब्द को तीन अर्थों में व्यवहृत बताया है।[3] 1. सुन्दर स्त्री, 2. नाचने गाने में प्रवीण स्त्री एवं 3. लक्ष्मी।

मृगावती में रामा शब्द का दो[4] स्थलों पर प्रयोग मिला है–

रामां अधिक बियोग संताई।[5]

दोनों स्थलों पर कुतबन ने रामां शब्द का प्रयोग सुन्दर स्त्री के भाव की अभिव्यक्ति के लिए किया है।

✠ <u>चंदायन– नाव</u> :

नाव लोहे आदि की बनी हुई जल के ऊपर चलने या तैरने वाली सवारी है। नाव शब्द का विकास पथ इस प्रकार है–

---

1. मृगावती कड़वक 43–1, 399–1, 6,
2. मृगावती कड़वक 399–1
3. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
4. मृगावती कड़वक 311–5, 313–7
5. मृगा0 क0 311–5

संस्कृत में नौ, पाली में नावा प्राकृत में णावा अपभ्रंश और हिन्दी में नाव रूप मिलता है। चंदायन में नाव शब्द को एक बार प्रयोग किया गया है–

धरम नाव हों लीन्ह चढ़ाई।[1]

यहाँ नाव शब्द का प्रयोग नाव के साधारण अर्थ में किया गया है।

चंदायन– सरंगा :

सरंगा शब्द का प्रयोग चंदायन में नाव के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

सरंगा बेग चलायसि खिन–खिन चिंतहि संखाइ।[2]

चंदायन– वोहित :

'वोहित' शब्द का प्रयोग भी चंदायन में दाऊद मुल्ला ने 'नाव' के अर्थ में प्रयुक्त किया है–

जनु वोहित सागर मँह तिरे।[3]

✠ **चंदायन– पंडित :**

पंडित शब्द विद्वान के अर्थ में प्रयुक्त होता है और जनसाधारण ब्राह्मण जाति के व्यक्ति को भी पण्डित की संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। चंदायन में पंडित शब्द विद्वान के अर्थ में प्रयुक्त किया है– 'पंडित' शब्द दाऊद के मात्र दो[4] बार ग्रहण किया है–

अति विधवांस पंडित ते बड़े।[5]

मृगावती– पंडित, पीडतिन्ह, पंडितन्ह :

मृगावती में भी पंडित शब्द के उक्त सभी रूप क्रमशः सात[6] बार, चार[7] बार और एक[8] बार प्रयुक्त हुआ है। सभी शब्द विद्वान के अर्थ में मिलते हैं–

पंडित औ बुधिवंत सयाना।[9]

---

1. चंदायन कड़वक 9–2
2. चंदायन कड़वक 304–6
3. चंदायन कड़वक 115–4
4. चंदायन कड़वक 27–2, 39–1
5. चंदायन कड़वक 27–5
6. मृगावती कड़वक 7–2, 15–5, 17–5, 16–3, 14–3, 14–4, 208–3, 307–2
7. मृगावती कड़वक 16–3, 16–5, 17–3, 10–4
8. मृगावती कड़वक 1–7, 10–2
9. मृगावती कड़वक 7–2

चंदायन– सुजान, सुजाना :

सुजान शब्द से समझदार या निपुण व्यक्ति का अर्थ झलकता है, यह शब्द परमात्मा का भी वाचक है, सुविज्ञ जन पति या प्रेमी के भाव के द्योतन हेतु भी इसका प्रयोग करते हैं। चंदायन में 'सुजान' शब्द विद्वान के अर्थ में तीन[1] स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। सभी स्थानों पर विद्वान के अर्थ का द्योतन कर रहा है–

चतुर सुजान भाख सव जाना। रूपवंत मंत्री सुजाना।[2]

उक्त दोनों शब्द सुजान और सुजाना शब्दों से विद्वान का भाव दर्शित हो रहा है।

मृगावती– सुजान :

कुतबन ने भी सुजान शब्द का प्रयोग विद्वान के अर्थ में चार[3] बार ग्रहण किया है।

चतुर सुजान भाखा सव जाना।[4]

चंदायन– गुन आगार :

गुणों का जो आगार है वह गुण आगार कहलाता है। दाऊद ने इस शब्द का श्रृजन काव्य लालित्य लाने के लिये अपनी मेघा से किया है। किसी कोश कार ने इस शब्द को अपने कोश में स्थान दिया हो ऐसे दृष्टिपथ में नहीं आया। चंदायन में इसका प्रयोग एक बार हुआ है–

गुनित कार कस होत अयाना।[5]

चंदायन– गुनितकार, गुतितगार :

गुनितकार का शुद्ध रूप गुणितकार हुआ। चंदायन में यह शब्द भी कवि की उत्कृष्ट कल्पना का द्योतक है। 'गुणितकार' में मूल शब्द 'गुण' (भाववाचक संज्ञा) में कार प्रत्यय के योग से गुणितकार जातिवाचक संज्ञा का श्रृजन हुआ है। शिल्प+कार = शिल्पकार,

---

1. चंदायन कड़वक 9–2, 9–2, 11–2
2. चंदायन कड़वक
2. मृगावती कड़वक 7–6, 17–7, 65–6, 235–7
3. मृगावती कड़वक 7–6
4. चंदायन कड़वक 39–1

स्वर्ण+कार = स्वर्णकार आदि शब्द इसी प्रकार निर्मित किए गये हैं। चंदायन में उक्त शब्द का प्रयोग एक–एक[1] बार गुणी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

गुनितकार लेखैं बोरावसि।[2]

<u>चंदायन– गुनी, गुनित, गुनवंत, गुनियारी :</u>

उक्त सभी शब्द विद्वान के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। चंदायन में सभी शब्द क्रमशः आठ[3] बार, सात[4] बार, एक[5] बार और एक[6] बार प्रयुक्त हुए हैं। सभी शब्द विद्वान के समानक हैं।

सुनहु कान दइ यह गुनियारी।[7]

<u>मृगावती– गुना– गुनी :</u>

मृगावती में भी गुणी शब्द दो रूपों में विद्वान के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है। दोनों रूप क्रमशः एक–एक बार मिले हैं तथा दोनों ही विद्वान के भाव का वाचन कर रहे हैं।

अहा एक बुधिवंत जो गुनी।[8]

आरी रे दानि लोना वहु गुनां।[9]

<u>चंदायन– बुधिवंत :</u>

बुधवंत का शुद्ध रूप बुद्धिमान है। बुद्धिमान का साधारण अर्थ अच्छी या प्रखर बुद्धि से युक्त या जिसमें अपेक्ष्या अधिक या विशेष बुद्धि हो। बुद्धि हमारे मस्तिष्क की वह शक्ति है, जिसमें हम सब बातें सोचते समझते हैं, बुराई भलाई का विचार करते हैं, आगे पीछे या ऊँच नीच का ध्यान रखते हैं और इन सब बातों के आधार पर उचित रूप से अपने सब काम करते हैं। इन्हीं तत्वों से युक्त मनुष्य बुद्धिमान कहलाता है। यह विशेषता मनुष्य के परिष्कृत मन और

---

1. चंदायन कड़वक 39–1, 261–1
2. चंदायन कड़वक 261–1
3. चंदायन कड़वक 355–7, 336–3–5–6, 352–5, 356–5, 358–3 359–7
4. चंदायन कड़वक 39–7, 40–3, 149–6, 290–3, 355–1, 422–6, 423–5
5. चंदायन कड़वक 390–1
6. चंदायन कड़वक 360–5
7. चंदायन कड़वक 360–5
8. मृगावती कड़वक 75–3
9. मृगावती कड़वक 13–2

सुन्दर आचरण तथा व्यवहार की भी सूचक है, और बहुत कुछ शिक्षण प्रशिक्षण आदि से भी प्राप्त होती है। जो सब प्रकार की अवस्थाओं, परिस्थितियों, व्यक्तियों, व्यवहारों आदि से भली भाँति परिचित होता है सब बातों और वस्तुओं का ठीक तरह से उपयोग करना जानता है और जिसे बहुत सी बातों का अच्छा ज्ञान और अनुभव होता है, वही बुद्धि मान कहलाता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार विद्वान के अर्थ में हुआ है–

अति नागर बुधिवंत विनानी।[1]

चंदायन– चतुर :

संस्कृत के चतुर शब्द का तत्सम् रूप चतुर है। चतुर शब्द व्यक्ति की कार्यकुशलता और बुद्धिमत्ता का वाचक है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[2] बार प्रयुक्त हुआ है। विद्वान के अर्थ का द्योतक है।

चतुर सुजान भाखा सब जाना।[3]

मृगावती– चतुर :

मृगावती में भी कुतबन ने चतुर शब्द का प्रयोग विद्वान के पर्यायवाची रूप में किया है। सभी स्थलों पर अपने अभिधेयार्थ का वाचन कर रहा है– यह शब्द मृगावती में चार[4] वार प्रयुक्त हुआ है।

हेंगुर खेल बेझ भल मारइ नागर चतरु सुजान।[5]

चंदायन– सयानाँ :

संस्कृत के संज्ञान शब्द का तत्सम रूप हिन्दी में सयाना है। सयाना शब्द बुद्धिमान, चालाक होशियार, कपटी आदि प्रवृत्तियों के व्यक्तियों का द्योतक है। चंदायन में 'सयाना' शब्द बुद्धिमान व्यक्ति का वाचन कर रहा है। सयाना संज्ञा सज्ञान से व्युत्पन्न है।

---

1. चंदायन कड़वक 9–1
2. चंदायन कड़वक 73–7 11–2
3. चंदायन कड़वक 11–2
4. मृगावती कड़वक 7–6 17–7, 65–6, 255–7
5. मृगावती कड़वक 17–7

सयाना उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जायेगा जो व्यक्ति सब बातों की तह तक पहुँच कर और अच्छी तरह सोच समझ कर सब कार्य और निर्णय करता है। इसमें दूरदर्शी होने को भी भाव निहित है।

चंदायन में सयाना शब्द बुद्धिमान के भाव में दो[1] बार मिला है।

सुन साधो तू पंडित सयानाँ।[2]

मृगावती– सयाना, सयाने :

मृगावती में भी बुद्धिमान के पर्याय रूप में सयाना शब्द की आवृत्ति हुई है। कुतबन ने सयाना और सयाने क्रमशः तीन बार[3] और एक[4] बार प्रयुक्त हुए हैं।

तेहि ठाएं नहिं आहि सयाना।[5]

उक्त पंक्ति में सयाना शब्द बुद्धिमान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– विनानी :

विनानी शब्द विज्ञानी प्रतीत होता है और विज्ञानी ज्ञानी से बना है। 'वि' उपसर्ग लगाने पर विज्ञानी बना। ज्ञानी और विवेकशील बहुत कुछ एक वर्ग के शब्द हैं। ज्ञानी वह कहलाता है जो, जानी, समझी और सीधी हुई बातों का ठीक तरह से उपयोग करके उचित निष्कर्ष निकाल सकता हो, और ऐसे निष्कर्ष के आधार पर तब कार्य और विचार कर सकता हो। ऐसे व्यक्ति न तो जल्दी आवेश से ही आता है, न इधर–उधर की सुनी सुनाई बातों पर सहसा विश्वास ही करता है।

चंदायन में विनानी शब्द ज्ञानी के अर्थ में एक बार प्रयोग हुआ है–

सोनी वसहिं सुनार विनानी।[6]

---

1. चंदायन कड़वक 39–1, 68–1
2. मृगावती कड़वक 39–1
3. मृगावती कड़वक 7–2, 9–2, 48–2
4. मृगावती कड़वक 4–5
5. मृगावती कड़वक 48–2
6. चंदायन कड़वक 26–4

✠ चंदायन– पन्थ :

पंथ का अर्थ है, रास्ता, रीति और सम्प्रदाय (जैसे– नानक पंथ)। चंदायन में पंथ रास्ता के अर्थ का वाचक है। दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग दो[1] बार किया है।

गउव सिंह एक पंथ रेगावई ।[2]

मृगावती पंथ :

मृगावती में पंथ शब्द रास्ता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द मृगावती में बीस[3] बार प्रयुक्त हुआ है।

जीवलेई गई कया पै देखिय नैन रहे पंथ जोई ।[4]

चंदायन– वाट :

वाट शब्द का संस्कृत रूप वाट, प्राकृत में वाट, अपभ्रंश में वाट और हिन्दी में वाट है। बाट का अर्थ है रास्ता। चंदायन में वाट शब्द रास्ता के अभिधेयार्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है।

सो महि वाट आइ दि खिराउ ।[5]

मृगावती वाट :

शब्द की व्युत्पत्यक व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में भी 'वाट' शब्द रास्ता के अर्थ में नौ[6] बार आया है।

कंचनपुर कै वाट जो जाना ।[7]

चंदायन– मारग :

मार्ग की व्युत्पत्यक व्याख्या निम्नलिखित है–

संस्कृत में मार्ग, प्राकृत में मारग हिन्दी में मार्ग। इस प्रकार मार्ग तत्सम रूप है। यह शब्द चंदायन में इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है।

मकु लोरक इहै मारग आवई ।[8]

---

1. चदायन कड़वक 9–1, 12–4,
2. चंदायन कड़वक 12–4
3. मृगावती कड़वक 4–7, 5–7, 6–6, 28–7, 32–6, 55–5, 87–5, 113–5, 111–5, 147–4, 154–7, 158–5, 170–7, 174–1, 184–7, 200–7, 290–7, 301–5, 328–4, 335–1
4. मृगावती कड़वक 28–7
5. चंदायन कड़वक 198–4
6. चंदायन कड़वक 6–7, 111–3, 112–4, 118–6, 127–1, 140–2, 177–6, 179–3, 383–1
7. मृगावती कड़वक 112–4
8. चंदायन कड़वक 398–2

मृगावती– मारग :

मृगावती में मारग शब्द अपने अभिधेयार्थ में प्रयुक्त हुआ है। शब्द विकासक्रम उक्त ही है। मारग शब्द कुतबन ने नौ[1] बार अपनाया है–

जोग जुगुति होइ खेला मारग सीस होइ कहँ जाइ।[2]

मृगावती– मग :

संस्कृत में मार्ग प्राकृत में मगा और हिन्दी में मग रूप मिला है। अर्थात 'मग' संस्कृत के मार्ग शब्द का तद्भव रूप है। कुतबन ने मारग, वाट, पंथ के समानार्थी शब्द के रूप में इस शब्द का प्रयोग एक बार मार्ग के साधारण अर्थ में किया है–

मन कामना न पूजी काहुहि मग बहुते गे निरास।[3]

चंदायन– पागा :

पागा शब्द पगडंडी के अर्थ में प्रयुक्त जान पड़ता है। पगडंडी जनभाषा का बहु प्रचलित शब्द है जो रास्ता, मार्ग आदि के अर्थ का बोधक है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में एक किया गया है–

उठे खेह अस सूझ न पागा।[4]

चंदायन– पग :

'पग' शब्द का संस्कृत में पदक, प्राकृत में पऊक और हिन्दी में पग रूप मिलता है। इस प्रकार पग संस्कृत के पदक शब्द का तदभव रूप हुआ। चंदायन में दाऊद ने पैर के साधारण अर्थ में इस शब्द का प्रयोग एक बार किया है–

जनम अस्थान जाइ पग धरा।[5]

---

1. मृगावती कड़वक 32–5, 65–5, 106–6, 201–1, 339–1, 340–2, 371–1, 390–2
2. मृगावती कड़वक 106–6 5
3. मृगावती कड़वक 68–6
4. मृगावती कड़वक 100–6
5. चंदायन कड़वक 233–2

मृगावती– पगु :

पग का ही विकृत रूप हैं। इस शब्द की व्युत्पत्यक स्वरूप की व्याख्या की जा चुकी है। कुतबन ने दाऊद की भॉति पैर के पर्यायवाची रूप में इस शब्द का प्रयोग एक बार किया है–

घाघर बाँधि आइ पगु दीन्हे।[1]

चंदायन– पाउ, पाई, पॉयहिं :

उक्त तीनों शब्द पॉव के विकृत रूप हैं। पॉव शब्द संस्कृत में पाद, प्राकृत में पाय, अपभ्रंश में पाउनी और हिन्दी में पाँव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। चंदायन में इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः दो बार और एक–एक बार हुआ है–

पॉयहि हाथ न पहुँचे, हॅस–हॅस रोवइ राउ।[3]

मृगावती– पाव :

कुतबन ने पाँव शबद को पाव के रूप में प्रयुक्त किया है। पाँव का व्युत्पत्यक विकासक्रम उक्त ही है। मृगावती में पग के पर्याय के रूप में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिला है–

पतुरन्ह अभरन पाएन्हि पाव लही सिर पंग।[4]

चंदायन– पैरें :

चंदायन में पैर शब्द को पैरें के रूप में अपनाया गया है। पैर शब्द संस्कृत के पदतल, का तद्भव रूप है। दाऊद ने पग के समानक के रूप में इस शब्द का प्रयोग एक बार साधारण अर्थ में किया है–

थकैं पैरें लोग चढावइ।[5]

---

1. मृगावती कड़वक 251–2
2. चंदायन कड़वक 45–4, 69–2, 51–7, 92–7,
3. चंदायन कड़वक 92–7
4. मृगावती कड़वक 253–7
5. चंदायन कड़वक 12–2

✠ **मृगावती– परवत :**

कुतबन ने पर्वत शब्द को परवत के रूप में प्रयुक्त किया है। पर्वत का अर्थ है पहाड़, गिरि, आदि। मृगावती में यह शब्द दो[1] बार ग्रहण किया गया है–

ढूँढ़हि पर्वत और पहारा।[2]

मृगावती– गिरि :

गिरि शब्द संस्कृत का रूप है। हिन्दी में इस शब्द को तत्सम रूप में ही ग्रहण कर लिया गया है। मृगावती में गिरि शब्द पहाड़ के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है–

गिरि पर्वत देखिसि तहाँ।[3]

मृगावती पहारा :

पहाड़ शब्द का विकृत रूप है। इस शब्द का रूप संस्कृत में पाषाण प्राकृत में पासाण और हिन्दी में पहाड़ मिलता है। कुतबन ने पहारा शब्द का प्रयोग भी एक[4] ही बार किया है।

✠ **चंदायन– परवारा :**

परिवार का विकृत रूप है परवारा। यह शब्द संस्कृत की वृ धातु में परि उपसर्ग लगाने से बना है। वृ का अर्थ है ढकना और परि का चारों ओर। इस आधार पर परिवार शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है–

परिव्रियतेऽनेन।[5] अर्थात जो व्यक्ति को चारों ओर से घेर ले या व्यक्ति जिससे घिरा रहे वह परिवार है। रामचन्द्र वर्मा ने एक घर में एक कर्ता के अधीन रहने वाले लोगों को परिवार की संज्ञा दी है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक स्थान पर मिला है–

लाख गबानें औ परवारा।[6]

उक्त पंक्ति में परवारा शब्द अपने व्युत्परक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

---

1. मृगावती कड़वक 118–4, 279–2
2. मृगावती कड़वक 279–2
3. मृगावती कड़वक 118–4
4. मृगावती कड़वक 279–2
5. शब्द कल्पप्रभ, हलायुध कोश
6. चंदायन कड़वक 41–6

<u>मृगावती– परिवार :</u>

कुतबन ने परिवार शब्द का प्रयोग शुद्ध रूप में किया है। यह शब्द अपने मूल अर्थ को ही ध्वनित कर रहा है। मृगावती में इस शब्द की आवृत्ति दो[1] बार हुई है–

धन परिवार कुटुम्ब सौं जुग–जुग जीअउ राउ।[2]

<u>चंदायन– कुटुँब :</u>

कुटुँब का शुद्ध रूप कुटुम्ब है। संस्कृत कोशों में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है–

कुटुम्बयते पालयति।[3] अर्थात जिसका पालन किया जाय वह कुटुम्ब है। एक अन्य कोशकार ने तो स्पष्ट कहा है– कुटुम्ब पोण्यवर्गः।[4] हिन्दी कोशों के अनुसार एक ही कुल या परिवार के एक ही घर में मिलकर रहने वाले सभी लोगों का समूह कुटुम्ब है।[5] चंदायन में इस शब्द का प्रयोग कुटुम्ब के साधारण अर्थ में एक बार प्रयोग हुआ है–

जीत बुलाये लोग कुटुँब, जिन्ह सुह एक सत आइ।[6]

<u>मृगावती– कुटंम्ब :</u>

कुटुम्ब शब्द की व्युत्पत्यक व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में कुटुम्ब शब्द का प्रयोग आठ[7] बार हुआ है। सभी स्थलों पर साधारण अर्थ में ही ग्रहण किया गया है–

लोग कुटुंब घर बार तेहि रे लगि विसरा सब सयंसार।[8]

✠ <u>मृगावती– पाँरवी :</u>

पॉरवी का शुद्ध हिन्दी रूप पंखि है। संस्कृत में इसका रूप पक्षिन् प्राकृत में पंखि और हिन्दी में पंखि मिलता है। मृगावती में पंखी शब्द का प्रयोग पक्षी के साधारण अर्थ में ही प्रयुक्त नजर आता है। इस शब्द का प्रयोग मृगावती में दो[9] बार मिला है।

पॉखी दिया जेउ आपुहि दाधा।[10]

---

1. मृगावती कड़वक 16–8, 393–2
2. मृगावती कड़वक 16–8
3. शब्द कल्पद्रुम
4. हलायुद्ध कोश
5. मानक हिन्दी कोश
6. चंदायन कड़वक 41–6
7. चंदायन कड़वक 16–8, 23–7, 82–5, 105–5, 142–2, 341–4, 393–4, 400–7
8. मृगावती कड़वक 23–7
9. मृगावती कड़वक 223–3, 305–4
10. मृगावती कड़वक 223–3

मृगावती– विहंगम :

यह विहग शब्द का विकृत रूप है। संस्कृत और प्राकृत और हिन्दी में यह विहग रूप में मिलता है तथा अपभ्रंश में विहय रूप में। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग पक्षी के पर्यायवाची रूप में एक बार हुआ है।–

जस रे विहंगम पूछत डोरभै।[1]

✠ चंदायन– पिरत :

पिरत शब्द का शुद्ध हिन्दी शब्द प्रीतम है। यह शब्द प्रिय में 'तम' श्रेयस वाची पद लगाकर बनता है। जो तृप्ति कारक है। वह प्रिय है।[2] इस प्रकार यह शब्द किसी भी अतिशय प्रिय व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। किन्तु व्यवहाराधिक्य एवं रूढ़ि के कारण प्रीतम मुख्यतः पति एवं प्रेमी का ही अर्थ देने लगा है।

चंदायन में पिरत शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है।

पिरत पियार भुगुति कस भागु।[3]

मृगावती पिरीतम :

प्रीतम शब्द की व्युत्पत्यक व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में प्रीतम शब्द चार बार[4] साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

कहा पिरीतम पेखिहों दुहुँ लोइनह बिहसंति।[5]

चंदायन– साईं :

साईं का अर्थ है स्वामी। संस्कृत में इसका रूप स्वामिक, पाली में सामिक, प्राकृत में सामि और हिन्दी में साईं है। स्वामी ऐसे सामर्थ्यवान ऐश्वर्ययुक्त व्यक्ति को कहा जाता है जिससे कुछ मांगा जा सके और जो दूसरों की प्रार्थना सुनकर उसकी सहायता को तत्पर हो।

---

1. मृगावती कड़वक 279–4
2. प्री तर्पणे। शब्द कल्पद्रुम
3. चंदायन कड़वक 52–4
4. मृगावती कडवक 113–3, 116–6, 266–5
5. मृगावती कड़वक 116–6

भारतीय संस्कृति में पति को स्त्री का स्वामी तथा रक्षक माना गया है। इसी कारण स्त्रियाँ पति को, स्वामी, प्रभु, नाथ आदि शब्दों से पुकारती हैं–

आगे पूस साईं पथ जोऊँ।[1]

मृगावती– साई :

पति का पर्यायवाची शब्द साईं (स्वामी) कुतबन ने भी ग्रहण किया है। इस शब्द का प्रयोग एक स्थल पर पति के साधारण अर्थ में हुआ है।

चंदायन– सजन :

इस शब्द का संस्कृत रूप स्वजन, प्राकृत में सज्जण और हिन्दी में तद्भव रूप सजन है। चंदायन में सजन शब्द का प्रयोग पति के पर्याय के रूप में एक[2] बार किया है–

धनि सो रात जिहिं सजन वुलाहैं।[3]

मृगावती– सुजन :

'सजन' सुजन शब्द के रूप मृगावती में भी पति के अर्थ में एक बार आया है–

को आनै हनिवंत बीर जेउँ, सुजन सजीवनि मूरि।[4]

चंदायन पी, पिउ, पिया, पिय :

उक्त चारों शब्द संस्कृत संस्कृत के 'प्रिय' शब्द से ने है। 'प्रिया' का प्राकृत रूप 'पिय' अपभ्रंश पिऊ तथा हिन्दी में इसका तद्भव रूप 'पिअ' है। यह शब्द लोक जीवन में सर्वाधिक ग्राह्य रहा है और लोकगीतों में तो प्रयोगाधिक्य और प्रभावाधिक्य में यह अपना सानी नहीं रखता। चंदायन में उक्त चारों शब्द क्रमशः एक बार, तीन बार और एक–एक बार[5] प्रयुक्त हुआ है।

उठ के पिया सखि सेज विछावई।[6]

---

1. मृगावती कड़वक 407–1
2. मृगावती कड़वक 254–7,
3. चंदायन कड़वक 198–5
4. मृगावती कड़वक 277–7
5. चंदायन कड़वक 45–4, 53–2, 54–4, 55–1, 54–2, 54–3
6. चंदायन 54–2

मृगावती– पिय, पीउ :

मृगावती में कुतबन ने 'पिऊ' शब्द का प्रयोग पिय और पिउ रूपों में किया है। दोनों शब्द क्रमशः बारह[1] बार और दो बार[2] प्रयुक्त हुआ है–

पिय संवरहु पावस रितु आई।[3]

चंदायन– कन्त :

कंत शब्द का संस्कृत रूप 'कान्त' पाली कंत, प्राकृत कंत और हिन्दी में तद्भव रूप कंत है। व्युत्पत्यक अर्थानुसार जिसकी कामना की जाय वह कांत है।[4] यह शब्द आत्मीयता, समीपता और धनिष्ठता का सूचक है।

चंदायन में यह शब्द अपने व्युत्पत्ति परक अर्थ में दो[5] बार प्रयुक्त हुआ है।

सैर सुपोती कंत बिनु, विल इक थाम न जाई।[6]

मृगावती– कन्त :

मृगावती में भी 'प्रीतम' के पर्यायवाची शब्द के रूप में कंत शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

पेडिहि छाड़ि कंत हम गया।[7]

चंदायन– भतार :

भतार शब्द का संस्कृत रूप भर्त्त और उसके तद्भव रूप हिन्दी में 'भतार' मिल है। 'भतार' पति का पर्यायवाची शब्द है। पालन पोषण करने एवं धारण करने वाले व्यक्ति को भतार कहते हैं।[8] चंदायन में यह शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है–

लेके मोर भतार छिपाई।[9]

---

1. मृगावती कड़वक 225–4, 238–1, 302–2, 303–6, 318–3, 319–3, 320–4, 328–2, 343–7, 347–4, 361–5, 374–3
2. मृगावती कड़वक 241–7, 277–4
3. मृगावती कड़वक 328–2
4. काम्यते इति कान्तः। शब्द कल्पद्रुम
5. चंदायन कड़वक 54–2, 54–7
6. चंदायन कड़वक 54–2
7. मृगावती कड़वक 303–1
8. विभर्ति पुस्णाति, पालयति, धारयतीति वा। शब्दकल्पद्रुम
9. चंदायन कड़वक 261–5

चंदायन नाह :

यह नाथ का ही अपभ्रंश रूप है। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से यह नाथ से भिन्न नहीं है। चंदायन में इसका प्रयोग एक बार हुआ है।[1]

मृगावती– पति :

पति शब्द की मूल धातु 'पा' है। जिसका अर्थ है रक्षा करना। इस प्रकार रक्षा करने वाला व्यक्ति पति कहलाता। किन्तु सामान्य व्यवहार में रूढ़ हो जाने के कारण अब यह शब्द विधिवत पाणिग्रहण करने वाले पुरूष के लिए ही प्रयुक्त होता है। मृगावती में इसका प्रयोग छैः बार[2] हुआ है।

✠ चंदायन– पुरिस, पुरूख :

पुरिस और पुरूख शब्द 'पुरूष' शब्द के ही विकृत रूप हैं। संस्कृत का 'पुरूष' शब्द अपने तत्सम रूप में ही हिन्दी में प्रयुक्त होता है। 'पुरूष' शब्द व्यक्ति, पति जीव और विस्णु के अर्थो का भी वाचक है। चंदायन में उक्त दोनों शब्द व्यक्ति के अर्थ में क्रमशः दो बार[3] और छैः बार[4] प्रयुक्त हुए हैं।

मृगावती– पुरूष, पुरिख :

मृगावती में भी उक्त दोनों शब्द 'व्यक्ति' के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। मृगावती में यह दोनों शब्द क्रमशः तीन[5] बार और एक[6] बार प्रयोग किए गये हैं।

चंदायन– लोग :

इस शब्द का संस्कृत और पाली में 'लोक' प्राकृत में लोअ और हिन्दी में संस्कृत का तद्भव रूप लोग मिलता है। लोग जनभाषा का सबसे अधिक प्रचलित शब्द है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति छैः[7] बार हुई है।

---

1. चंदायन कड़वक 443–3
2. मृगावती कड़वक 26–4, 137–5, 206–1, 214–6, 258–4, 347–2
3. चंदायन कड़वक 24–1, 25–2
4. चंदायन कड़वक 6–1, 20–3, 20–6, 39–4, 47–2, 47–3
5. मृगावती कड़वक–88–3, 179–6, 420–1
6. मृगावती कड़वक 378–3
7. चंदायन कड़वक 12–2, 26–4, 28–6, 38–6

मृगावती– लोग :

कुतबन भी सूफी कवि होते हुए भी जनकवि पहले थे। उन्होंने भी दाऊद की तरह जनवाणी में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। आदमी के अर्थ में ही मृगावती में लोग शब्द की आवृत्ति पाँच[1] बार हुई है।

चंदायन– मानुस :

चंदायन में प्रयुक्त मानुस शब्द संस्कृत में मनुज प्राकृत में मणुअ और हिन्दी में तद्भव रूप मनुष्य रूप में मिलता है। मनुष्य भी लोग और पुरूष की भांति आदमी का पर्यायवाची है। चंदायन में इसकी आवृत्ति तीन[2] बार हुई है।

मृगावती– मानुस, मनुसे :

मृगावती में भी इस शब्द का प्रयोग उक्त दो रूपों में मिलता है। दोनों ही मृगावती में क्रमशः दो[3] बार और चार[4] बार प्रयुक्त हुए हैं।

चंदायन– नर :

नर शब्द आदमी का पर्यायवाची है। इस शब्द की आवृत्ति चंदायन में दो[5] बार हुई है।

मृगावती– जन :

जन का अर्थ भी मनुष्य है यह शब्द भी कुतबन ने पुरूष के पर्याय के रूप में ग्रहण किया है। इसका प्रयोग मृगावती में दो बार[6] हुआ है।

दोई जन आई जोहारी कहा।[7]

✠ चंदायन– पूत :

यह पुत्र का अपभ्रंश रूप है। पुत्र जहाँ साहित्यिक भाषा का शब्द है। वहाँ पूत का प्रयोग लोक भाषा में ही देखा जा सकता है। चंदायन में यह शब्द दो[8] बार प्रयुक्त हुआ है।

---

1. मृगावती कड़वक 20–7, 23–7, 142–2, 109–2, 361–3
2. चंदायन कड़वक 26–7, 29–1, 43–5
3. मृगावती कड़वक 31–7, 154–4
4. मृगावती कड़वक 44–3, 118–5, 30–2, 45–2
5. चंदायन कड़वक 33–7, 262–6
6. मृगावती कड़वक 113–1, 118–4
7. मृगावती कड़वक 118–4
8. चंदायन कड़वक 17–5, 51–4

मृगावती– पूत :

मृगावती में कुतबन ने भी पुत्र के स्थान पर पूत का जन साधारण द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाला शब्द पूत का ही प्रयोग किया है। यह शब्द पाँच[1] बार प्रयोग हुआ है।

चंदायन बार :

यह शब्द संस्कृत के 'बाल' का अपभ्रंश रूप है। यह शब्द लोक जीवन का बहुत जाना पहचाना और बहुप्रयुक्त शब्द है। काव्य में इस शब्द के प्रयोग का अधिक्य है। यद्यपि बाल शब्द में किसी भी बालक का भाव भी निहित है, परन्तु चंदायन में दाऊद ने पुत्र के अर्थ में ही प्रयोग किया है। चंदायन में 'बार' शब्द का प्रयोग एक बार[2] हुआ है।

मृगावती– बारा :

कुतबन में 'बाल' शब्द का प्रयोग बारा के रूप में किया है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग मात्र एक[3] स्थल पर पुत्र के अर्थ में निहित है।

✠ चंदायन– पोखर :

इस शब्द का संस्कृत रूप पुष्करिणी प्राकृत पोक्खरिणी और हिन्दी का तद्भव रूप पोखर है। पुस्करिणी का अर्थ है कमल फूलों से भरा हुआ जलाशय। चंदायन में पोखर शब्द अपने व्युत्पत्यक अर्थ में दो[4] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– सरवर :

सरवर का शुद्ध रूप हिन्दी में सरोवर है। सरोवर तालाब के आशय में चंदायन मे दो[5] बार प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– सरवर :

मृगावती में सरवर शब्द पाँच[6] बार आया है।

---

1. मृगावती कड़वक 13–5, 13–7, 15–1, 15–2, 161–7
2. चंदायन कड़वक 164–2
3. मृगावती कड़वक 420–5
4. चंदायन कड़वक 20–1, 102–4
5. चंदायन कड़वक 21–1, 21–7
6. मृगावती कड़वक 42–7, 77–9, 21–7, 133–3, 188–6

चंदायन– जलहर :

जलहर का प्रयोग चंदायन में सरोबर के पर्याय के रूप में हुआ है। इस शब्द का प्रयोग एक[1] स्थल पर मिलता है।

मृगावती– जलहर :

कुतबन ने भी जलहर का प्रयोग जलाशय के अर्थ में किया है। इस शब्द की आवृत्ति दो[2] बार हुई है।

मृगावती– सलिलासए :

मृगावती में सरोवर को सलिलासए भी कहा गया है। सलिलासए का हिन्दी रूप सलिलाशय है। इसका प्रयोग एक बार हुआ है।

सलिलासए सरग गै भए।[3]

✠ चंदायन– फूल :

फूल शब्द का संस्कृत रूप 'फुल्ल' पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में भी फुल्ल रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी में संस्कृत का तद्भव रूप फुल है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति चार[4] बार हुई है।

मृगावती फूल :

मृगावती में भी फूल शब्द का प्रयोग किया गया है इसकी आवृत्ति मृगावती में सात[5] बार हुई है।

चंदायन– पुहुप :

पुहुप शब्द फूल का पर्यायवाची है। चंदायन में इसका प्रयोग फूल के साधारण अर्थ में दो[6] बार हुआ है।

---

1. चंदायन कड़वक 22–5
2. मृगावती कड़वक 39–1, 329–3
3. मृगावती कड़वक 23–3
4. चंदायन कड़वक 28–1, 35–2, 56–3, 68–5
5. मृगावती कड़वक 59–5, 203–2, 27–3, 82–5, 124–1, 202–3, 203–5
6. चंदायन कड़वक 86–2, 93–4,

मृगावती– पुहुप :

कुतबन ने भी अपनी कृति मृगावती में पुहुप शब्द का प्रयोग दो[1] बार हुआ है।

चंदायन– कुसुम :

कुमम का अर्थ है फूल यह शब्द भी पुहुप फूल के पर्यायवाची शब्द के रूप में चंदायन में एक[2] बार ग्रहण किया गया है।

✠ चंदायन फौज :

फौज का अर्थ है सेना। फौज अरबी भाषा का शब्द है। हिन्दी में विदेशज होते हुए भी जनसाधारण का प्रिय शब्द है। इस शब्द की आवृत्ति चंदायन में एक बार हुई है।

अकछत फौज चले असवारा।[3]

चंदायन– कटकारा, कटक :

कटक का प्रयोग सेना के अर्थ का द्योतक है। चंदायन में फौज के पर्यायवाची के रूप में साधारण अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः एक–एक[4] बार किया है।

चंदायन– धानुक :

धानुक का अर्थ है धनुषधारी अर्थात धनुष धारण करने वाले। धानुक का शाब्दिक अर्थ है धनुष वाण धारण करने वाली फौज। फौज में और धानुक में यह अर्थ भेद है कि फौज को सैनिक कोई भी अस्त्र–शस्त्र धारण किए हो सकते हैं, परन्तु धानुक शब्द से ध्वनित होता है कि यह निश्चित रूप से मात्र धनुष धारण करने वाली सेना है। इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

सौ– सौ धानुक एक–एक चढ़े।[5]

---

1. मृगावती कड़वक 71–4, 204–4
2. चंदायन कड़वक 276–2
3. चंदायन कड़वक 100–2
4. चंदायन कड़वक 97–2, 104–1
5. चंदायन कड़वक 115–1

✠ चंदायन– बरद :

संस्कृत के 'बृषभ' शब्द का तद्भव रूप बरद है। वरद का अर्थ है बैल चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[1] बार बैल के साधारण अर्थ में हुआ है।

चंदायन– बैल :

बृषम का लोक वाणी द्वारा सर्वाधिक प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है। चंदायन में बरद के पर्याय शब्द के रूप में एक[2] बार प्रयुक्त हुआ है।

✠ चंदायन– बादर :

बादल का संस्कृत रूप वारिद, पाली वादिर प्राकृत में बादिल और हिन्दी में बादल है। चंदायन में बादर शब्द का प्रयोग एक[3] बार मिला है।

चंदायन मेघ :

मेघ शब्द का संस्कृत में मेघ, पाली में मेध, प्राकृत में मेह और हिन्दी में तत्सम् रूप में ही मेध रूप मिलता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग तीन[4] बार प्रयुक्त हुआ नजर आता है। मेघ शब्द बादल का पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– घन :

घन का अर्थ है बादल। बादलों के घनघोर घटाओं वाले रूप को घन संज्ञा दी गयी है। साधारण बादल को घन नहीं कहा जा सकता है। यही घन और बादल के अन्य रूपों में अर्थ भेद है। चंदायन में घन शब्द का प्रयोग एक[5] बार हुआ है।

✠ चंदायन– बापहिं :

बापहिं शब्द का शुद्ध रूप बाप है। वाप का अर्थ है पिता, जनक। इस शब्द का संस्कृत रूप वप्तृ प्राकृत रूप बप्प, अपभ्रंश में बप्पो और हिन्दी रूप बाप हैं। चंदायन में इस

---

1. चंदायन कड़वक 400–6, 430–6,
2. चंदायन कड़वक 414--2
3. चंदायन कड़वक 280–4
4. चंदायन कड़वक 1–5, 99–2, 97–1
5. चंदायन कड़वक 48–6

शब्द का प्रयोग एक बार आया है–

बापहिं पूत न कोउ संभारा।[1]

मृगावती– बाप :

कुतबन ने मृगावती में भी इस जनवाणी के शब्द को अपनाया है। उन्होंने बाप शब्द का प्रयोग मृगावती में एक[2] स्थल पर किया है।

चंदायन– पित, पीता :

पित और पीता शब्द पिता के विकृत रूप हैं। पिता का संस्कृत में पितृ, पाली में पितु और हिन्दी में पिता रूप मिलता है। चंदायन में पिता के यह दोनों रूप क्रमशः एक–एक बार[3] प्रयुक्त हुए हैं।

मृगावती– पिता :

कुतबन ने बाप का पर्यायवाची पिता शब्द साधारण अर्थ में सोलह4 बार ग्रहण किया है। सभी स्थलों पर पिता के अभिधेयार्थ का वाचन कर रहा हैं

✠ **चंदायन– विस :**

विष का संस्कृत रूप विष, प्राकृत में विस और हिन्दी में विष है। विष का अर्थ है जहर। चंदायन में यह शब्द दो[5] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– माहुर :

माहुर का अर्थ है विष, जहर। इस शब्द का प्राकृत रूप माहुर और हिन्दी रूप भी माहुर है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

अमरित जेवँत माहुर भयो।[6]

---

1. चंदायन कड़वक 103–1
2. मृगावती कड़वक 420–5
3. चंदायन कड़वक 182–1, 150–3
4. मृगावती कड़वक 33–6, 43–2, 48–1, 82–5, 89–1, 94–5, 98–5, 105–5 129–5, 132–3, 134–6, 142–5, 341–1, 342–1, 349–2, 408–7
5. चंदायन कड़वक 109–2, 194–2
6. चंदायन कड़वक 163–4

✠ चंदायन– भँवरा :

भँवरा का शुद्ध रूप भॅवर है। भॅवर का संस्कृत रूप भ्रमर, पाली, प्राकृत रूप भमर और हिन्दी में भॅवर है। चक्कर लगा–लगाकर घूमने की प्रवृत्ति के कारण इस कीट का नाम भॅवर पड़ा है। चंदायन में अपने व्युत्पत्ति परक अर्थ में एक[1] बार प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– भॅवर :

मृगावती में भी कुतबन ने दाऊद की भांति भॅवर शब्द का प्रयोग किया है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग मात्र एक बार हुआ है–

कंवल पत्र पर भंवर संवारे।[2]

चंदायन– मधुपिया :

भॅवर का दूसरा नाम मधुप है। संस्कृत रूप मधुर और पाली रूप भी मधुर है। फूलों के मकरंद को पीने के कारण भ्रमर को मधुप संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है।[3] भॅवरा मधुप का समानार्थी है परन्तु दोनों की अर्थच्छाया भिन्न है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग मूल अर्थ में एक[4] बार हुआ है।

मृगावती– खटपद :

भ्रमर को षठ्पद भी कहा जाता है। चूंकि भ्रमर के छः पैर होते हैं इसलिए इसका नाम षठ्पद बना। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

कै खटपद वाहन वैसावा।[5]

✠ चंदायन– भाई :

किसी के माता–पिता का दूसरा पुत्र भाई या बन्धु कहलाता है। भाई शब्द का संस्कृत रूप भ्रातृ, पाली में भाता, अपभ्रंश में भाई और हिन्दी में भाई।

---

1. चंदायन कड़वक 93–5
2. मृगावती कड़वक 55–1
3. मधु पिबतीति। शब्द कल्पद्रुम
4. चंदायन कड़वक 79–3
5. मृगावती कड़वक 58–3

चंदायन में भाई शब्द एक स्थल पर भाई के साधारण अर्थ में एक[1] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन बन्धु :

बन्धु भाई का समानक है, परन्तु अर्थच्छाया दोनों की भिन्न है। भाई सहोदर को कहा जायेगा, जबकि बधु किसी भी सम्बंधी को कहा जा सकता है। चंदायन में बंधु शब्द सगे सम्बंधियों के अर्थ का वाचन करता हुआ एक बार[2] प्रयुक्त हुआ है।

✠ **मृगावती– भेष :**

भेष का अर्थ है, पहनावा या वेशभूषा मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[3] बार साधारण अर्थ में हुआ है।

मृगावती– चोला :

यह शब्द भेष का पर्यायवाची है। चोला का भी अर्थ वेशभूष होता है। जनभाषा में चोला शरीर को भी कहा जाता है। मृगावती में चोला शब्द भी एक ही बार साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

राता चीर पहिरिहहु चोला।[4]

उक्त पंक्ति में चोला का अर्थ वेशभूषा से है।

✠ **चंदायन– मढि :**

हिन्दी शब्द मढ़िया, मढ़ी है। इसका संस्कृत रूप मठिक और प्राकृत में मढिआ है। मढ़िया मंदिर का छोटा रूप है। मढ़िया में भी देवी देवता रहते हैं और मंदिर में भी। मढि और मंदिर में छोटे बड़े का अर्थ भेद दृष्टिपथ में आता है। चंदायन में मढ़ि शब्द का प्रयांग एक[5] बार मिला है–

---

1. चंदायन कड़वक 82–1
2. चंदायन कड़वक 327–7
3. मृगावती कड़वक 349–7
4. मृगावती कड़वक 365–4
5. चंदायन कड़वक 188–1

चंदायन– मंदिर :

मंदिर का अर्थ है पूजा स्थल अथवा देवालय। मंदिर का संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश सभी भाषाओं में मंदिर रूप ही मिलता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार[1] मिला है–

✠ चंदायन– माता :

माता का संस्कृत रूप मातृ, प्राकृत में माअरा, जर्मन में मुटर, लातिन में मातेर, रूसी में माची, अंग्रेजी में मदर, फ्रांस में मादर, सोनिस में मादरे, अवेस्ता में मातूर और वाल्गा में माइका रूप मिलता है। चंदायन में माता शब्द का प्रयोग एक[2] बार हुआ है।

मृगावती– माता :

मृगावती में माता शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है। माता के साधारण अर्थ का वाची है।

माता पिता कुटुंब सयं सारा।[3]

चंदायन– माई :

माई शब्द संस्कृत में मातृ, प्राकृत में माई रूप में मिला है। माई शब्द माता के ही भाव क वाचक है। चंदायन में माई शबद तीन[4] बार प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– माई :

मृगावती में कुतबन ने भी माई शब्द का प्रयोग एक बार किया है।

सासुन होहु माई तुम्ह मोरी।[5]

उक्त शब्द माँ के भाव का वाचक है।

---

1. चंदायन कड़वक 188–1
2. चंदायन कड़वक 182–1
3. मृगावती कड़वक 82–5
4. चंदायन कड़वक 241–1, 427–7, 432–4
5. मृगावती कड़वक 403–1

चंदायन– जननि :

जननी शब्द का ही बदला रूप जननि है। जननी का अर्थ है जन्म देने वाली। माँ के इस गुण के कारण ही उसे जननी कहा गया है। चंदायन में यह शब्द जननी के व्युत्पत्यक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

कौन जननि जरमेउँ अस बारा।[1]

मृगावती– जननि, जननी :

मृगावती में दोनों शब्द माता के पर्यायवाची शब्द के रूप में तथा अपने व्युतपत्यक अर्थ में क्रमशः तीन[2] बार और दो[3] बार प्रयुक्त हुए हैं।

✠ **मृगावती– मीत :**

मीत शब्द मित्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मित्र शब्द का संस्कृत रूप मित्र। पाली, प्राकृत, अपभ्रंश में मिन्त और हिन्दी में संस्कृत का तद्भव रूप मीत मिलता है। मृगावती में मीत का प्रयोग साथी, सहृदय के रूप में तीन[4] बार मिला है।

मृगावती– साथी :

साथ रहने वाला, दोस्त, मित्र आदि अर्थो की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। साथी का संस्कृत रूप सार्थिक, प्राकृत सत्थिय तथा हिन्दी रूप साथी मिलता है। मृगावती में साथी शब्द साथ रहने के अर्थ में दो[5] बार प्रयुक्त हुआ है–

गरजि झकोर कहाँ पिउ साथी।[6]

मृगावती– संघाता :

संधाता शब्द मित्र एवं साथी के अर्थ का वाचक है। डा0 माता प्रसाद गुप्त ने संघाता का अर्थ साथी, सहेली माना है[7] मृगावती में संघाता शब्द का प्रयोग तीन वार हुआ है।

---

1. चंदायन कड़वक 177–4
2. मृगावती कड़वक 136–4, 386–1, 400–4
3. मृगावती कड़वक 141–7, 392–5
4. चंदायन कड़वक 48–1, 173–3, 173–7
5. मृगावती कड़वक 48–1, 319–3,
6. मृगावती कड़वक 319–3
7. चंदायन पृष्ठ 159

आवइ देहु हमार संघाता।[1]

उक्त कड़वक में संघात, शब्द मृगावती की सहेलियों के लिए अर्थात साथी के स्त्री रूप में प्रयुक्त हुआ है।

✠ **मृगावती– रंक :**

रंक शब्द मृगावती में भिखारी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका संस्कृत रूप रङ्क हैं। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार भिखारी के साधारण अर्थ के वाचन हेतु हुआ है।

रोवइं चेतन चेतइ दब्ब गएं जिमि रंक।[2]

मृगावती– दारिद :

दारिद शब्द संस्कृत के दारिद्रय शब्द के भाव का वाचक है। इसका प्राकृत रूप दारिद्द और हिन्दी में तद्भव रूप दरिद्र हैं मृगावती में इस शब्द को कुतबन ने एक[3] बार प्रयोग किया है।

✠ **चंदायन– सखी :**

इसका संस्कृत रूप सखी है। सखी शब्द सहेली का पर्यायवाची शब्द है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग चार बार सखी के साधारण अर्थ में हुआ है।

मृगावती– सखी : मृगावती में यह शब्द बहुलता में प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रयोग गयारह[5] बार हुआ है।

चंदायन– सहेलिन (सहेली) :

इस शब्द का संस्कृत रूप सखी, प्राकृत रूप सहेली और हिन्दी में भी सहेली रूप मिलता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[6] बार मिला है।

चाँद सहेलिन पूँछ रस, धौरहरॉ लाइ।[7]

मृगावती– सहेली : मृगावती में सहेली शब्द नौ[8] बार आया है।

---

1. मृगावती कड़वक
2. मृगावती कड़वक 26–7
3. मृगावती कड़वक 14–1
4. चंदायन कड़वक 52–3, 54–1, 56–4, 54–2
5. मृगावती कड़वक 82–1, 83–5, 188–1–2, 254–5, 158–1, 159–2, 275–5, 346–4, 346–5, 353–1, 368–5
6. चंदायन कड़वक 52–3, 52–6
7. चंदायन कड़वक 52–3
8. मृगावती कड़वक 188–1, 188–7, 200–6, 221–3, 254–2, 275–5, 278–2, 246–6, 353–5

✠ चंदायन– सागर :

समुद्र के पर्यायवाची शब्द के रूप में सागर शब्द का प्रयोग चंदायन में दो[1] बार मिला है। सागर संस्कृत का तत्सम रूप है। प्राकृत में सागर का रूप बदला हुआ है। यहाँ पर उसका रूप 'सागर' है।

मृगावती– सागर, सायर :

कुतबन ने मृगावती में 'सागर' शब्द को संस्कृत के तत्सम् रूप में और प्राकृत के सायर रूप दोनों का ही क्रमशः दो बार और एक[2] बार प्रयोग किया है।

चंदायन क0– समुंद (समुद्र) :

समुंद का संस्कृत रूप समुद्र है। पाली और प्राकृत में इसका रूप बदल कर 'समुद्द' हो गया। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग सागर के पर्यायवाची शब्द के रूप में एक बार[3] प्रयुक्त हुआ दृष्टिपथ में आया है।

मृगावती क0– समुंद (समुद्र) :

कुतबन ने भी सागर के पर्यायवाची शब्द के रूप में समुंद शब्द का प्रयोग दस[4] बार किया है।

✠ चंदायन– सिर :

सिर शब्द का संस्कृत रूप शिरिस्, प्राकृत रूप सिर और उर्दू रूप भी सिर। हिन्दी में तद्भव रूप सिर जनभाषा द्वारा प्रयुक्त रूप है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग पांच[5] बार मिला है।

मृगावती सिर :

मृगावती में भी सिर का प्रयोग कुतबन द्वारा शीश के रूप में किया गया है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग सात[6] बार किया गया है।

---

1. चंदायन कड़वक 79–4, 79–5
2. मृगावती कड़वक 23–3, 144–5, 32–7
3. चंदायन कड़वक 115–4
4. मृगावती कड़वक 55–3, 57–5, 74–4, 90–6, 116–3, 143–4, 158–4 192–2, 290–1, 300–1
5. चंदायन कड़वक 13–3, 13–5, 27–5, 75–2, 432–7
6. मृगावती कड़वक 26–4, 35–5, 67–5, 238–3, 267–5, 350–3, 394–6

चंदायन– सीस :

इस शब्द का संस्कृत रूप शीर्ष है। प्राकृत में सीस ओर हिन्दी में तद्भव रूप सीस है। शरीर के सबसे ऊँचे अंग के कारण ही इसका शीश पर्याय शब्द बना। इसका प्रयोग चंदायन में एक[1] बार मिला है।

मृगावती– शीश :

मृगावती में यह शब्द तद्भव रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रयोग कुतबन ने मृगावती में आठ[2] बार किया है।

चंदायन– मूड़ :

सिर का पर्यायवाची शब्द है। इसका संस्कृत रूप मुण्ड, प्राकृत रूप मुंड और हिन्दी रूप मूँड़ है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[3] बार मिला है।

✠ चंदायन– सुखासन :

सुखासन शब्द संस्कृत के सुख शब्द से बना है। सुख का अर्थ है आराम और आसन का अर्थ है बैठना अर्थात आराम से बैठना। सुखासन से यही भाव ध्वनित होता है। सुखासन पालकी के पर्यायवाची शब्द के रूप में चंदायन में दो[4] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– पालकी :

पालकी भी सुखासन की तरह आराम देने वाली सवारी है। पालकी पिछले सतक में रानियों राजा महाराजाओं और समाज के प्रतिष्ठित लोगों की एक स्थल से दूसरे स्थल तक जाने की सवारी थी। यह सवारी गरीब लोगों के कंधों पर सवार होकर चलती थी। चंदायन में पालकी शब्द का संस्कृत रूप पर्यक्ङ्िका है। और प्राकृत में पल्लकिया। यही शब्द हिन्दी तक आते–आते तद्भव रूप में पालकी बन गया। चंदायन इस शब्द का प्रयोग एक[5] बार मिलता है।

---

1. चंदायन कड़वक 75–3
2. मृगावती कड़वक 65–6, 128–6, 194–7, 243–3, 252–4, 253–5, 330–6, 421–3
3. चंदायन कड़वक 107–2, 244–2
4. चंदायन कड़वक 51–4, 51–6
5. चंदायन कड़वक 255–1

चंदायन– डांडी :

सुखासन और पालकी का पर्यायवाची शब्द डांडी भी चंदायन में प्राप्त होता है। लकड़ी के डंडों से बनी होने के कारण पालकी का नाम डांडी पड़ा, ऐसा डांडी शब्द की ध्वनि से प्रतीत होता है। डा० परमेश्वरी दयाल गुप्त ने डांडी को पालकी का समानक माना है।[1] चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है–

डांडी कै लोरक चाँद चलाई।[2]

चंदायन– सुहागिन :

सुहागिन का संस्कृत रूप सौभाग्यवती है। हिन्दी में इसका तद्‌भव रूप 'सुहागिन' है। जो 'सुहाग' शब्द से बना है। पाली में सौभाग्य का सोभग्ग रूप और प्राकृत में सोहग्ग रूप मिलता है। सुहागिन उसे कहा गया है जिसका पति है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो बार[3] हुआ है।

तैसों रॉड़ सुहागिन नॉऊँ।[4]

चंदायन– पतिवाँति :

पतिवाँति का प्रयोग भी जनभाषा में सुहागिन के अर्थ में किया जाता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग सौभाग्यवती स्त्री के अर्थ में एक बार हुआ है।

पतिवॉती निसि सेज दुहेली।[5]

चंदायन– पियावारी :

जिसका पति साथ में हो वह पियावारी है। इस शब्द का प्रयोग भी सुहागिन के ही अर्थ में हुआ है।

'पियावारी' शब्द चंदायन में एक ही बार आया है–

तैं का देख हों पियावारी।[6]

---

1. चंदायन पृष्ठ– 287
2. चंदायन कड़वक 361–4
3. चंदाय कड़वक 46–5, 52–4,
4. चंदाय कड़वक 46–5
5. चंदायन कड़वक 46–2
6. चंदायन कड़वक 258–5

✠ चंदायन– हाथ :

'हाथ' 'हस्त' शब्द का तद्भव रूप है। इस शब्द की विशेषता यह है कि सामान्य प्रचलित शब्द के अर्थ का द्योतन करने के साथ–साथ हाथ संबंधी मुहावरों में भी इसी का प्रयोग मिलता है अन्य पर्यायों का नहीं जैसे हाथ मलते रह जाना, हाथ में लड्डू आना आदि। चंदायन में हाथ शब्द की आवृत्ति तीन[1] बार साधारण अर्थ में हुई है।

मृगावती– हाथ, हाथा :

मृगावती में भी हाथ शब्द दो रूपों में प्रयुक्त हुआ है। ये दोनों शब्द मृगावती में क्रमशः सात[2] बार और तीन[3] बार प्रयुक्त हुए हैं।

चंदायन– कर :

कर शब्द हाथ के अर्थ का द्योतक है और मसीन का भी। चंदायन में यह शब्द हाथ के अर्थ का व्यंजक है। चंदायन में यह शब्द एक[4] ही बार प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती कर :

कर शब्द हाथ के अर्थ में मृगावती में भी ग्रहण किया गया है। इस शब्द की आवृत्ति छैः[5] बार हुई है।

चंदायन– पानि :

संस्कृत के पणि शब्द का विकृत रूप है। व्युत्पत्यक अर्थ के अनुसार पणि दैनिक क्रिया कलाप सम्पन्न करने में महत्वपूर्ण अंग है।[6] कलाई से लेकर अँगुलियों तक का सम्पूर्ण भाग पाणि कहलाता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[7] बार साधारण अर्थ में मिला है।

मृगावती– पानि :

मृगावती में भी पानि शब्द हाथ के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वे इस शब्द की ग्यारह[8] बार आवृत्ति हुई है।

---

1. चंदायन कड़वक 25–2, 27–5, 68–2
2. मृगावती कड़वक 67–2, 139–6, 153–2, 157–1, 229–7, 266–2, 376–4,
3. मृगावती कड़वक 20–4, 275–3, 377–1
4. चंदायन कड़वक 54–2
5. मृगावती कड़वक 13–7, 64–4, 103–3, 69–1, 276–1, 373–1
6. पणायनते व्यवहरन्त्यनेन। शब्द कल्पद्रुम
7. चंदायन कड़वक 281–5
8. मृगावती कड़वक 48–2, 153–5, 205–2, 277–3, 278–4, 283–3, 243–4, 273–1, 383–3, 373–1, 482–7

(ख) व्यक्ति वाचक संज्ञा पर्याय :

सामान्यतः व्यक्तिवाचक संज्ञाएं वक्तृयछच्छा–सन्निवेशित होती हैं। अर्थात् वक्ता अपनी इच्छानुसार व्यक्ति को मनचाहा नाम दे सकता है, चाहे वह व्यक्ति विशेष के अनुरूप हो अथवा नहीं। जैसे– अन्यंत दुबले पतले व्यक्ति का नाम 'भीमसेन' हो सकता है और असुन्दर नारी अभिधान 'रूपरानी'। इसी प्रकार वक्र दृष्टि वाली 'सुनयना' हो सकती है और शेरसिंह डरपोक एवं कायर। लेकिन कुछ संज्ञायें यथानान तथा गुण को चरितार्थ करती हैं। अर्थात कुछ व्यक्तियों में उनके नाम के अनुरूप ही गुण देखे जा सकते हैं। जैसे– विद्यावती सचमुच विद्या का आगार हो सकती है और धनवत्ती अतुल सम्पत्ति की स्वामिनी। बहुत से व्यक्तिवाची नाम निश्चित आधार पर दिये जाते हैं। जैसे– मंगलवार को उत्पन्न होने वाला मंगल सिंह और रविवार को पैदा होने वाला राविकान्त। कभी–कभी कोई विशिष्ट घटना भी किसी व्यक्ति के नाम का आधार हो सकती है।

व्यक्तिवाची संज्ञा को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं, जिस शब्द से किसी एक वस्तु या व्यक्ति का बोध हो उसे व्यक्तिवाची संज्ञा कहते हैं। जैसे– राम, गंगा, काशी आदि। राम कहने से एक व्यक्ति का, गंगा कहने से एक नदी का और काशी कहने से एक नगर का स्पष्ट बोध होता है। व्यक्तिवाची संज्ञाएं जातिवाचक संज्ञाओं से कम है।

व्यक्तिवाचक संज्ञाएं निम्नलिखित रूपों में परिगणित होती हैं–

1. व्यक्तियों के नाम – सुरेश, दिनेश आदि
2. दिशाओं के नाम – उत्तर, पश्चिन आदि
3. देशों के नाम – भारत, जापान आदि

4. राष्ट्रीय जातियों के नाम – भारतीय, रूसी आदि

5. समुद्रों के नाम – काला सागर, भू मध्य सागर आदि

6. नदियों के नाम – गंगा, कावेरी आदि

7. पर्वतों के नाम – हिमालय, विंध्याचल आदि

8. नगरों, चौकों और सड़कों के नाम – दिल्ली चाँदनी चौक मुगल रोड आदि

9. पुस्तकों के नाम तथा समाचार पत्रों के नाम –

10. ऐतिहासिक मुद्दों और घटनाओं के नाम – पानीपत की लड़ाई आदि

11. दिनों, महीनों के नाम –

12. त्योहारों, उत्सवों के नाम –

चंदायन और मृगावती में जिन व्यक्तिवाची नामों का प्रयोग हुआ है वे सभी परम्परागत एवं प्रमाणित हैं। इन व्यक्तिवाची संज्ञाओं में सर्वत्र वैशिष्ट्य ढूंढ़ना अनपेक्षित होगा, क्योंकि ये संज्ञायें प्रज्ञप्ति मात्र के लिये भी प्रयुक्त की जाती हैं। फिर भी विशिष्ट अवसरों पर नामों का सामिप्राय प्रयोग हुआ है, जिसका विवेचन निम्नवत् है–

✠ अकासु :

यह संस्कृत के 'आकाश' शब्द का अपभ्रंश रूप है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है–

आसमंतात् काशंते दीप्यन्ते सूर्यादयो यत्र।[1]

अर्थात जहाँ सूर्यादि नक्षत्र चमकते हैं वह आकाश है। इसकी विशेषताएं बताते हुये कहा गया कि यह नित्य, शब्दगुण प्रधान, शून्य और अशरीरी है।[2]

---

1. शब्द कल्पद्रुम।
2. वाचस्पत्यम् और शब्द कल्पद्रुम।

चंदायन में मौलाना दाऊद ने अकासू शब्द एक बार[1] और उसी का अपभ्रंश अकासा शब्द एक बार[2] प्रयुक्त किया है।

इन शब्दों के प्रयोग में कोई अर्थागत विशिष्टता दृष्टिगत नहीं होती है। कवि ने सामान्य रूप से ही उक्त शब्दों का प्रयोग किया है।

गगन :

संस्कृत कोशों में इस शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से दी गयी है। जो शब्द के गुण से युक्त है[3] अथवा जिसमें देवता आदि गमन करते हैं[4] वह गगन है। चंदायन में कवि ने गगन शब्द का दो बार[5] प्रयोग किया है। दोनों स्थलों पर गगन शब्द का प्रयोग सटीक एवं प्रभावपूर्ण है।

मृगावती– अंब्रित, आंविरित :

अमृत का तद्भव रूप अंब्रित और अंविरित है। 'मृत' शब्द में 'अ' उपसर्ग के योग से अमृत बना है। मृत का अर्थ है 'मरा' और 'अ' का अर्थ है नहीं। इस प्रकार अमृत का अर्थ हुआ अमर अर्थात अमर करने वाला। अमृत संस्कृत का शब्द है आगे चलकर प्राकृत में इसका तद्भव रूप अंब्रित और अंबिरित हुआ। आज अमरित के रूप में प्रयुक्त होता दृष्टिगत हो रहा है। मृगावती में अंब्रित शब्द का प्रयोग चार बार[6] और यही शब्द अंविरित के रूप में एक बार[7] प्रयोग किया गया है।

धइइं अंविरित सीचि जिआएऊ। जीवन वाझि जियइ बिसराएउं।[8]

यहाँ अंबिरित शब्द अविधेयार्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अमृत का अर्थ है व्यक्ति को जीवित करना। अमृत की इसी विशेषता के फलस्वरूप धाय ने राजकुँवर को जीवित करने के लिये प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त कतिपय स्थलों पर अंब्रित शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट

---

1. कड़वक सं. 1–2
2. कडवक सं. 68–2
3. गगान शब्दात्मक गुण गच्छन्ति। शब्दकल्पद्रुम।
4. गच्छन्त्यस्मिन देवादय इति। शब्द कल्पद्रुम।
5. कड़वक सं. 108–6, 431–3।
6. मृगावती कडवक 25–2, 26–1, 59–4, 256–5
7. मृगावती कड़वक 82–4
8. मृगावती कडवक 82–4

प्रतिति हेतु भी किया गया है। यथा–

सुझर पानि देखत अति चोखा। पिअइ जो ओही न एकौ दोखा।

बेना बास पिअत अति मीठा। अंब्रित अइस न जग यह दीठा।[1]

उपर्युक्त पंक्ति में रूपक अलंकार की प्रस्तुति हेतु अंब्रित शब्द का प्रयोग अनूठा है। यहाँ कवि ने पानी को अमृत सद्रश्य बता कर रूपक अलंकार का निर्माण किया है।

✠ चंदायन– काम :

किसी वस्तु की प्राप्ति के सम्बन्ध में होने वाली इच्छा ही काम है।[2] सामान्यतः यह शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है।

(क) सामान्य इच्छा, (ख) यौन वासना से संबद्ध इच्छा, (ग) कामदेव। प्रेम के देवता कामदेव को ही काम कहा गया है। काम दिव्य सौंदर्य का प्रतिमान है। काम अपने तीव्र प्रभाव से मन को मथ देता है अथवा मन की भावनाओं को अनियंत्रित कर देता है।

चंदायन में 'काम' शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है।

अबलहि मैं कुर आपन धरा। काम लुबुध बिरहें तन जरा।[3]

दाऊद मुल्ला सूफी काव्य परम्परा के अगुआ थे, अतः ऐसा मानना कि दाऊद की नायिका, केशव और बिहारी की नायिका की भाँति कामांध होगी समीचीन प्रतीत नहीं होता है। यद्यपि सूफी संतों का नायक–नायिका का सौंदर्य वर्णन एवं वियोग वर्णन इस ढंग का है कि सीधा अर्थ ग्रहण करने पर एक रसिक कवि जैसा प्रतीत होता है। परन्तु ऐसा है नहीं दाऊद की नायक–नायिका का प्रेम वर्णन अशरीरी है आत्मीय है। उक्त स्थल पर 'काम' शब्द का प्रयोग काम का द्योतक है। कामान्धता का नहीं।

---

1. मृगावती कड़वक 25–12
2. काम्यतेऽसौ। काम्य इच्छा। शब्द कल्पद्रुम
3. चंदायन कड़वक 48–5

मृगावती– काम :

मृगावती में काम शब्द का प्रयोग दो[1] स्थलों पर हुआ है। दोनों स्थलों पर इस प्रकार प्रयोग मिलता है।

मोहन बान काम के लागे। ओखद मूरि होइ तौ जागे।।[2]

सूफी मतानुसार लौकिक प्रेम (इश्क मिजाजी) और अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) में कोई अंतर नहीं है। यदि लौकिक प्रेम में विशुद्धता है तो अलौकिक प्रेम का रास्ता अपने आप प्रशस्त होता चला जाता है।

उक्त पंक्ति में काम शब्द का प्रयोग 'इश्क मिजाजी' की ओर इंगित करता है, परन्तु नायक नायिका के प्रेम की विशुद्धता इस प्रेम को 'इश्क हकीकी' में परिवर्तित करने में पूर्ण सक्षम नजर आ रही है।

चंदायन– मदन :

जो अपने मादक प्रभाव से सम्पूर्ण संसार को उन्मत्त कर देता है, वह मद है।[3] प्रेम के देवता कमदेव को ही मदन की संज्ञा दी जाती है। दाऊद ने नायक–नायिका को प्रेम में मदमत्त कर देने के कारण मदन कहा है। मदन के प्रभाव से सम्पूर्ण वातावरण सुरभित और आल्हादित हो उठता है। ऐसे वातावरण में काम के प्रभाव से प्रेम अनियंत्रित हो जाता है।

मदन प्रेम का ही नहीं सौंदर्य का भी अधिपति माना जाता है इसी कारण आकर्षक एवं सुन्दर स्वरूप वाले व्यक्ति को मदन अर्थात कामदेव की संज्ञा दी जाती है।

चंदायन में मदन शब्द का प्रयोग एक बार निम्नवत् हुआ है–

कनक बरन झरकत है देहा। मदन मुरत ऊद लाग न खेहा।।[4]

---

1. मृगावती कड़वक 296–3, 330–5
2. मृगावती कड़वक 296–3
3. मदयतीति। कामदेवः। शब्दकल्पद्रुम
4. चंदायन कड़वक 146–5

कवि ने लोरक (नायक) के सुन्दर सुगठित शरीर को मदन की संज्ञा देकर जहाँ मदन शब्द की सार्थकता का निरूपण किया है वही रूपक की प्रस्तुति भी अनूठी बन पड़ी है।

मृगावती– अनंग :

समाधि में विघ्न डालने के कारण शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया। तब उसकी पत्नी द्वारा अनुनय–विनय करने पर शिव के यह बर्दान दिया कि तुम्हारा पति जीवित तो होगा परन्तु सामान्य व्यक्तियों की भाँति वह दिखाई नहीं देगा, अपितु अंग रहित या शरीर रहित होकर निवास करेगा। शिव के इस वर्दान के कारण कामदेव का नाम अनंग पड़ा।[1]

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग कुतबन ने एक बार किया है।

अनंग कवन गुन आई बिकासा। दावन कनक नगा हम पासा।[2]

यहाँ पर अनंग शब्द काम के अभिधेयार्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– रवि सुत सारथि :

रवि का पुत्र शनि और शनि का सारथी अनंग है। इस प्रकार कामदेव को कवि ने 'रवि सुत सारथि' कहा है। दाऊद मुल्ला मुस्लिम कवि होते हुए भी हिन्दू धर्म ग्रंथों और उनके देवी देवताओं के ज्ञान के मुहताज नहीं थे। उपर्युक्त शब्द ज्ञान उनकी इस अनूठी क्षमता का सटीक प्रमाण है।

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग भी कामदेव के अर्थ में दो[3] बार हुआ है।

रवि सुत सारथि मन वसेऊं। तां बठडेउ अनुराग।।[4]

'रवि सुत सारथि' शब्द कामदेव के साधारण अर्थ का वाची है।

---

1. (क) नास्ति अंगं कायो यस्य सः। शब्दकल्पद्रुम
   (ख) अव तैं रति तव नाथ कर होइहि नाम अनग।
   विनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसग।। मानस 1–67–13–14
2. मृगावती कड़वक 295–1
3. मृगावती कड़वक 294–6, 295–6
4. मृगावती कड़वक 294–6

✠ चंदायन– चाँद :

चंद्र, चंद्रका और चाँद इन तीनों शब्दों की व्युत्पत्ति एक ही है। इन शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार से दी गयी है। (क) जो चमकता है।[1] (ख) जो प्रसन्न करता है।[2] जो आनंद देता है अर्थात जो कर्पूर के समान श्वेत है, वह चन्द्रमा है।[3]

चंदायन में चांद शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार किया गया है–

सिरजसि चाँद सुरुज उजयारा।[4]

यहाँ चाँद शब्द चन्द्रमा के लिये प्रयोग किया गया है। कवि ने 'चाँदा' नायिका के लिए भी चाँद शब्द का प्रयोग किया है।

मृगावती– चाँद, चन्द्रमा, चंद :

व्युत्पत्ति उपर्युक्त मृगावती में कुतबन ने चाँद, चन्द्रमा तथा चंद शब्द का प्रयोग क्रमशः नौ बार[5], चार बार[6] एवं एक बार[7] किया है।

कुतबन ने उक्त शब्दों का प्रयोग कहीं रूपक कहीं उत्प्रेक्षा की सृष्टि एवं बहुतायत में चन्द्रमा के साधारण भाव की प्रस्तुति हेतु किया है–

बदन चाँद जनौ गहने गहा।[8]

उक्त पंक्ति में उत्प्रेक्षा की अर्थछटा अवलोकनीय है।

चन्दायन– ससहर :

संस्कृत रूप शशिन, पाली–ससी, प्राकृत– ससि शशि से ही शशिहर बना है। शशिहर का विकृत रूप है। मयंक शब्द यदि चन्द्रमा में मृग होने की मान्यता का द्योतक है तो शशिहर उसमें शशक अथवा खरगोश होने के पौराणिक विश्वास का सूचक है।[9]

चंदायन में ससहर शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है–

---

1. चन्दति दीप्यते इति। शब्द कल्पद्रम।
2. चन्दयति आल्हादयाति। शब्द कल्प द्रुम।
3. चन्द्रमानंद किमीते यद्वा चन्द्र कर्पूर साहश्येन माति परियातीति। शब्द्रकल्पद्रुम
4. चदायन कड़वक 1–3
5. मृगावती कड़वक 31–4, 43–1, 52–3, 124–3, 130–2, 3, 142–1, 153–3 343–3
6. मृगावती कड़वक 22–5, 43–4, 45–1, 52–3
7. मृगावती कड़दक 48–4
8. मृगावती कड़वक 31–4
9. शशोऽस्यास्तीति। चन्द्र। शब्दकल्पद्रुम

ससहर रूप भई उठ रेखा। मैं न अकेले सभ जग देखा।[1]

उक्त पंक्ति में रूपक अलंकार की आवृत्ति मनोहारी है।

मृगावती– ससिहर, ससि :

व्युत्पत्ति ऊपर लिखित है। इस शब्द का तत्सम रूप शशिहर एवं शशि है। मृगावती में दोनों शब्दों का प्रयोग क्रमशः दो बार[2] एवं पाँ बार[3] हुआ है।

उतरे तपा खोजहिं सुभाएं दुह अगस्त ससि साथ जो आए।[4]

मृगावती के नख शिख वर्णन में मुख में शशि का आरोप रूपक का श्रृजन कर रहा है।

मृगावती– मयंक :

चन्द्र के रूप में दिखाई पड़ने वाले चिन्ह के विषय में अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं। उनमें से एक विश्वास यह भी है कि यह मृग का चिन्ह है। इसी कारण चन्द्रमा को मृगांक कहा जाता है। मयंक इसी मृगांक शब्द का अपभ्रंश है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग दो बार[5] हुआ है। कुतबन ने दोनों स्थलों पर इस शब्द का प्रयोग व्युत्पत्तिपरक अर्थ में अर्थ सौन्दर्य की सृष्टि हेतु किया है–

कवंल भांति दिन बिगसत अनुदिन जस निसि उए मयंक।[6]

उत्प्रेक्षा अलंकार का मनोरम दृश्य सलाघनीय है।

मृगावती– इन्दु :

जो अपनी शीतल किरणों के अमृत वर्षण से पृथ्वी को सराबोर कर देता है, वह इन्दु है।[7] यद्यपि सुधाकर शब्द भी चन्द्रमा की किरण सुधा का द्योतक है तथापि उसमें पृथ्वी को रसासिक्त करने का वह भाव नहीं है जो इन्दु में हैं मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है–

---

1. चंदायन कड़वक 77–5
2. मृगावती कड़वक 15–2, 71–6,
3. मृगावती कड़वक 25–5, 57–3, 77–7, 125–1, 320–1
4. मृगावती कड़वक 57–3
5. मृगावती कड़वक 26–6, 52–1
6. मृगावती कड़वक 26–6
7. उनति अमृतधारया भुवंभुव क्लिन्ना करोति इति। शब्दकल्पद्रुम

✠ <u>चंदायन– जगत, जग :</u>

संस्कृत रूप जगत, प्रा0 एवं हि0 जग व्युत्पत्ति की दृष्टि से जगत का अर्थ है– चलता फिरता अर्थात जागता। यह मुख्यतः पृथ्वी के उस अंश का वाचक है, जिसमें जीवधारी या प्राणी रहते हैं। अर्थात समस्त चेतन सृष्टि का इसमें अंतर्भाव होता है। लाक्षणिक रूप में यह किसी विशिष्ट क्षेत्र का भी वाचक होता है। जैसे– (क) हिन्दी जगत, वैज्ञानिक जगत आदि। चंदायन में जग और जगत शब्द का प्रयोग क्रमशः दो[1] बार, चार[2] बार हुआ है। सभी स्थलों पर 'जगत' शब्द व्युत्पत्ति परक भाव में प्रयुक्त हुआ नजर आता है।

<u>मृगावती– जग, जगत :</u>

क्रमशः दस बार एवं तीन बार प्रयुक्त हुए हैं। सभी शब्द जगत शब्द के व्युत्पत्ति परक अर्थ में ही ग्रहण किए गये हैं।

चंदायन– सं0, पा0, प्रा0 एवं हि0 में 'संसार' का एक ही रूप है। संयसारु, सैंसारु, संयसार– तीनों संसार के ही परिवर्तित रूप हैं। संसार शब्द सृ धातु में सं उपसर्ग लगने से बना है, और इसका व्युत्पत्ति परक अर्थ है– चलते या घूमते फिरते रहना। पर आगे चलकर यह शब्द आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा या जीव की उस दशा का वाचक हो गया था, जिसमें वह बराबर इस पृथ्वी पर या इस लोक में आता जाता रहता है। प्रयोग की दृष्टि से इसका अर्थ भी बहुत कुछ वही है, जो जगत शब्द का है। हम जिसे हिन्दी जगत कहते हैं। उसे हिन्दी संसार भी कह सकते हैं। चंदायन में तीनों शब्द क्रमशः एक बार, एक बार और एक बार, कुल तीन[4] बार प्रयुक्त हुए हैं। सभी शब्द संसार के मूल अर्थ में ही अपनाये गये हैं।

---

1. चंदायन कड़वक 6–1, 33–7,
2. चंदायन कड़वक 12–6, 13–6, 40–4, 56–2
3. मृगावती कड़वक 23–2, 25–2, 33–5, 45–3, 52–1, 56–3, 57–5, 59–5, 73–1, 85–4, 7–1, 5–2, 70–1
4. चंदायन कड़वक 33–2, 12–2, 12–6

मृगावती– संयसार :

मृगावती में भी संसार शब्द का प्रयोग कुतबन ने एक[1] बार किया है।

मृगावती– लोक :

सं0, प्रा0 पा0 एवं हिन्दी सभी में लोक शब्द का एक ही रूप है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से लोक का अर्थ है– अवकाश, देश या स्थान। पर आगे चलकर यह शब्द स्थानों के ऐसे विभाग का वाचक हो गया था, जिसमें किसी विशिष्ट प्रकार की सृष्टि हो। इसी दृष्टि से हमारे यहाँ पहले से दो लोक माने गये थे – इह लोक और परलोक। पर बाद में आकाश, पाताल और पृथ्वी तीन लोक माने गये। आजकल हिन्दी में लोक संज्ञा रूप में जगत या संसार का वह अंश माना जाता है, जिसमें सब प्रकार के मनुष्यों का समावेश है। यह शब्द मानव समाज का वाचक होता है। जैसे– लोकहित, लोकनिधि आदि। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[2] बार हुआ है।

चंदायन– भुवन :

'भुवन शब्द 'लोक' का ही समानार्थक है। पहले तीन लोक थे पृथ्वी, आकाश एवं पाताल। पौराणिक काल में विभागों की यह संख्या 14 तक पहुंच गयी थी, जिनमें 7 लोक तो ऊपरी विस्तार में माने गये और 7 लोक नीचे वाले विस्तार या पाताल में। इस विभाजन के अनुसार ये सब लोक 'भुवन' माने गये हैं। भुवन शब्द यद्यपि लोक शब्द का समानक है फिर भी दोनों की अर्थच्छायायों में अंतर है। लोक शब्द में मानव समाज के रहने का भाव निहित है वहीं भुवन शब्द से जगत या संसार की ध्वनि प्रकट होती है। इस अर्थभेद के बाद भी भुवन और लोक शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते नजर आते हैं– त्रिभुवन, त्रिलोक। चंदायन में भुवन शब्द का प्रयोग एक[3] बार मिला है–

---

1. मृगावती कडवक 24–7
2. मृगावती कडवक 141–6
3. चंदायन कडवक 186–6

✠ चंदायन– धरती :

संसार के सभी प्राणियों को अपने अंक में धारण करने के कारण पृथ्वी को धरती कहा गया है।[1]

संस्कृत में धरती को धरित्री कहा गया है और आगे प्राकृत में धरित्ती बना। हिन्दी में इसका तद्भव रूप धरती स्वीकृत किया गया। पृथ्वी के समस्त पर्यायों में धरती ही जन भाषा का सर्वप्रिय शब्द है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग चार[2] बार हुआ है। उदाहरणार्थ–

सहदेव मंदिर चाँद औतारी। धरती सरग भई उजियारी।।[3]

उक्त पंक्ति में धरती शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण पृथ्वी के अर्थ में हुआ है। सभी स्थलों पर इस शब्द का प्रयोग धरती के साधारण अर्थ के रूप में है।

मृगावती– धरती :

मृगावती में भी धरती शब्द का प्रयोग कुतबन ने किया है। व्याख्या उक्त ही है। कुतबन ने धरती शब्द का प्रयोग चंदायन की भाँति धरती के साधारण अर्थ के द्योतन हेतु किया है। इस शब्द का एक बार प्रयोग इस प्रकार है–

धरती हरधि चीर जनु पहिरा।[4]

मृगावती– बसुधा :

संस्कृत शब्द 'वसुधा' को हिन्दी में भी इसी रूप में स्वीकारा गया। पाली भाषा में भी 'वसुधा' रूप मिलता है। पृथ्वी के गर्भ में अनेक रत्नों और बहुमूल्य वस्तुओं का अपार भण्डार है। इसी कारण उसकी एक संज्ञा वसुधा भी है।[5] मृगावती में वसुधा शब्द का प्रयोग उसके साधारण अर्थ के वाचन हेतु एक बार किया गया है।

वसुधा जरइ न उब्बरइ आयी बिरह गइ लाग।।[6]

---

1. धरति जीव संघानिति। शब्दकल्पद्रुम
2. चंदायन कडवक 1–2, 33–1, 45–7, 56–2
3. चंदायन कडवक 45–7
4. मृगावती कडवक 317–2
5. वसूनि रत्नानि धारयतीति। शब्दकल्पद्रुम
6. मृगावती कडवक 143–7

<u>मृगावती– पुहुमि :</u>

यह भूमि से विकसित शब्द है और इसका प्रयोग केवल काव्यों में ही मिलता है। कुतबन ने भी पृथ्वी के इस विकसित रूप को अंगीकार किया, यह तथ्य कवि की बहुमुखी प्रतिभा का द्योतन करता है। मृगावती में पृथ्वी के पर्यायक के रूप में इस शब्द का प्रयोग चार बार[1] साधारण अर्थ में हुआ है–

बिरह आगि ऐसी परजरी। सीउ परान पुहुमि सब हरी।[2]

उक्त स्थल पर पुहुमि शब्द पृथ्वी के ही अर्थ के द्योतन हेतु हुआ है। किसी अर्थ वैशिष्ट्य की अभिव्यक्ति हेतु नहीं।

<u>चंदायन– भू :</u>

भू धातु किसी वस्तु के उत्पन्न अथवा विद्यमान होने के अर्थ में प्रयुक्त होती है।[3] भू केवल धातु ही नहीं, शब्द भी है और शब्द रूप में यह भूमि का संक्षिप्त रूप है। पृथ्वीवाची भू शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है– जहाँ उत्पन्न हुआ जाता है वह भू है।[4] चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है।

भू पर सूरज गोहन लाई।[5]

इस शब्द के प्रयोग में कोई अर्थगत विशिष्टता न होकर अभिधेयार्थ में प्रयुक्त हुआ है। भूमि शब्द का संक्षिप्त रूप होने के कारण मात्रा और छंद की पूर्ति हेतु इस शब्द को ग्रहण किया गया है।

<u>चंदायन– भुई :</u>

भुई शब्द का संस्कृत, पाली और प्राकृत में भूमि रूप मिलता है। हिन्दी में इसका तद्भव रूप भुई हो गया।

जीव मात्र उत्पत्ति का जो स्थान है, वह भूमि है।[6]

---

1. मृगावती कडवक 5–5, 8–4, 40–5, 410–4
2. मृगावती कडवक 40–5
3. भू सत्तायाम। सत्तेह द्विविधा– उत्पत्तिर्विद्यमानता च। शब्द कल्पद्रुम
4. भवत्यस्मिन्निति। शब्दकल्पद्रुम
5. चंदायन कडवक 232–2
6. भवन्ति भूतान्यस्यामिति। शब्द कल्पद्रुम

महाभारत में इसके गुणों की गणना करते हुए इसे सौन्दर्य, गुरूत्व, काठिन्य आदि से युक्त बताया गया है।[1] चंदायन में इसका प्रयोग दो[2] बार हुआ है। दोनों स्थलों पर यह शब्द अर्थ वैशिष्ट्य रहित है। कवि ने सामान्य रूप से ही इस शब्द को ग्रहण किया है।

<u>मृगावती– भुइं :</u>

भुईं शब्द का ही विकृत रूप भुइं है। चंदायन की भाँति मृगावती में भी कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग अर्थ सम्बन्धी किसी विशिष्टता के निरूपण हेतु न करके अभिधेयार्थ में किया है। मृगावती में इसका प्रयोग दो[3] स्थलों पर मिला है।

कै जुहार सिर भुईं ले आए।[4]

<u>मृगावती– मही :</u>

महि शब्द का विकृत रूप मही है। मृगावती में पृथ्वी के अनेक समानकों में मही शब्द का भी प्रयोग कुतबन द्वारा किया गया है। इस शब्द का प्रयोग पृथ्वी की किसी विशिष्टता के द्योतन हेतु न करके साधारण अर्थ के रूप में ही ग्रहण किया गया है।

जलथल मही बनखण्ड अपारा।[5]

<u>मृगावती– प्रिथिमी :</u>

पृथ्वी का विकृत रूप प्रिथिमी है। धरती के अन्य पर्यायों की भाँति इस शब्द का प्रयोग भी साधारण अर्थ में ही किया गया है। एक बार इसका प्रयोग निम्नवत् हुआ है।

उठा अकुताइ अंदोरा प्रिथिमी सात दीप नौ खण्ड।[6]

<u>चंदायन– पिरिथिमी :</u>

पृथ्वी का ही बदला रूप पिरिथिमी है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दाऊद मुल्ला ने भूमि के पर्याय के रूप में किया है। किसी अर्थ वैशिष्ट्य के निरूपण हेतु नहीं।

---

1. भूमेः स्थैर्य गुरूत्वञ्च काठिन्यं प्रसवार्थता
गन्धों गुरूत्वं शक्तिञ्च संघातः स्थापना धृतिः। शब्द कल्पद्रुम उद्धृत
महाभारत का श्लोक।
2. चंदायन कड़वक 56–1, 84–7
3. मृगावती कड़वक 26–4, 419–2
4. मृगावती कड़वक 26–4
5. मृगावती कड़वक 279–2
6. मृगावती कड़वक 410–6

चंदायन में मात्र दो ही स्थलों पर इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

जगकर सभै पिरिथिमी।[1]

जहि लगि सबै पिरिथिमी सिरी।[2]

दोनों स्थलों पर धरती का ही वाचन हो रहा है।

मृगावती– धर :

धरा का ही विकृत रूप है। पृथ्वी के अन्य पर्यायों की भाँति कुतबन ने धरा शब्द का भी प्रयोग काव्य में शब्द वैभिन्य की दृष्टि से किया है अर्थ वैशिष्ट्य की दृष्टि से नहीं। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ में इसको ग्रहण किया है। धरती की भाँति धरा में भी धारण की ध्वनि प्रस्फुटित होती है। जिस प्रकार धरती संसार के समस्त प्राणियों, जीव, जन्तुओं आदि को अपने अंक में धारण करती है इस कारण उसे धरती कहते हैं। उसी प्रकार पृथ्वी की इसी विशेषता के कारण धरा शब्द भी बना। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[3] स्थल पर साधारण अर्थ में हुआ है।

✠ **चंदायन– निसि :**

यह अवधी शब्द 'निशि' का रूप है। व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से निशि वह है, जिसमें कर्मो की क्षीणता हो जाती है।[4] यह शब्द रात्रि में व्याप्त होने वाली निष्क्रियता पर बल देता है। चंदायन में 'निसि' शब्द की आवृत्ति पाँच[5] बार हुई है। सभी स्थलों पर 'रात' के साधारण अर्थ में ही इस शब्द का प्रयोग प्रतीत होता है।

निसि अँधियार नीरधत बीज लवइ भुँइ लागि।[6]

मृगावती– निसि :

मृगावती में 'निसि' शब्द का प्रयोग सात[7] स्थलों पर हुआ है। सभी स्थलों पर 'निसि' का साधारण अर्थ ही दृष्टिगत होता है।

निसि – वसुर तोहि सवरत रहउ।[8]

---

1. चंदायन कडवक 1–6,
2. चंदायन कडवक 6–2
3. मृगावती कड़वक 240–7
4. निवरां श्यति तनूकरोति व्यापारानिति। शब्द कल्पद्रुम
5. चंदायन कडवक 41–5, 46–2, 48–6, 71–5, 79–3
6. चंदायन कड़वक 48–6
7. मृगावती कड़वक 231–4, 301–2, 307–1,2, 317–3, 321–2, 346–1
8. मृगावती कड़वक 231–4

<u>चंदायन– रैन :</u>

यह रजनी शब्द का तद्भव रूप है। प्राकृत में और अपभ्रंश में रयणी–मअणी–रऊनी–रैनी तथा हिन्दी में रैन। रैन सम्पूर्ण विश्व को सुख देने वाली बतायी गयी है।[1] चंदायन में यह शब्द चार[2] बार प्रयुक्त हुआ है। सभी स्थलों पर रात्रि के साधारण अर्थ का घोतक है–

तीस आह जिनु भरु, कहु कैसें रैन बिहाइं।[3]

<u>मृगावती– रैन :</u>

मृगावती में रैन शब्द निसि के समानार्थी शब्द के रूप में सात[4] बार प्रयुक्त हुआ है। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ का वाची है–

बार बजावई रैनि अकेला।[5]

<u>चंदायन– रात, राती :</u>

यह संस्कृत शब्द रात्रि का तद्भव रूप है। प्राकृत में रात्ति और हिन्दी में रात है। रात का अर्थ है, जो विभिन्न कर्मों से अवकाश प्रदान करके निद्रा का सुख देती है, वह रात्रि है।[6] चंदायन में प्रायः दाऊद मुल्ला ने दिन के साथ रात का प्रयोग किया है। दिन के साथ रात का प्रयोग ही ज्यादा प्रचलित है। इसी कारण रात के स्थान पर कोई अन्य शब्द ज्यादा अटपटा प्रतीत होता है। चंदायन में रात और राती शब्द क्रमशः छः[7] बार एवं तीन[8] बार प्रयुक्त हुए हैं।

आज रात निसहैं तैं गावा।[9]

✠ <u>मृगावती– परमेशा :</u>

कुतबन में परमेश्वर को परमेशा रूप में प्रयुक्त किया है। डा0 हरदेव बाहरी ने परमेश्वर का रूप का सगुण ब्रह्म जो सम्पूर्ण श्रृष्टि का रचयिता एवं संचालक है स्वीकार किया है।[10]

---

1. रात्रे प्रथमदण्ड चतुष्ट्यम। शब्दकल्पद्रुम
2. चंदायन कड़वक 22–7, 51–2, 52–7, 53–3
3. चंदायन कड़वक 51–2
4. मृगावती कड़वक 3–5, 39–2, 106–4 184–7, 186–4, 261–4, 272–3
5. मृगावती कड़वक
6. राति ददाति कर्म्यय्योऽयवसर निद्रादि सुख वा। शब्द कल्पद्रुम
7. चंदायन कड़वक 22–4, 22–6, 25–7, 42–6, 72–5, 92–1
8. चंदायन कड़वक 33–4, 35–1, 54–4,
9. चंदायन कड़वक 72–5
10. ग्राजपाल हिन्दी शब्द कोश

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार रचना के प्रथम कड़वक में ग्रहण किया है–

यह सिध परमेसा। ना उहितिरी न पुरूषक भेसा।[1]

मृगावती– ईसुर :

मृगावती में ईश्वर शब्द को ईसुर के रूप में अपनाया है। कुतबन ने ईश्वर शब्द का प्रयोग भगवान शब्द के पर्यायवाची रूप में एक बार प्रयोग किया है–

ईसुर कर गहि धरेउ बिनानी।[2]

चंदायन– भगवान :

संस्कृत में भगवत् शब्द का तद्भव रूप भगवान है। ऋग्वेद में 'भगबन्तः'[3] प्रश्नोपनिषद में 'भगवान' और 'श्रीमदभागवत महापुराणम' में 'भगवते' शब्द का प्रयोग हुआ है। चंदायन में भगवान शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

सरग चाँद विधि भगवन गढ़ी।[4]

✠ **चंदायन– बिधि** :

शुद्ध रूप विधि है। विधि शब्द का प्रयोग दो रूपों में मिलता है। प्रथम– सृष्टि का विधान करने वाले के अर्थ में अर्थात 'ब्रह्मा' के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है। दूसरा– उपाय या प्रणाली की भावाभिव्यक्ति इस शब्द से होती है।

चंदायन में विधि शब्द ब्रह्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है।

विधि शब्द संस्कृत में विधि, प्राकृत और अपभ्रंश में 'बिहि' के रूप में मिलता है। इस शब्द का प्रयोग दाऊद ने एक बार अपने व्युत्पत्यक अर्थ में किया है–

सरग चाँद विधि भगवन गढ़ी।[5]

---

1. मृगावती कड़वक 1–3
2. मृगावती कड़वक 59–1
3. ऋग्वेद मन्त्र 7। सूक्त 41
4. चंदायन कड़वक 190–2
5. चंदायन कड0क 190–2.

<u>मृगावती– बिधि :</u>

इस शब्द की व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग विधाता के समानक के रूप में दस[1] बार किया है। यह शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक रूप में ग्रहण किया गया है–

विधि सिरि कमल भुजंग निरमया।[2]

<u>मृगावती– विधाता :</u>

विधाता भी ब्रह्मा को कहा गया है। मृगावती में विधाता शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्ता के रूप में तीन[3] बार हुआ है।

दइअ विधाता तूँ पै आही।[4]

<u>चंदायन– बिधना :</u>

विधाता का ही पर्यायवाची विधना है। विधना भी ब्रह्मा को कहा गया है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिला है।

विधना कहा बिसेखें कीजा।[5]

<u>चंदायन करतार :</u>

करतार शब्द का अर्थ है करने वाला। यह शब्द सृष्टि रचयिता के लिए प्रयुक्त होता है अर्थात् ब्रह्मा का ही समानक करतार है। चंदायन में करतार शब्द दो[6] बार प्रयोग किया गया है।

खान जहानहु कौन बढ़ाई, बड़ जो कीन्हि करतार।[7]

<u>मृगावती– करतारा :</u>

कुतबन ने मृगावती में करतार शब्द का प्रयोग विधाता, विधि एवं विधना के पर्यायवाची शब्द के रूप में नौ[8] बार ग्रहण किया है–

---

1. मृगावती कड़वक 12–4, 14–5, 16–2, 23–5, 56–1, 255–4, 266–1, 271–1, 358–5, 425–2
2. मृगावती कड़वक
3. मृगावती कड़वक 163–6, 103–1, 121–1
4. मृगावती कड़वक 121–1
5. चंदायन कड़वक 70–5
6. चंदायन कड़वक 12–7, 40–7
7. चंदायन कड़वक 12–7
8. मृगावती कड़वक 13–7, 72–3, 78–5, 172–2, 182–1, 183–5, 271–2, 418–6, 421–7

साँप मौंख दीन्हेउ करतारा।[1]

<u>चंदायन– सिरजनहारा :</u>

श्रृजनहार का विकृत रूप सिरजनहारा है। श्रृजनहारा से सृष्टिकर्ता मार्ग का भाव ध्वनित होता है, अतः यह शब्द भी ब्रह्मा का ही पर्यायक है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार चंदायन के प्रथम कड़वक में मिला है–

पहिले गावउँ सिरजनहार।[2]

<u>मृगावती– सिरजनिहार :</u>

मृगावती में सिरजन हार शब्द का प्रयोग एक स्थल पर मिला है। वह विधाता के भाव का बोधक प्रतीत होता है।

अति सुरूप धन सिरजनिहारा।[3]

✠ <u>चंदायन– परभात :</u>

परभात का शुद्ध रूप प्रभात है। भ्रभात का अर्थ है सुबह, प्रातः काल, आदि। प्रभात शब्द सूर्योदय के पूर्व के समय का वाचक है। चंदायन में 'परभात' शब्द एक बार निम्नलिखित रूप से अपनाया गया है।

भाइ कहार सुखासन बेगि पठेऊ परभात।[4]

<u>चंदायन– भोर :</u>

संस्कृत में (भा + गृह), प्राकृत में (भा + हर), अपभ्रंश में माहर और हिन्दी में भोर रूप मिलता है। यह प्रातः काल के लिए जन साधारण द्वारा सर्वाधिक प्रयुक्त किये जाने वाला शब्द हैं चंदायन में यह शब्द दो[5] बार प्रयुक्त हुआ है तथा प्रातः काल के साधारण अर्थ का द्योतक मात्र करता है।

जो चित है तुम्ह बसा, भोर कहेउ मोहि।[6]

---

1. मृगावती कडवक 72–2
2. चंदायन कडवक 1–1
3. मृगावती कडवक 15–1
4. चंदायन कडवक 50–"
5. चंदायन कडवक 148–6, 224–6
6. चंदायन कडवक 148–6

चंदायन– विहान :

विहान का तात्पर्य है सबेरा। इसका संस्कृत रूप सवेरा, प्राकृत में विहाण, अपभ्रंश में विहाणु और हिन्दी में विहान मिलता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है।

भा बिहान नै गबर नसावा।[1]

चंदायन भिनसारा :

भिनसार का शुद्ध रूप भिनसार मिलता है। डा० हरदेव बाहरी ने इस शब्द को बोलचाल की भाषा बताया है।[2] चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक ही बार हुआ है। वह भी साधारण अर्थ में।

जागत चाँद भयउ भिनसारा।[3]

✠ चंदायन– पवन :

पवन शब्द का संस्कृत रूप प्रापण, प्राकृत में पावण और हिन्दी में तद्भव रूप पवन है। वायु का यह पर्याय उसकी पवित्र करने की विशेषता का सूचक है। संस्कृत कोश में दी गयी व्युत्पत्ति के अनुसार जो पवित्र करता है वह पवन है।[4] जब हवा एक बार थोड़ी देर के लिए कुछ तेजी से आकर शरीर में लगता हुआ जान पड़ता है, तब (पवन या वायु का झौंका कहलाता है।)

चंदायन में पवन शब्द का प्रयोग चार[5] बार मिला है। यह प्रयोग किसी विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त न होकर हवा के साधारण अर्थ का वाचन करता प्रतीत हो रहा है–

विरह पवन जो डोलेऊ, टूट परे उँधह राई।[6]

मृगावती– पवन :

मृगावती में भी पवन शब्द का हवा के पर्याय के रूप में प्रयोग किया गया है। इस शब्द की व्युत्पत्यक व्याख्या दी जा चुकी है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग नौ बार हुआ

1. चंदायन कड़वक 438--4
2. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
3. चंदायन कड़वक 229–4
4. पुनातिति। शब्द कल्पद्रुम
5. चंदायन कड़वक 1–5, 55–1, 68–7, 79–3
6. चंदायन कड़वक 68–7
7. मृगावती कड़वक 3–7, 55–4, 66–2, 187–7, 237–3, 271–3, 287–5, 288--1, 291–5

है। सभी स्थलों पर वायु के साधारण अर्थ का वाची है–

लागत पवन टूट नहिं दरहा।[1]

<u>चंदायन– बयारा :</u>

लोक भाषा में प्रयुक्त किए जाने वाला यह शब्द वायु के अन्य पर्यायों की तुलना में अत्यंत कोमल और काव्यात्मक है। लोकभाषा की कृति होने के कारण चंदायन में 'बयार' शब्द को महत्व दिया गया है। चंदायन में 'बयारा' शब्द एक बार दाऊद मुल्ला ने स्तुति प्रकरण में प्रथम कड़वक में प्रयुक्त किया है। यह शब्द वायु के साधारण अर्थ का द्योतन कर रहा है–

जिन सिरजा यह देवस बयारा।[2]

<u>मृगावती पौन :</u>

पौन शब्द सम्भावतः पवन का ही रूप प्रतीत होता है। मृगावती में कुतबन ने इस शब्द को हवा के अर्थ में एक बार प्रयोग किया है–

पौन पाई सौं अहि पिरीती।[3]

✠ <u>मृगावती– मुरारी :</u>

मुरारी कृष्ण का नाम है। कृष्ण के अनेक नामों में मुरारी भी एक नाम है। मुर शत्रु को मारने के कारण कृष्ण का नाम मुरारी पड़ा है। मृगावती में मुरारी शब्द अपने व्युत्पत्यक अर्थ में पयुक्त न होकर कृष्ण के साधारण अर्थ का वाचक हैं मृगावती में इस शब्द का प्रयोग दो[4] स्थलों पर मिलता है।

<u>मृगावती कन्ह :</u>

मृगावती में कन्ह शब्द कन्हैया या कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण का श्याम रूप होने के कारण ही कृष्ण और श्याम नाम की संज्ञा दी गयी है। मृगावती में 'कन्ह' शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है–

कन्ह सहस सोलह सेउं गोपी।[5]

---

1. मृगावती कड़वक 66–2
2. चंदायन कड़वक 1–1
3. मृगावती कड़वक 91–3
4. मृगावती कड़वक 153–4, 355–3
5. मृगावती कड़वक 36–5

✠ चंदायन– सूर, सूरुज, सूर्य :

सूर्य शब्द संस्कृत का तत्सम रूप है। सम्पूर्ण विश्व को अपने प्रकाश से प्रकाशित करने के कारण इसे सूर्य की संज्ञा दी गयी है। इसका पाली रूप 'सूरिय' और प्राकृत रूप सुज्ज है। यही शब्द हिन्दी में सूरज बन गया। जहाँ तक दूसरी भाषाओं में इसके रूप का प्रश्न है वह इस प्रकार है– उर्दू भाषा में इसका रूप सूरज वल्गारिया में स्लंसे और अंग्रेजी में सन् है। इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः तीन[1] बार मिला है।

मृगावती– सूरुज, सुरुज, सुरिज :

मृगावती में सूरज शब्द तीन रूपों में मिलता है। तीनों रूप मृगावती में क्रमशः नौ[2] बार, एक[3] बार दो[4] बार प्रयुक्त हुए हैं।

चंदायन– दिनकर :

दिनकर का संस्कृत रूप दिनकर है हिन्दी में अपने तत्सम् रूप में ही प्रयुक्त होता है। अपभ्रंश में इसका रूप दिनअस है। जो दिन करता है वह दिनकर है।[5] यह नाम सूर्य की दिन करने की विशेषता का सूचक है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[6] बार हुआ है।

मृगावती– दिनयर :

मृगावती में दिनकर शब्द का प्रयोग 'दिनयर' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द मृगावती में सूर्य के अर्थ में दो[7] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– भानु :

यद्यपि भानु शब्द में भी 'भा' धातु है, जिससे भास्कर शब्द बना है तथापि भानु में यह तीव्रता नहीं है जो भास्कर में है। संस्कृत कोशों में इसकी व्युत्पत्ति देते हुए कहा गया है कि जो अपनी प्रभा से चौदहों भुवनों में प्रकाशित होता है, वह भानु है।[8] मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक[9] बार हुआ है।

---

1. चंदायन कड़वक 33–3, 75–4, 77–4, 1–3,
2. मृगावती कड़वक 130–3, 137–2, 164–5, 6, 166–3, 187–5, 191–7, 2[illegible]–5, 237–3,
3. मृगावती कड़वक 164–6
4. मृगावती कड़वक 16[illegible]–5, 327–1
5. दिन करोतीति। शब्द कल्पद्रुम।
6. चंदायन कडवक 36[illegible]–7
7. मृगावती कड़वक 84–7, 164–2
8. भाति चतुर्दश भुवनेषु स्वप्रभया दीप्यते इति। शब्दकल्पद्रुम
9. चंदायन कड़वक 51–3

मृगावती– भान, भानु :

मृगावती में भानु शब्द भान और भानु के रूप में प्रयुक्त हुआ है। मृगावती में इसका प्रयोग क्रमशः दो[1]–दो[2] बार हुआ है।

मृगावती– रवि :

इसका संस्कृत रूप रवि है। हिन्दी में तत्सम् रूप में ही रवि रूप में प्रयुक्त होता है। जिसकी स्तुति की जाती है वह रवि है।[3] प्राचीन काल से ही भारत में सूर्य को देवता मानकर उसकी पूजा की जाती रही है। रवि शब्द इसकी पौराणिक मान्यता का समर्थक है। मृगावती में इस शब्द की तीन[4] बार आवृत्ति हुई है।

भोर काल रूप रबि आवा।[5]

✠ **मृगावती– सुरपति :**

इन्द्र का देवताओं में श्रेष्ठ होने के कारण सुरपति कहा गया है। मृगावती में सुरपति शब्द एक[6] बार मिला है।

मृगावती– इन्द्र :

यह शब्द इदि धातु से बना है, जो ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि जो परम ऐश्वरशाली और वैभव से सम्पन्न है, वह इन्द्र है।[7] देवताओं का निवास स्वर्ग में है और स्वर्ग अनंत सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता है। उसका स्वामी अतुलित वैभव का स्वामी होने के कारण इन्द्र कहलाता है। मृगावती में इन्द्र शब्द का प्रयोग आठ[8] बार हुआ है।

= = = = =0= = = = =

---

1. मृगावती कड़वक 206–6, 49–5
2. मृगावती कड़वक 52–2, 164–3
3. सपते स्तूयते इति–शब्द कल्पद्रुम
4. मृगावती कड़वक 160–4, 164–1, 239–6
5. मृगावती कड़वक 164–1
6. मृगावती कड़वक 252–7
7. इंद्रतीति। इन्द्र परमेश्वर्य्येतस्मात् रन प्रत्ययः देवराजः। शब्दकल्पद्रुम
8. मृगावती कड़वक 9–5,28–4, 42–4, 42–7, 90–6, 122–4, 410–7, 419–7

(ग) भाव वाचक संज्ञा पर्याय :

जिस संज्ञा शब्द से किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण या धर्म, दशा अथवा व्यापार का बोध होता है उसे भाव वाचक संज्ञा कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ का धर्म होता है। पानी में शीतलता, अग्नि में गर्मी आदि का होना आवश्यक है। पदार्थ का गुण या धर्म पदार्थ से पृथक नहीं रह सकता। घोड़ा है तो उसमें बल है, बेग है और आकार भी है। धर्म गुण, भाव और अर्थ प्रायः पर्यायवाची शब्द हैं। भाव वाचक संज्ञा का अनुभव हमारी इंद्रियों को होता है। इस संज्ञा का बहुवचन नहीं होता है। चंदायन और मृगावती में इस प्रकार के शब्द पर्याप्त हैं और उनके समानार्थी शब्द भी समान रूप से प्रयुक्त हुये हैं। इस अध्याय में ऐसे ही शब्दों का विवेचन किया गया है।

✠ चंदायन– अनंद :

आङ् पूर्वक नन्द धातु से बने इस शब्द में अपरिमित सुख की अवस्था ध्वनित होती हैं। रामचन्द्र वर्मा ने आनंद को मन में होने वाली ऐसी अनुकूल तथा प्रिय अनुभूति माना है, जो अभीष्ट तथा सुखद परिस्थिति में होती है तथा जिसमें अभाव, कष्ट चिन्ता आदि का लेश भी नहीं होता है।[1] अनेक विद्वानों ने भावात्मक प्रसन्नता को आनंद कहा है। वस्तुतः सत्वगुण की प्रधानता से उत्पन्न चित्त का हल्कापन ही आनंद है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार का मानसिक शरीरिक दबाव मन पर नहीं रहता है। यह 'दबाव मुक्ति' ही आनंद है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक वार[2] आया है। इस शब्द से सुख की चरम सीमा का भाव ध्वनित हो रहा है।

---

1. मानक हिन्दी शब्द कोश।
2. चंदायन कड़वक 438–1

चंदायन–हुलासू :

उल्लास का विकृत रूप है। इस शब्द के प्रयोग से दाऊद मुल्ला ने नायिका की आनंदित मनः स्थिति की अनूठी व्यंजना की स्थापना की है। हुलासू शब्द सटीक और साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द का प्रयोग चंदायन में एक स्थल[1] पर ही हुआ है।

मृगावती– हुलासू :

यह संस्कृत के उल्लास शब्द का तद्भव रूप है।[2] जनसाधारण की भाषा में बहुशः प्रयुक्त होने वाले इस शब्द में प्रसन्नता के साथ–साथ उत्साह का मिलाजुला भाव भी विद्यमान है। मृगावती में इसका प्रयोग एक[3] वार हुआ है। अर्थ और काव्य सौंदर्य की दृष्टि से इस शब्द का प्रयोग सामान्य है।

मृगावती– अनंद :

इस शब्द की व्युत्पत्ति उपर्युक्त है। मृगावती में कुतबन ने अनंद शब्द का प्रयोग अभिधेयार्थ के रूप में पाँच[4] स्थलों पर किया है। सभी प्रयोग सटीक हैं। उदाहरणार्थ–

कुँवर पात यह सुनी सोहाई। का अनंद अस कहा न जाई।[5]

यहाँ पर पक्षियों द्वारा व्यक्त भविष्यवाणी को सुनकर राजकुँवर की मनः स्थिति की अभिव्यक्ति अनूठी है।

चंदायन– अनँद :

आनन्द शब्द का तद्भव रूप अनँद है। आङ–पूर्वक नंद धातु से बने इस शब्द में अपरिसीम सुख की अवस्था निहित है। रामचन्द्र वर्मा ने आनंद को मन से होने वाली ऐसी अनुकूल तथा प्रिय अनुभूति माना है, जो अभीष्ट तथा सुखद परिस्थितियों में होती है तथा जिसमें अभाव, कष्ट, चिन्ता आदि का लेश भी नहीं होता है।[6] अनेक विद्वानों ने भावात्मक

---

1. चंदायन कड़वक 438–1
2. मानक हिन्दी शब्द कोश।
3. चंदायन कड़वक 438–1
4. मृगावती कड़वक 15–3, 143–1, 200–1, 304–6, 381–7
5. मृगावती कड़वक 200–1
6. मानक हिन्दी कोश

प्रसन्नता को आनंद कहा है। वस्तुतः सत्वगुण की प्रधानता से उत्पन्न चित्त का हल्कापन ही आनंद है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार का मानसिक शारीरिक दवाव मन पर नहीं रहता। यह दबाव मुक्ति ही आनंद है।

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[1] बार हुआ है–

मैना को लोरक के आने का आभास होने पर मन प्रभुदित होने लगता है। कवि ने आनंद शब्द का प्रयोग किसी अर्थ वैशिष्ट की प्रस्तुति हेतु न करके अभिधेयार्थ में ही किया है।

✠ मृगावती– अमीं, अमिय, अमिअ :

यह शब्द अमृत का समानार्थी है। अग्नि और अमृत शब्द में ध्वनिभेद ही है किसी विशिष्ट अर्थभेद की प्रतीति प्रतीत नहीं होती है। अमीं शब्द मात्र एक[2] स्थल पर प्रयुक्त हुआ है, जबकि अमिय शब्द का सात[3] बार एवं अमिऊ का भी एक[4] बार प्रयोग हुआ है। क0 46–4 एवं 48–5 में यह शब्द अभिधेयार्थ का द्योतन करता है। अन्यत्र स्थलों पर अर्थचमत्कार की प्रस्तृति हेतु अमृत शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

मक्खन लेखें ऊधर सुहाए। जानिय जानु अमिय रस आए।[5]

मृगावती– अमरित :

मृगावती में अमिय के समानक शब्द अमरित का प्रयोग चार[6] बार हुआ है। सभी स्थलों पर अभिधेयार्थ का वाचन कर रहा है। अमरित का शुद्ध रूप अमृत है। यह संस्कृत का तत्सम रूप है।

✠ मृगावती– कलंक :

कलंक शब्द में कालिमा का अर्थ ध्वनित हो रहा है। 'मुँह पर कालिख पुतना' का

---

1. चंदायन कड़वक 438–1
2. मृगावती कड़वक 62–4
3. मृगावती कड़वक 46–4, 85–5, 60–2, 3, 267–6, 300–5 6, 362–2
4. मृगावती कड़वक 267–6
5. मृगावती कड़वक 60–3
6. मृगावती कड़वक 27–2, 28–1, 85–4, 260–5

अर्थ होता है वदनाम होना 'दोषी' ठहराया जाना। मृगावती में कलंक शब्द का प्रयोग दो[1] बार हुआ है। दोनों स्थलों पर कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में किया है। उदाहरणार्थ–

बिनु कलंक निरमर बिधि आही। दोस अउर देखावहु ताही।।[2]

उक्त कलंक शब्द का प्रयोग कलंक शब्द के साधारण अर्थ का निरूपण कर रहा है।

मृगावती– दोसू :

किसी वस्तु या व्यक्ति का वह धर्म जो उसके अपकर्ष का कारण हो दोष कहलाता है।[3] किसी वस्तु या बात में होने वाली ऐसी खराबी दोष है, जिसके कारण उसकी उपायदेयता, महात्ता में कमी होती हो।[4] अंगन्यूनता, रचना–कौशल की कमी से होने वाली त्रुटि, स्वाभाविक दुर्गुण या विकार, सौन्दर्य में बाधक तत्व, किसी प्रकार की अपूर्णता, आदि सभी दोष के विस्तृत दायरे में समाविष्ट है।

दोसू शब्द दोष शब्द का तद्‌भव रूप है। मृगावती में कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग एक वार साधारण अर्थ में किया है।

सास दिएउ रूपमिनि कहँ दोसू। मिरगावती क बुझाएसि रोसू।।[5]

चंदायन– कोप :

कामना पूर्ण न होने पर उत्पन्न मनोविकार कोप है।[6] काव्यवृत्ति की दृष्टि से क्रोध परुषता का और कोप अपेक्षाकृत कोमलता का सूचक है। तदनुरूप क्रोध में तीक्षणता एवं भीषणता की अतिशयता है, कोप में अपेक्षाकृत न्यूनता। इसी कोमलता के कारण उसे विशेष रूप से प्रणय सम्बन्धी क्रोध के साथ जोड़ा गया है।[7] क्रोध में स्थूल बाह्य अभिव्यक्ति अधिक

---

1. मृगावती कड़वक 12–4, 299–4
2. मृगावती कड़वक 12–4
3. अपकर्ष प्रयोज के वस्तुनिष्ठे धर्मभेदे। वाचस्पत्यम्
4. मानक हिन्दी कोश
5. मृगावती कड़वक 402–4
6. क्रोधे कामानाप्ति जे चित्तवृत्ति भेदे। वास्पत्यम्
7. प्रणय कोपे। वाचस्पत्यम्

है और कोप में चित्तवृत्ति पर बल। इन्हीं विशेषताओं के कारण कोप भवन शब्द का ही प्रयोग मिलता है। क्रोध भवन का नहीं, क्योंकि उस प्रकार के क्रोध में नाराजगी और अपनी बात मनवाने का अंश अधिक होता है, उच्च स्तर से वाह्य अभिव्यक्ति नहीं।

चंदायन में कोप शब्द का प्रयोग एक ही वार साधारण अर्थ में इस प्रकार मिला है–

धरमू कोप पीठ लइ भिरे। चीरें गर धरमू कै धरे।।[1]

चंदायन– रोष :

रोष शब्द की मूल धातु रुष है, जो क्रोधित होने के अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। वस्तुतः क्षोभ या अप्रसन्नता से उत्पन्न मानसिक उद्वेग रोष है। जहाँ क्रोध में प्रतिकूलता की और कोप में अप्राप्ति की विशेषता पाई जाती है, वहाँ रोष में अप्रसन्नता एवं चित्त व्याकुलता पर विशेष बल है। क्रोध के समान शक्तिशाली न होते हुए भी रोष अपनी भिन्न अर्थच्छाया के कारण कथ्य को जिस शसक्त ढंग से संप्रेषित करता है वह अपूर्व है। चंदायन में रोष शब्द का प्रयोग एक[2] बार मिला है।

✠ **चंदायन– मन :**

(1) चित्त की संकल्प और विकल्प करने वाली वृत्ति मन है। (2) बजन तौलने वाला मापक मन कहलाता है।

चालीस सेर का एक मन होता है।[3]

चंदायन में मन शब्द का प्रयोग चित्त, अंतःकरण, जी आदि के भाव का निरूपक है। दाऊद ने इस शब्द का प्रयोग तीन[4] स्थलों पर किया है।

मृगावती– मन :

मृगावती में मन शब्द की आवृत्ति मनुष्य की मनोवृत्तियों के भाव की वाचक है।

---

1. चंदायन कड़वक 133–3
2. चंदायन कड़वक 239–1
3. डा0 हरदेव बाहरी– राजवाल हिन्दी शब्दकोश
4. चंदायन कड़वक 70–7, 72–7, 72–5

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग तीन[1] स्थलों पर हुआ है।

मन महं कहेसि नियर होइ धरौं।

मृगी को पकड़ने के लिए राजकुँवर ने 'मन' में विचार किया कि पास जाकर इसे पकल लूँ। यहाँ 'मन' मनुष्य की वृत्ति का वाचक है। तीनों स्थलों पर इसी वृत्ति के द्योतन हेतु इस शब्द को अपनाया गया है।

<u>चंदायन– चित्त :</u>

प्रज्ञा, बुद्धि, समझ का वाचक है।[2] चित् शब्द यद्यपि मन का समानक है लेकिन अर्थच्छायायें भिन्न हैं। चित से मेधा या बुद्धि का भाव प्रस्फुटित होता है, जबकि मन से इस वृत्ति का आशय नहीं निकलता है। चित शब्द का अर्थ पीठ के बल जमीन पर पड़ा हुआ भी है। चंदायन में चित्त शब्द का प्रयोग दो[3] वार हुआ है। दोनों ही प्रयोग 'चित' वृत्ति के वाचक हैं।

<u>मृगावती– चित :</u>

मृगावती में भी कुतबन ने चित शब्द का प्रयोग मानव वृत्ति के प्रस्तुतीकरण हेतु किया है। कुतबन ने 'चित' शब्द को पाँच[4] बार ग्रहण किया है।

मरौं इहाँ पै चित न डोलाऊँ।[5]

यहाँ पर चित शब्द का प्रयोग एकाग्र चित्त होकर देखने के भाव का वाची है।

<u>मृगावती– मनसा :</u>

मन से ही मनसा शब्द बना है। परन्तु अर्थच्छाया की दृष्टि से दोनों शब्दों में प्रथकता है। चाहत या इच्छा के भाव को व्यक्त करने के लिए मनसा शब्द का प्रयोग सटीक है। कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार किया है–

जो मनसा चित पुरवहुँ सोई।[6]

---

1. मृगावती कड़वक 11–7, 20–2, 78–6
2. डा0 गोविन्द चातक–आधुनिक हिन्दी शब्द कोश
3. चंदायन कड़वक 1–7, 73–4
4. मृगावती कड़वक 31–6, 32–2, 30–3, 80–6, 85–5
5. मृगावती कड़वक 30–3
6. मृगावती कड़वक 27–2

जो 'चाहना' मन में की हो उसे हम पूरी करें। उक्त स्थल पर 'मनसा' शब्द मन में सोची हुई बातका द्योतक है।

'मनसा' नामों के कुल की अधिष्ठात्री देवी को कहा है तथा कश्यप ऋसि की पुत्री भी मनसा है।

मृगावती– जिय :

जी शब्द मन का ही वाचक है। मृगावती में मन के ही भाव का सम्वाहक है। मृगावती में जिय शब्द आठ[1] बार मन की वृत्ति के भाव के द्योतन हेतु प्रयुक्त हुआ है।

कुँवर वात उनसों अस कही। समलन्हि के जियं चिन्ता गही।[2]

यहाँ जियं शब्द मन का वाची है।

चंदायन– जीउ :

डा0 गोविन्द चातक ने मन चित्त, जीव, प्राण को समानार्थी माना है।[3] चंदायन में जिउ शब्द का प्रयोग तीन[4] बार मिला है। तीनों स्थलों पर प्रथक–प्रथक भाव का वाची है।

जीव विमोह गा देखत भूला।[5]

उक्त पंक्ति में जीव मन के भाव का वाचक है–

धरहु जीव न जानें कितगा, कया भई विनु साँस।[6]

यहाँ पर जीउ शब्द प्राण के भाव का द्योतक है।

मृगावती– जिउ :

मृगावती में जिउ शब्द का प्रयोग दो बार मिला है। एक बार मन के भाव वाचक दूसरा प्राण का।

आवक देहु सहेलिन्हु जो जिउ मनउँ करहु सोई।[7]

---

1. मृगावती कड़वक 29–1, 30–1, 50–1, 72–2, 74–6, 82–2, 87–1, 82–4
2. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश
3. मृगावती कड़वक 50–1
4. चंदायन कड़वक 8–1, 66–6, 69–3
5. चंदायन कड़वक 28–1
6. चंदायन कड़वक 66–6
7. मृगावती कड़वक 88–7

उक्त पंक्ति में जिउ शब्द इच्छा का वाची है।

तोर जीउ हों आपन जानो।[1]

✠ <u>मृगावती– हंस :</u>

डा0 गोविन्द चातक ने हंस को जहाँ प्राण का समानक माना है वहीं इस शब्द का प्रयोग 1. एक प्रसिद्ध जलपक्षी 2. जीवनी शक्ति, प्राण 3. निर्लिप्त आत्मा 4. सूर्य 5. संतपुरूष 6. गुझ 7. पर्वत 8. शिव, आदि के अर्थ के द्योतन हेतु भी माना है।[2] मृगावती में 'हंस' शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है।

हंस रहा केहि कारण घर में।[3]

<u>मृगावती– प्राण :</u>

प्राण का अर्थ वह है शक्ति है, जो जीव जन्तुओं को जीवित रखती है। इसके अतिरिक्त प्राण शब्द वायु, चेतना, कूटस्थ आदि के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। कुतबन ने मृगावती में प्राण शब्द का प्रयोग एक[4] बार मनुष्य की जीवन चेतना के भाव के द्योतन हेतु प्रयोग किया है।

✠ <u>चंदायन– जोहारु :</u>

डा0 हरदेव बाहरी ने जोहार शब्द नमस्कार का समानार्थी माना है।[5] जोहार को जुहार के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। जोहार शब्द मुस्लिम शासकों के समय में राजा महाराजाओं एवं सामंतशाहों के अभिवादन हेतु जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त किया जाता था। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो बार[6] हुआ है। दोनों स्थलों पर अपने व्युत्पत्तिपरक भाव को निरूपित करता है।

कहहु महर सों मोर जुहारू।[7]

---

1. मृगावती कड़वक 87–1
2. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश
3. मृगावती कड़वक 274–6
4. मृगावती कड़वक 33–7
5. राजपाल हिन्दी शब्दकोश
6. चंदायन कड़वक 37–2, 38–1
7. चंदायन कड़वक 37–2

उक्त पंक्ति में चाँदा के विवाह हेतु महर राजा के समीप सहदेव ने अपना अभिवादन भेजने के लिए जोहारू शब्द का प्रयोग सटीक किया है।

चंदायन– नमस्कार :

नम् धातु का प्रयोग झुकने के अर्थ में किया जाता है।[1] किसी के सम्मुख विनत होने का व्यंगार्थ है कि झुकने वाला व्यक्ति स्वयं को सामने वाले से न्यून मानकर उसे सम्मान का पात्र समझता है। इसी मूल भाव– 'बड़ों के प्रति सम्मान प्रदर्शन' के कारण बाद में यह शब्द नमस्कार करने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा क्योंकि नमस्कार भी किसी को आदर देने के लिए ही किया जाता है। चंदायन में नमस्कार एक[2] बार अपने साधारण अर्थ के बोधन हेतु प्रयुक्त हुआ है।

✠ **चंदायन– तुसारु :**

तुषार शब्द का विकृत रूप तुसारु है। तुसार का अर्थ हिमपात। पानी की वाष्प जम कर उसकी वर्फ में परिणति। अर्थात अधिक ठंडा तापमान। तुषारपात तभी होता है जब तापमान अधिक गिर जाता है। अर्थात अधिक सर्दी पड़ती है। तुषार शब्द में अधिक शीतलता का भाव समाहित है। तुषार और साधारण शीत में अर्थभेद यह है कि तुषार अपनी आत्यधिक शीतलता के कारण वस्तु को जला देने की क्षमता रखता है वहीं साधारण शीत में यह गुण विद्यमान नहीं है। चंदायन में 'तुसारु' शब्द दो बार आया है। दोनों[3] स्थलों पर अपने व्युत्पत्यर्थ को ध्वनित कर रहा है।

रैन झमासी परी तुसारु।[4]

तुषार सूर्य की किरणों में नहीं पड़ता रात्रि में ही पड़ता है।

चंदायन– सीऊ :

सर्दी का ही दूसरा रूप सीऊ है। दाऊद मुल्ला तुसारु और सीऊ शब्दों से अधिक

---

1. नमशब्द नत्योः। नीतिः। शब्दकल्पद्रुम
2. चंदायन कड़वक 254–1
3. चंदायन कड़वक 53–3, 408–1
4. चंदायन कड़वक 53–3

सर्दी के भाव का द्योतन करना चाहते हैं। दोनों शब्द प्रत्येक स्थल पर अपनी अर्थच्छाया के अनुरुप ही प्रयुक्त हुए है। यह शब्द दो बार आया है।[1]

लगी सीउ न पीउ तन जाई।[2]

✠ <u>चंदायन– दुख :</u>

इस शब्द का विकासक्रम निम्नवत है। संस्कृत में दुःखम् था आगे चलकर पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश में दुक्ख में परिवर्तित हो गया। आज हिन्दी में दुःखम् का तद्भव रूप दुःख के रूप में ग्रहण किया जा चुका है।

दुःख मन की वह विशेष वृत्ति अथवा वह अवांछित अनुभूति है, जो किसी आधात, उपकार, व्याधि आदि के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। सुख के अभाव या विनाश को दुःख की संज्ञा दी जाती है और वह मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार का हो सकता है। यह एक व्यापक भाव है, जो पीड़ा, व्यथा, क्लेश, संताप, वेदना, आदि को समेटे रहता है।

श्री रामचन्द्र वर्मा के अनुसार– *"दुःख अनेक प्रकार की प्रतिकूल भौतिक और मानसिक अनुभूतियों का सूचक ऐसा व्यापक शब्द है, जो अपने वर्ग प्रायः सभी पर्यायों के स्थान पर प्रयुक्त होता है" अप्रिय प्रतिकूल और हानिकारक बातें इसका कारण होती हैं। तो यह मुख्यतः मानसिक ही, पर कभी–कभी ऐसे भौतिक और शारीरिक प्रसंगो में भी इसका प्रयोग होता है जहाँ वस्तुतः कष्ट का प्रयोग होना चाहिए।"*[3]

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[4] बार मिला है। दोनों स्थलों पर अपने साधारण अर्थ को ध्वनित कर रहा है–

<u>मृगावती– दुःख, दोख, दूखी :</u>

---

1. चंदायन कड़वक 53–2, 409–2
2. चंदायन कड़वक 53–2
3. शब्द साधना पृ0 137
4. चंदायन कड़वक 50–6, 184–7

दु:ख शब्द का विकास क्रम और व्युत्पत्ति ऊपर बताई जा चुकी है। मृगावती में तीनों शब्द क्रमशः 33 बार[1] एक[2] बार और एक[3] बार प्रयुक्त हुए हैं। सभी शब्द दुख के व्युत्पत्तिपरक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

सुझर पानि देखत अति चोखा। पिअइ जो ओही न एकौ दोखा।[4]

चंदायन– वेदन :

वेदना शब्द का विकृत रूप है। वेदना शब्द की विकास यात्रा इस प्रकार है। संस्कृत में वेदना आगे चलकर प्राकृत में विअण बन गया। हिन्दी में आने पर पुनः वेदना के रूप में परिवर्तित हो गया। आज हिन्दी में वेदना शब्द अपने तत्सम रूप में ही प्रयुक्त होता है।

वेदना यद्यपि दुख या पीड़ा का पर्यायवाची शब्द है, परन्तु दोनों की अर्थच्छाया मे भिन्नता है। पीड़ा मुख्य रूप से शारीरिक और गौण रूप से मानसिक होती है। बहुत अधिक परिश्रम करने या चोट लगने से हाथ पैरों में, ज्वर से सम्पूर्ण शरीर में और किसी के दुर्व्यवहार से मन में पीड़ा होती है। मानसिक पीड़ा जब उग्र रूप धारण करती है, तव उसे वेदना कहते हैं। यह प्रायः अभाव वियोग आदि से उत्पन्न होती है और अपेक्षाकृत स्थायी होती है।

चंदायन में वेदन शब्द इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है–

कहु बाजिर तोर वेदन काहा। लोग महाजन पूँछत आहा।[5]

उक्त पंक्ति में वेदन शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बाजिर की मानसिक परेशानी की अभिव्यंजना वेदन शब्द कर रहा है।

मृगावती– वेदन :

चंदायन की भाँति कुतबन ने भी वेदन शब्द का दुख के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग किया है। वेदन शब्द की व्याख्या पहले की जा चुकी है। कुतबन ने वेदन शब्द को

---

1. मृगावती कड़वक 16–6, 31–1, 101–3, 103–2, 3, 110–3, 7, 111–1, 113–7, 114–4, 140–1, 171–1, 183–7, 237–1,2 199–6, 225–7, 232–1, 236–5, 277–4, 301–1, 316–3, 323–4, 329–1, 330–6, 331–3, 340–7, 338–1, 379–6, 382–3, 390–4, 403–1–2
2. मृगावती कड़वक 25–1
3. मृगावती कड़वक 289–3,
4. मृगावती कड़वक 25–1
5. चंदायन कड़वक 67–1

अपने व्युत्पत्ति परक अर्थ में एक वार निम्नवत् प्रयोग किया है–

वेदन दिहिहु जाइ नहिं सही। काम दगध चूना होई रही।[1]

उक्त पंक्ति में मानसिक पीड़ा की पराकाष्ठा स्पष्ट झलक रही है।

<u>चंदायन– सूला :</u>

संस्कृत के शूल शब्द का तद्भव रूप सूल है। सूल शब्द का विकास परिवथ इस प्रकार है। संस्कृत में शूल रूप आगे पाली में सूल बन गया। प्राकृत में सूल रहा और आज हिन्दी में भी सूल ही लिखा जाता है।

शूल एक रोग विशेष का भी नाम है और दु:ख के अर्थ में भी इसका प्रयोग किया जाता है।[2] शूल का एक अर्थ कॉटा भी है। सम्भवतः कांटा चुभने की तीव्र कसक के आधार पर यह शब्द पीड़ा के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। चंदायन में सूला शब्द एक वार निम्नवत् प्रयोग किया है–

जो सुख आये लोरखँ सूला।[3]

<u>चंदायन– साल :</u>

शरीर में किसी वस्तु के चुभने से उत्पन्न पीड़ा साल है। साल शब्द का विकास क्रम निम्न प्रकार है। संस्कृत में शल्य रूप में प्रयुक्त होता हुआ प्राकृत में सल्ल बन गया और हिन्दी में प्रवेश करते ही साल बन गया। इस प्रकार शल्य शब्द का तद्भव रूप साल है। यद्यपि दुख, पीड़ा, वेदना आदि शब्द एक दूसरे के समानक है लेकिन उनकी अर्थच्छायायें प्रथक–प्रथक हैं। उसी प्रकार साल शब्द से भी दु:ख का भाव तो प्रकट होता है परन्तु अर्थच्छाया भिन्न है। वेदना यदि मानसिक क्लेश का द्योतन करता है तो साल शब्द किसी वस्तुस्त के शरीर में चुभने से उत्पन्न तकलीफ के भाव का वाचक है।

---

1. मृगावती कड़वक 330–5
2. वाचस्पत्यम्
3. चंदायन कड़वक 173–2

चंदायन में यह शब्द अपने मूल अर्थ में ही प्रयुक्त किया गया है–

रकत न आवा दीस न घाऊ। हियें साल मोर उठै न पाऊ।।[1]

उक्त पंक्ति में घाव की पीड़ा को 'साल' शब्द से व्यक्त किया गया है, जो पूर्णतः सटीक है।

मृगावती– साल :

मृगावती में भी साल शब्द का प्रयोग हुआ है। साल शब्द की व्याख्या पूर्वकथित है। कुतबन ने इस शब्द को दो[2] बार ग्रहण किया है। सभी स्थलों पर अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदारहणार्थ स्वरूप–

अति तीखे ये दिप्य खर, तवहिं छिन छिन साल।[3]

चंदायन– पीर :

पीड़ा शब्द का विकृत रूप पीर या पीरा है। किसी प्रकार का मानसिक या शारीरिक आद्यात लाने अथवा कोई हानि पहुंचने पर प्राणियों को दुखित करने वाली अनुभूति पीड़ा है।[4] पीर या पीरा लोक प्रचलित शब्द है जो ध्वनि की दृष्टि से टीस की व्यंजना करता है। पीड़ा संज्ञा पीड़न से सम्बद्ध है, जिसका मुख्य अर्थ है– जोर से दवाना। जब शरीर का कोई अंग किसी प्रकार के बाह्य प्रभाव अथवा आंतरिक विकार आदि के कारण चोट खाता या दबता है तब उसके फलस्वरूप होने वाला शारीरिक कष्ट विकलता ही मुख्य पीड़ा है। हाथ यदि भारी वस्तु के नीचे दब जाता है। हाथ यदि भारी वस्तु के नीचे दब जाता है तो हाथ में पीड़ा होती है। यदि शरीर में कोई विष उत्पन्न होने के कारण कोई अंग पकने या फूलने लगता है तो उस अंग में पीड़ा होती है। शरीर के किसी एक अंग में पीड़ा होने पर प्रायः सारा शरीर और मन विकल रहता है। हिन्दी में इसके स्थान पर फारसी के दर्द शब्द का भी प्रयोग होता है। कष्ट या दुःख देने वाली किसी घटना से मन में उत्पन्न होने वाली विकलता भी

---

1. चंदायन कड़वक 69–2
2. मृगावती कड़वक 55–6 404–5
3. मृगावती कड़वक 55–6
4. मानक हिन्दी कोश

लाक्षणिक रूप में पीड़ा ही कहलाती है। यह प्रायः वियोग हानि आदि के फलस्वरूप होती है। पीड़ा वस्तुतः मानसिक कष्टों और दुःखों का ही वाचक है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक वार अपने व्युत्पत्यर्थ में हुआ है–

कै जरजाद कै पेट कै पीरा।[1]

मृगावती– पीर :

पीर शब्द का विश्लेषण उपरिनिर्दिष्ट है। कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग मृगावती में दो बार किया है। दोनों स्थलों पर दुःख के साधारण अर्थ के वाचन हेतु इनका प्रयोग प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ–

जेहि पीर जराई होई।

मृगावती– संताप :

यह शब्द संस्कृत का तत्सम रूप है। संस्कृत पाली, प्राकृत और हिन्दी तक आते–आते इस शब्द का रूप परिवर्तन नहीं हुआ है। हिन्दी में तत्सम रूप में ही प्रयुक्त होता है। संताप शब्द दुःख का समानार्थक है। कुतनबन ने इस शब्द का प्रयोग तीन[3] स्थलों पर दुःख के साधारण अर्थ निरूपण हेतु किया है।

जेहि रे संताप विरह फुनि दीन्हां।[4]

मृगावती मरोहू :

मरोड़ शब्द का ही विकृत रूप मरोहू है। जिस प्रकार दुःख, शूल, वेदना आदि कष्ट के समानार्थी दुख का समानक होते हुए भी दर्द विशेष का वाचक है। कॉटा चुभने से उत्पन्न दर्द का वाचक शूल शब्द है। ऐसा ही जन साधारण पेट से उत्पन्न दर्द का द्योतन मरोड़ शब्द से करता है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार किया है।

जो रे देख तेहि उठै मरोहू।[5]

---

1. चंदायन कड़वक 67–3
2. मृगावती कड़वक 129–6–7
3. मृगावती कड़वक 101–2, 301–4, 345–3
4. मृगावती कड़वक 101–2
5. मृगावती कड़वक 30–2

चंदायन– संताप :

चंदायन में भी संताप शब्द दुःख के समानार्थी शब्द के रूप में दो[1] बार प्रयुक्त हुआ है। दोनों स्थलों पर 'संताप' के साधारण अर्थ का द्योतन कराता है।

चंदायन– विपत्ति :

संस्कृत के 'विपद' शब्द का तद्भव रूप विपत्ति है। विपत्ति शब्द संस्कृत में विपद, प्राकृत में विपय एवं हिन्दी में प्रवेश करते ही विपत्ति बन गया।

इस वर्ग के शब्द ऐसी प्रतिकूल अवस्थाओं, घटनाओं, परिस्थितियों आदि के वाचक हैं जो किसी व्यक्ति, समाज या समुदाय को कष्ट में डाल कर चिंतित और दुःखी करती या कर सकती हैं।

विपत्ति का मूल अर्थ अनुचित, प्रतिकूल या विकट दिशा में जाना, परन्तु साधारणतः लोक व्यवहार में इसका अर्थ होता है– ऐसी घटना या स्थिति जिसके फलस्वरूप कष्ट, चिन्ता या हानि अधिक मात्रा में होती हो या होने की सम्भावना हो। मृत्यु के कारण किसी परिवार पर, संक्रामक रोग के कारण किसी समाज पर अथवा अकाल या विदेशी आक्रमण के कारण किसी देश पर विपत्ति आ सकती या आती है। विपत्ति का अंत आपसे आप भी हो सकता है और दूसरों की सहायता से भी। यदि पूरी तरह से अंत ने हो तो भी दूसरों की सहायता से इसमें बहुत कुछ कमी हो सकती है। इसके साथ प्रायः आना, झेलना, टलना, टालना, पड़ना, भुगतना और भोगना क्रियाओं का प्रयोग होता है।

डा0 हरदेव बाहरी ने विपत्ति को दुःख, सूल, वेदना आदि का पर्यायवाची माना है।[2]

चंदायन में दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग एक बार अपने अभिधेयार्थ में इस प्रकार प्रयोग किया है–

दई विपत जीउ भर संचारा।[3]

---

1. चंदायन कड़वक 184–7, 255–2
2. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
3. चंदायन कड़वक 182–3

मृगावती– विपत्ति :

विपत्ति शब्द की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में कुतबन ने विपत्ति शब्द का प्रयोग दो[1] बार साधारण अर्थ में प्रयोग किया है।

चंदायन– संकट :

संकट शब्द की रचना निम्नवत है। संस्कृत में सङ्कट (सम् + कट् + अच्) आगे चलकर प्राकृत में संकड हो गया। हिन्दी तक आते–आते इसका तद्भव रूप संकट बन गया।

संकट का मुख्य अर्थ है– संकारा या संकीर्ण मार्ग अथवा स्थान। इसी आधार पर दो पहाड़ों के बीच में जो बहुत ही तंग और छोटा रास्ता होता है उसे भी संकट या गिरिसंकट कहते हैं। परन्तु अपने परवर्ती और बहुप्रचलित अर्थ में यह शब्द ऐसी स्थिति का सूचक है। जिसमें दोनों अथवा सभी ओर कष्ट या विपत्तियां दिखाई देती हों और इसी लिए इसमें सुख तथा स्वच्छन्दता पूर्वक निर्वाह करने या रहने के लिए या तो अवकाश बहुत कम रह गया हो या बराबर कम होता हुआ दिखाई देता हो। यह ऐसी कठिन और विकट परिस्थिति का सूचक है जिसमें मनुष्य, देश या समाज का बहुत कुछ उपकार या हानि की सम्भावना हो। इसमें कष्ट या विपत्ति सिर पर आकार पड़ती तो नहीं परन्तु इतने पास या सामने आ जाती है कि मनुष्य को अपनी रक्षा के लिए चिन्तित और विकल अवश्य कर देती है।

चंदायन में संकट शब्द का प्रयोग एक वार इस प्रकार हुआ है–

केदै आइ सकट कै मेला।[2]

यहाँ संकट शब्द मुशीवत के ही साधारण अर्थ का वाची है।

मृगावती– आपदा :

मृगावती में दुःख या मुशीवत के पर्यायवाची शब्द के रूप में आपदा शब्द का प्रयोग एक[3] बार साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

---

1. मृगावती कडवक 288–2, 293–1
2. चंदायन कड़वक 399–2
3. मृगावती कडवक 336–7

✠ <u>चंदायन– गँधाई :</u>

गँधाई शब्द गंध शब्द से बना है। चंदायन में गंध से ही सुगंध बना है। गंधाई शब्द जन साधारण के बीच बुरी गंध के भाव में प्रयुक्त होता है। चंदायन में कुतबन ने इस शब्द का प्रयोग सुगंध के भाव में प्रयुक्त किया है–

जस बसंत बन फूलइ, चहूँ दिसि बास गँधाई।[1]

<u>चंदायन– मँहक :</u>

महक का तद्भव रूप महँक है। महँक शब्द सुगंध का समानार्थी है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[2] बार साधारण अर्थ में आया है।

<u>चंदायन– सुगंधि :</u>

सुगंध का विकृत रूप सुगंधि है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[3] बार साधारण अर्थ में हुआ है। सुंगंधि का अर्थ है अच्छी गंध।

<u>चंदायन– वास :</u>

वास शब्द भी सुगंध का पर्यायवाची है। वास शब्द चंदायन में एक बार[4] प्रयुक्त हुआ है। सुगंध के साधारण अर्थ का वाची है।

मेघ सुगंध आह असरारू। चोबा बास होय मँहकारू।।[5]

<u>मृगावती– निमिष :</u>

निमेष शब्द का विकृत रूप निमिष है। आँख की पलक झपकने में लगा समय निमेष कहलाता है। चंदायन में इस शब्द का एक वार प्रयोग हुआ है–

बरिसा सैं वरु निमिष गँवावै।[6]

'निमिष' शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हेतु किया गया है। कवि रूपमनि की विरह वेदना की तीव्रता के द्योतन हेतु निमिष के बराबर का समय 100 वर्षों के बराबर लग रहा है।

---

1. चंदायन कड़वक 158–7
2. चंदायन कड़वक 28–3
3. चंदायन कड़वक 28–2
4. चंदायन कड़वक 158–7
4. चंदायन कड़वक 206–3
6. मृगावती कड़वक 301–2

मृगावती– घरी :

घरी शब्द संस्कृत में घटिका, प्राकृत में घडिअ और हिन्दी में इसका तद्भव रूप घड़ी है। घरी–घड़ी का ही बदला रूप हैं घड़ी भी समय का एक मान है। पल में और घड़ी में अंतर इतना है कि 'पल' एक पल को कहते हैं और घरी 60 पल के बराबर होती है। अर्थात 24 मिनट का समय। 'घड़ी' छोटे घड़े के अर्थ में भी प्रयोग होता है। यहाँ पर कुतबन ने 'घरी' शब्द का प्रयोग 'समय माप' के अर्थ में ही किया है।

धन जोवन परिवार सेउं घरीं मांझ बिहरंत।[1]

घरी और पल दोनों शब्द कुतबन ने अल्प समय के अर्थ में प्रयोग किए हैं। पल में जहाँ तीव्रता का भाव झलक रहा है वहीं घरी में अल्प ठहराव आभासित है।

✠ मृगावती– नेग :

शुभ अवसर पर नौकर चाकर एवं अन्य आश्रितों को धन आदि देने को नेग कहते हैं। दिया गया उपहार ही नेग कहलाता है। कुतबन ने मृगावती में 'नेग' शब्द का प्रयोग एक वार किया है–

राकस भूत जो रे मोहि खाही। तौ मारग सिधि नेग लगाही।[2]

उक्त पंक्ति में राजकुँवर मृगावती के मिलन हेतु कंचनपुर के लिए प्रस्थान कर रहा है। वह कहता है कि रास्ते में यदि भूतप्रेत मुझे खा जाए तो मैं समझूंगा कि सिद्धि रूपी 'नेग' प्रसाद मुझे मिल गया है। यहाँ पर नेग शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– दाई :

नेग का ही समानक दाई है। यद्यपि दाई शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है (जैसे– उपमाता, धाय, बच्चा जनाने वाली औरत, दासी एवं नौकरानी) कुतबन ने दाई शब्द

---

1. मृगावती कड़वक 415–7
2. मृगावती कड़वक 114–2

का प्रयोग 'नेग' के ही भाव के द्योतन हेतु किया है–

जो तोरि बाट सो मोरी दाई।[1]

यहाँ पर रूपमिनी के यह कहने पर कि मुझे इस वर्ष राक्षस खा जायेगा। अर्थात मैं मर जाऊँगी। राजकुँवर कहता है कि जो तेरा करने का रास्ता है वही रास्ता मृगावती के न मिलने पर या मृगावती की प्राप्ति करने में मुझे भी दान में मिला है। सूफी सम्प्रदाय प्रेम का पंथ है और इस प्रेम पंथ में प्राणों की आहूति साधक उपहार मानता है। कुतबन ने राजकुँवर के इस भाव को 'दाई' शब्द से व्यक्त किया है।

मृगावती– पसाऊ :

पसाऊ शब्द भी नेग या दाई का समानक है। पसाऊ शब्द का संस्कृत रूप प्रसाद हैं प्राकृत में पसाय तथा हिन्दी में पसाऊ है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक स्थल पर मिला है–

दइरे असीस जोबिखी बहुरे परएन्हि बहुत पसाउ।[2]

राजकुँवर के जन्मोत्वसव पर राजा ने ज्योतिषियों को बहुत सा धन दौलत दिया। इसी दिए गये धन या वस्तुओं को 'पसाऊ' शब्द से व्यंजित किया है। पसाऊ शब्द सटीक अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

✠ **चंदायन– नेह, सनेह :**

संस्कृत में इस शब्द का रूप स्नेह है। प्राकृत में नेह, अपभ्रंश और हिन्दी में नेह है अर्थात नेह और सनेह स्नेह के तद्भव रूप हैं।

संस्कृत में 'स्नेह' के कई अर्थों में एक है। चिपकना या चिकनाहट और दूसरा अर्थ तेल भी है। चिकना और तरल पदार्थ या तेल सदा नीचे की ओर ही ढ़लता है; इसी आधार पर तात्विक दृष्टि से जो प्रीति अपने से छोटों के प्रति होती है मुख्यतः वही स्नेह है।

---

1. मृगावती कड़वक 127–1
2. मृगावती कड़वक 16–7

परन्तु अब इसका प्रयोग बराबर वालों के साथ होने वाली प्रीति के सम्बन्ध में भी अधिकता से होने लगा है। प्रस्तुत प्रसंग में यह मनुष्यों के ऐसे पारस्परिक सम्बंध का वाचक है जिसमें दोनों ओर से सब व्यवहार बहुत ही शुद्ध, सरल और सुखद रूप से चलते रहते हों। आपसी व्यवहार में न तो कभी कहीं कटुता आने पाती है और न लखाई। यह बहुत हृदय की शुद्धता और स्वार्थ हीनता का सूचक होता है और प्रायः घनिष्ट परिचय या सम्बन्ध के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। कुछ अवस्थाओं में यह प्राकृतिक या स्वाभाविक भी हो सकता है; अर्थात् समान गुण, धर्म विचार आदि भी इसके मूल में हो सकते हैं। चंदायन में नेह और स्नेह शब्द क्रमशः एक–एक बार प्रयुक्त हुए हैं–

आयेउँ तोरैं नेह कुवारी।[1]

चॉद सनेह मनायसि देवा।[2]

दोनों स्थलों पर 'नेह' और 'सनेह' शब्द व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। विशुद्ध प्रेम की तीव्रता उक्त दोनों पंक्तियों में परिलक्षित हो रही है।

<u>मृगावती– नेह :</u>

नेह शब्द की व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में नेह शब्द का प्रयोग छैः वार[3] हुआ है। सभी स्थलों पर नेह शब्द सात्विक प्रेम के रूप को निरूपित कर रहा है।

नेह लागि जो रे जिउ देई। दुवौ जग धरम मोल सो लेई।।[4]

उक्त पंक्ति में प्रेम की पराकाष्ठा प्रतिविम्बित हो रही है। नेह शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>चंदायन– पिरम :</u>

प्रेम का विकृत रूप प्रेम है। संस्कृत में प्रेमन् शब्द का तद्भव रूप प्रेम है। इसका प्राकृत में पेम और बराबर वालों में होता है। किसी उत्तम सुन्दर बात, वस्तु अथवा श्रेष्ठ सत्ता

---

1. चंदायन कड़वक 210–2
2. चंदायन कड़वक 175–1
3. मृगावती कड़वक 27–1, 36–6, 41–4, 150–4, 174–2, 303–6
4. मृगावती कड़वक 174–2,

के प्रति स्वाभाविक रूप से होने वाला सात्विक झुकाव या प्रवृत्ति ही वास्तविक रूप से प्रेम है, जैसे देश या साहित्य के प्रति होने वाला प्रेम। परन्तु लौकिक व्यवहार में प्रेम का प्रयोग प्रायः मोह जन्य अवस्था स्वार्थमूलक श्रृंगारिक क्षेत्र में यह स्त्री पुरूष के उस प्रेम का वाचक है जो साधारण अनुराग और स्नेह से बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ हो। इसमें ऊपर कही हुई वासनाहीन विशुद्ध प्रेमपूर्ण स्थिति की भी थोड़ी बहुत छाया या रंगत होती है और व्यवहार के निर्वाह की दृढ़ता और पुष्टता का भी कुछ भाव होता है।

चंदायन में पिरम शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है–

पिरम भुलान कहसि नहिं बाता।[1]

यहाँ प्रेम शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होता है।

<u>मृगावती– पेम, पिरम :</u>

मृगावती में पेम और पिरम शब्द क्रमशः ग्यारह[2] वार और एक बार[3] प्रयुक्त हुए हैं–

देखत रूप पेम चित गहा।[4]

मृगी को देखकर राजकुँवर मोहित हो गया। यहाँ पर 'पेम' शब्द अपने मूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>मृगावती– पिरीति :</u>

प्रीति का परिवर्तित रूप पिरीति है। प्रीति का प्रयोग अधिकतर लौकिक व्यवहार में प्रायः प्रेम के समान ही होता है। इसमें अनुराग वाले तत्व भी हैं और स्नेह वाले भी। व्युत्पत्तिक दृष्टि से प्रीति और प्रिय का धात्वर्थ है– जिसे देखने या पाने से मन तृप्त और प्रसन्न हो ऐसी वस्तु के प्रति मन में जो उत्कंठा पूर्ण प्रवृत्ति होती है वहीं 'प्रीति' है। यह श्रृंगारिक क्षेत्र के सिवा पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी प्रयुक्त होता है। मृगावती में

---

1. चंदायन कड़वक 67–5
2. मृगावती कड़वक 20–1, 22–5, 23–1, 25–4, 27–1, 222–2–3, 223–2, 224–2, 224–2, 238–4–7
3. मृगावती कड़वक पिरम 22–3
4. मृगावती कड़वक 20–1

पिरीति शब्द एक बार अपने व्युत्पत्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

ससि पिरीति पुनि जासों कराई।[1]

<u>चंदायन– पियार :</u>

प्यार शब्द का बदला रूप पियार है। साधारणतः हमारी भाषा में प्रीति और प्रेम के स्थान पर प्रायः हिन्दी का प्यार और अरबी का मुहब्बत शब्द प्रयुक्त होता है। प्यार शब्द में प्रेम और प्रीति के अधिकांश तत्व समाहित हैं। इसी कारण इस शब्द का प्रयोग प्रेम और प्रीति के स्थान पर आधिक्य में होता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग अपने अभिधेयार्थ में हुआ है–

पिरत पियार भुगति कस भागु।[2]

<u>चंदायन– राता :</u>

राता शब्द से अनुरक्त का भाव ध्वनित होता है। अनुरक्त ही अनुराग का वाची है। अनुराग शब्द संस्कृत के 'राग' शब्द में अनु उपसर्ग लगा देने से बना है। वैयक्तिक क्षेत्र में किसी व्यक्ति के आचरण, व्यवहार आदि देखने से हमारे मन पर जो रंग था या रंगत चढ़ती है उसे राग कहते हैं। राग हो जाने पर हमारी जो अनुकूल और मधुर मानसिक स्थिति होती है, वह अनुराग है। सारांश यह है कि किसी बात या व्यक्ति की ओर शुद्ध भाव से मन लगाना ही उसके प्रति होने वाला अनुराग है। इसका विपर्याय विराग है। अनुराग का प्रयोग प्रायः अच्छे अर्थों में ही होता है; जैसे– चित्रकला, संगीत या साहित्य के प्रति होने वाला अनुराग। श्रृंगारिका क्षेत्र में यह आरंम्भिक या हल्के प्रेम का भी सूचक होता है। व्यक्तियों के विचार से यह एक पक्षीय भी हो सकता है और उभय पक्षीय या पारस्परिक भी हो सकता है।

चंदायन में 'राता' शब्द का प्रयोग दो[3] स्थलों पर हुआ है–

कै दरसन काहू कै राता।[4]

उक्त स्थल पर बाजिर का चॉदॉ को देखने पर मूर्क्षित होने की स्थिति में लोग पूँछ

---

1. मृगावती कड़वक 25–5
2. चंदायन कड़वक 52–4
3. चंदायन कड़वक 55–17, 67–5
4. चंदायन कड़वक 67–5

रहे हैं कि क्या किसी को देखकर अनुरक्त (राता) हो गया है ? व्युत्पत्यक दृष्टि से यह शब्द अपने मूल भाव का द्योतक है।

✠ चंदायन– निउता :

न्योता शब्द का विकृत रूप निउता है। न्योता निमंत्रण देने के अर्थ का वाची है। किसी भोज विवाह आदि के अवसर पर अपने इष्ट मित्रों को बुलाने की न्योता संज्ञा से है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो बार[1] हुआ है–

निउता गोवर छतीसों जाती।[2]

चंदायन– बायन :

डा0 परमेश्वरी दयाल गुप्त ने 'बायन' शब्द का निमंत्रण का समानक माना है।[3] उनके अनुसार बायन का अर्थ है निमंत्रण अर्थात 'न्योता'। यह शब्द चंदायन में एक बार प्रयुक्त हुआ है–

कै बायन विखवार सँचारैं।[4]

✠ चंदायन– विधि :

विधि का संस्कृत रूप निधि, पाली रूप विधि, प्राकृत विहि और हिन्दी में विधि रूप मिलता है। विधि सृष्टिकर्ता अर्थात विधाता का वाचक है और विधि काम करने के तरीका का भी द्योतन करता है। चंदायन में विधि शब्द का प्रयोग काम करने के तरीके के भाव का वाचक है। चंदायन में विधि शब्द का प्रयोग एक[5] बार मिला है।

चंदायन– मंत्र :

मंत्र का संस्कृत रूप मन्त्र, पाली में मंत, प्राकृत में भी मंत और हिन्दी में मन्त्र रूप मिलता है। मंत्र भी दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। 1. देवताओं की सिद्धि के लिये और

---

1. चंदायन कडवक 35–1, 35–2
2. चंदायन कड़वक 35–2
3. चंदायन पृष्ठ 205
4. चंदायन कड़वक 216–2
5. चंदायन कड़वक 208–7

2. उपाय संज्ञा के वाचनार्थ। चंदायन में मंत्र शब्द उपाय के अर्थ का द्योतन कर रहा है। यह शब्द चंदायन में एक बार आया है–

हिरदैं रैन मंत्र एक साजा।[1]

चंदायन जुगुति :

जुगुति का अर्थ है कोई कठिन कार्य करने का उपाय। इस शब्द का संस्कृत रूप मुक्ति, प्राकृत जुत्ति और हिन्दी में युक्ति है। चंदायन में इसका प्रयोग एक[2] बार हुआ है।

चंदायन– निदान :

निदान का अर्थ है उपाय। यह शब्द निधि के पर्याय के रूप में चंदायन में एक बार[3] आया है।

चंदायन– उपाई :

उपाई का शुद्ध रूप उपाय है। यह शब्द एक स्थल पर ग्रहण किया गया है–

परिहरि निसरेउँ कवन उपाई।[4]

✠ **चंदायन– भडहाई :**

विशुद्ध लोक वाणी का शब्द है। भड़याई का अर्थ है चोरी। यह शब्द चंदायन में एक[5] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– चोरी :

भड़पाई का पर्यायवाची शब्द चोरी है। इस शब्द का संस्कृत रूप चौर्य, प्राकृत में चोरिअ और हिन्दी में चोरी मिलता है। चंदायन में एक[6] बार इस शब्द का प्रयोग मिलता है।

= = = = =0= = = = =

---

1. चंदायन कड़वक 197–2
2. चंदायन कड़वक 88–2
3. चंदायन कड़वक 346–6
4. चंदायन कड़वक 346–3
5. चंदायन कड़वक 237–7
6. चंदायन कड़वक 211–1

प्रकरण—4

विशेषण परक पर्याय

(4) विशेषण परक पर्याय

वे शब्द जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं। विशेषण कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में विशेषण ऐसे विकारी शब्द हैं, जो प्रत्येक दशा में संज्ञा या सर्वनाम की गुण, संख्या आदि की दृष्टि से विशेषता बलताते हैं। विशेषण का कार्य विशेष्य को अन्य समान वस्तुओं से पृथक करना होता है। विशेषण विशेष्य के क्षेत्र को मर्यादित भी करता है और वस्तु विशेष के स्वाभाविक गुण या धर्म का बोध भी कराता है। भाषा में विशेषणों का विशेष महत्व है, अतएव कुशल कवि विभिन्न सदर्भों में विम्ब योजना और अर्थ व्यंजना को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये सटीक विशेषणों का भी प्रयोग करता है। इस दृष्टि से 'चदायन' और 'मृगावती' के पर्यायवाची शब्दों का विशेषण में पर्यायों का विवेचन भी समान रूप में महत्वपूर्ण है। चंदायन और मृगावती में प्रयुक्त कतिपय महत्वपूर्ण विशेषण पर्यायों का विवेचन इस प्रकार है–

✠ <u>अगनित :</u>

गणित शब्द में 'अ' उपसर्ग लगाने पर अगणित बना है। चंदायन में अगणित का ही विकृत रूप 'अगनित' प्रयुक्त हुआ है। अतिश्योक्ति अलंकार का श्रृजन करने के लिये दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है–

अगनित बीर बहुल धनुकारा सात सहस चले कटकारा।।[1]

<u>नाऊँ को गिना :</u>

शब्दिक अर्थ है जिसके नाम न गिने जा सकें। कवि ने भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया में लय और तुक की आवश्यकता पूर्ति हेतु इस शब्द का श्रृजन किया है। सम्भवतः अन्यत्र इस शब्द की प्राप्ति असम्भव सी प्रतीत होती है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति मात्र एक स्थल[2] पर हुयी है।

---

1. कड़वक 97–2
2. कड़वक 154–5

जाहिं न गीने :

'नाऊँ को गिना' का सटीक और सशक्त पर्यायवाची शब्द है। भावाभिव्यक्ति एवं श्रुति माधुर्य की दृष्टि से दाऊद मुल्ला ने जिन पर्यायों का प्रयोग किया है, उससे दाऊद मुल्ला का हिन्दी शब्दों पर असाधारण अधिपत्य स्पष्ट परिलच्छित होता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दाऊद ने मात्र एक ही स्थल[1] पर किया है। एक स्थल[2] पर इसी शब्द का प्रयोग 'जावें न गिने' के रूप में भी किया है। दोनों स्थलों पर इन शब्दों का प्रयोग काव्य में अतिश्योक्ति अलंकार के श्रृजन हेतु किया है।

अपारु :

'अपारु' 'अपार' शब्द का विकृत रूप है। 'अपार' शब्द 'पार' शब्द में अ उपसर्ग जोड़ देने से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है जिसका पार न पाया जा सके। अपार शब्द व्यापकता का द्योतक है। दाऊद मुल्ला ने 'अपारु' शब्द का प्रयोग अपार संख्या के द्योतन हेतु दो स्थलों पर प्रयुक्त किया है। यथा–

1. मंदिर घेरे वीर अपारु।[3] 2. नागर चुतुर अपार।।[4]

दाऊद मुल्ला ने निम्न स्थल पर अपारु शब्द का प्रयोग मलिक मुबारक की दान क्षमता और वाहुबल द्योतन के लिये किया है।

मलिक मुबारिक दुनि क सिंगारु। दान जूझ बड़ बीर अपारु।[5]

न कोऊपारा :

का शाब्दिक अर्थ हुऊ कोई पार न पा सक। अर्थात अपार। कवि की नवीन शब्द श्रृजन की क्षमता अद्वितीय है। अ उपसर्ग के स्थान पर 'न कोउ' का प्रयोग अलोकनीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि दाऊद की काव्य सौंदर्य स्थापन की ललक अनायास ही ऐसे शब्द श्रृजन करती चली जाती है। चंदायन में 'न कोऊ पारा' शब्द का प्रयोग एक ही स्थल[6] पर हुआ है।

---

1. कड़वक 152–2
2. कड़वक 154–4
3. कड़वक 177–3
4. कड़वक 73–7
5. कड़वक 13–1
6. कड़वक 21–5

अंत न पावा :

अनन्त का दूसरा रूप अंत न पावा है। इसका शाब्दिक अर्थ है कोई अंत नहीं। इस शब्द के प्रयोग में दाऊद की चाहत संख्या वल के द्योतन की प्रतीत होती है। यह शब्द चंदायन में एक ही बार इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है।

एक सहस फरकार चलावा। तूरा सीगा अंत न पावा।।[1]

✠ चंदायन– अयानाँ, अवानंद, अयानी, अयाने :

ये दोनों अज्ञ अथवा अज्ञान शब्द के तद्भव रूप हैं और उसी अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं। कई बार किसी बालक की अपरिपक्व बुद्धि को व्यक्त करने के लिये भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।[2] चंदायन में अयाना एक[3] बार, अवानां एक[4] बार, अयानी एक[5] बार एवं अयाने शब्द का प्रयोग भी एक[6] ही बार हुआ है। तीन स्थलों पर पुलिंग के रूप में एवं एक स्थल पर स्त्रीलिंग का वाचक है। इस शब्द का प्रयोग सर्वत्र किसी व्यंजार्थ के द्योतन हेतु न होकर मात्र मूर्खता की प्रतीति हेतु प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ–

बात सुनत सब मिले सयाने। कै तुम्ह नरवई भये अयानें।।

यहाँ पर अयाना शब्द किसी विशिष्ट प्रयोजन से नहीं किया गया है।[7]

मूरख, मूर्ख मुरूख :

ये मूर्ख शब्द के तद्भव रूप है। मूर्ख शब्द मुह धातु से बना है, जो बुद्धि अथवा ज्ञान से रहित होने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि बुद्धि शून्य व्यक्ति ही मूर्ख है।

इस शब्द की चंदायन में तीन[8] बार आवृत्ति हुयी है। तीनों बार प्रथक–प्रथक रूप इस प्रकार हैं– मूरख, मूर्ख एवं मूरूख। सर्वत्र किसी अर्थ विशेष की अभिव्यक्ति के लिये इनका प्रयोग न होकर मात्र अभिधेयार्थ के रूप में इनका प्रयोग किया गया है।

---

1. चंदायन कड़वक 97–5
2. ज्ञान रहितिभाव – शब्द कल्प द्रुम।
3. चंदायन कड़वक 39–1,
4. चंदायन कड़वक 39–2
5. चंदायन कड़वक 68–1
6. चंदायन कड़वक 202–2
7. चंदायन कड़वक 68–1
8. चंदायन कड़वक 90–6, 67–7, 68–1

✠ <u>गँवार :</u>

ग्राम्य का अपभ्रंश रूप गाँव और इसी शब्द से गँवार बना है। गँवार शब्द मूर्खता का द्योतक है। गँवार शब्द का चंदायन में मात्र एक ही[1] बार प्रयोग हुआ है। बाजिर के लिये गंवार शब्द का प्रयोग सटीक एवं साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>बुद्धिहीनै :</u>

यह शब्द नितान्त बुद्धि शून्यता का द्योतक है। मंदमति भी मूर्ख का पर्यायवाची शब्द है, लेकिन बुद्धिहीन और मंद मति में अंतर यह है कि, जिसमें बुद्धि हो लेकिन उसकी आयु के अनुसार अपेक्षित विकाश न हुआ हो मंदमति कहा जायेगा। परन्तु बुद्धिहीनता से स्पष्ट ध्वनित होता है कि अमुक व्यक्ति में अंशमात्र भी बुद्धि का समावेश नहीं है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक ही बार हुआ है जो मूर्खता का वाचक है। किसी विशिष्ट अर्थ की प्रतिति हेतु इसका प्रयोग नहीं किया गया है।

परा बरह बुधि हीनै होरा।। कड़वक 202–4

<u>बउचक :</u>

बकचर शब्द से बऊचक बना है। बक का अर्थ है बगला। 'बगला भक्त' शब्द ढोंगी, पाखण्डी अथवा मूर्खता के भाव का व्यंजक है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दाऊद ने इस प्रकार किया है।

पेट कहौं सुन बउचक राजा। कड़वक 89–1

<u>अनारी :</u>

अनाड़ी शब्द का तद्‌भव रूप अनारी है। अनाड़ी शब्द अमुक कार्य में व्यक्ति की अदक्षता का द्योतक है। इस शब्द से ध्वनित होता है कि किसी विशेष व्यक्ति को किसी विशेष कार्य में भले ही दक्षता उपलब्ध हो, लेकिन अन्य कार्य में कुशल न होने के भाव को अनारी शब्द से ही व्यंजित किया जायेगा।

---

1. चंदायन कड़वक 67–7

चंदायन में अनारी शब्द मूर्ख का बाचक है। इसका प्रयोग चंदायन में दो[1] स्थलों पर हुआ है।

देखत विष चढ़हि मंतर न माने। गासर काह अनारी जाने।।[2]

यहाँ पर नायिका की बैनी रूपी सर्प के डसरे पर अनारी बैद्य मंत्र प्रभावहीन हो जाता है। अनारी शब्द मूर्ख के भाव की अभिव्यक्ति करने के लिये प्रयुक्त हुआ है।

✠ **चंदायन– अवगाह :**

अवगाह का अर्थ है अथाह[3] जिसकी कोई याह न हो अर्थात अति गहरा। डा0 हरदेव बाहरी ने अवगाह का अर्थ किया है अति गहरा स्थान[4] इस प्रकार अवगाह भाव वाचक संज्ञा होती है। चंदायन में प्रयुक्त अवगाह शब्द विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त किया गया है। उदाहरणार्थ–

सरवर एक सफरि भरि रहा। झरना सहस वॉच तिंह बहा।

अति अवगाह न पायइ थाहा। बातें चूक सराहऊँ काहा।।[5]

उक्त पंक्ति में प्रयुक्त अवगाह शब्द सरोवर की विशेषता का बाचक है। इसलिये प्रस्तुत स्थल पर अवगाह शब्द विशेषण का ही वाची है। इस शब्द की चंदायन में दो[6] बार आवृत्ति हुयी है।

चंदायन– अथह :

अथाह शब्द का तद्भव रूप है। अथाह शब्द थाह शब्द में 'अ' उपसर्ग लगा देने से बनता है। थाह का तात्पर्य है एक निश्चित गहराई। और अथाह का तात्पर्य है जिसकी थाह न हो। अति गहरा। इस शब्द का चंदायन में एक[7] स्थल पर प्रयोग हुआ है।

चंदायन– कलंकी :

कलंक शब्द से बना है। कलंक भाव वाचक संज्ञा है। 'ई' प्रत्यय जोड़ देने से कलंकी शब्द बना है, जो विशेषण का द्योतक है।

---

1. चंदायन कड़वक 76–4, 87–7
2. चंदायन कड़वक 76–4
3. डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त चंदायन पृ0 88
4. डा0 हरदेव बाहरी हिन्दी शब्द कोश
5. चंदायन कड़वक 21–1, 2
6. चंदायन कड़वक 21–2, 79–5
7. चंदायन कड़वक 26–6

चंदायन में यह शब्द दो[1] बार आया है। दोनों बार अभिधेयार्थ की ही प्रस्तुति हेतु प्रयुक्त हुआ है। किसी विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हेतु नहीं। उदाहरण इस प्रकार है–

चाँद कलंकी चितहिं सुखानी। एक खण्ड नाहीं नौ खण्उ जानी।।[2]

चंदायन– दोखी :

दोष भाववाचक संज्ञा में 'ई' प्रत्यय के योग से दोषी विशेषण शब्द का निर्माण हुआ है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति मात्र एक ही स्थल पर इस प्रकार हुयी है।

भल बात हौं दोखी। किहँ लग कहत सँभारों।।[3]

उपर्युक्त दोखी शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में ही हुआ है।

✠ **मृगावती– नीच :**

हिन्दी में नीच और नीचा दोनों ही शब्द जन साधारण द्वारा प्रयुक्त किए जाते हैं। नीच का अर्थ है निकृष्ट, अधम, खल एवं दुष्ट व्यक्ति। अत्यंत नीच पूर्ण आचरण। नीचा शब्द इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। 1. कम ऊंचाई वाला; जैसे– नीची दीवार, नीची छत। 2. झुका हुआ; जैसे– नीचा सिर 3. निम्न स्तर पर स्थित; जैसे– नीची सड़क।

मृगावती में नीच शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

ऊँच न नीच बराबरि पाँती। देखत दसन होइ मन सांती।।[4]

कुतबन ने उक्त पंक्ति में नीच शब्द कम ऊँचाई के अर्थ में प्रयुक्त किया है। कवि मृगावती के दाँतों की सुंदरता का निरूपण करते हुए कहना चाहता है कि उसके दाँतों की पंक्ति समान है न उनमें से कुछ दाँत ऊँचे हैं न नीचे। 'नीच' शब्द 'नीचे' के भाव का द्योतन कर रहा है।

---

1. चंदायन कड़वक 272–4, 275–3
2. चंदायन कड़वक 272–4
3. चंदायन कड़वक 276–7
4. मृगावती कड़वक 61--5

मृगावती– हीन :

हीन शब्द भी कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। 1. खाली के भाव का वाचक है– (जैसे– जलहीन, बलहीन) 2. अपने आपको हीन समझने की वृत्ति का भी द्योतन करता है। 3. तुच्छता, ओछापन के भाव का वाचन भी इस शब्द से होता है।

कुतबन ने 'हीन' शब्द का प्रयोग उक्त सभी प्रकारों से हटकर 'नीची' वस्तु के भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया है–

हीन न ऊँच क्षोभ मुँह जोरी।[1]

मृगावती के नाक के नथुने या छिद्र न आपस में नीचे हैं न ऊँचे मुँह के अनुरूप सुन्दर हैं। यहाँ पर 'हीन' वस्तु के नीचे के भाव का वाचक है। इसीलिए 'नीच' का समानक हुआ।

✠ चंदायन– नीके :

नीका शब्द अच्छा, उत्तम, भला आदि के अर्थ का वाचक है। प्राकृत में इसका रूप णिक्क और हिन्दी में नीका है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो[2] बार मिला है– दोनों स्थलों पर 'सुन्दर' के अर्थ का बोधक है।

राजा नीके करहु सगाई।[3]

चंदायन– भल :

'भला' शब्द का परिवर्तित रूप 'भल' है। संस्कृत के भद्र शब्द का तद्भव रूप भला है। पाली में इसका रूप भद्द एवं प्राकृत में भल्लऊ है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग तीन[4] वार किया गया है। तीनों वार अच्छा के साधारण अर्थ का द्योतन करता है–

गावहि कवित्त नाच भल करहीं।[5]

यहाँ पर नाच की विशेषता भल शब्द से व्यक्त हो रही है।

---

1. मृगावती कड़वक 59–3
2. चंदायन कड़वक 37–3, 38–4
3. चंदायन कड़वक 38–4
4. चंदायन कड़ववक 28–7, 29–4, 47–4
5. चंदायन कड़वक 29–4

मृगावती– भली, भले :

कुतवन ने मृगावती में भला शब्द का प्रयोग भली और भले के रूप में क्रमशः दो बार[1] और एक[2] बार किया है।

राजपूत रूपवंत जो भले।[3]

'भले' शब्द 'अच्छे' के साधारण भाव की प्रस्तुति हेतु प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– सुन्दर :

सुन्दर शब्द 1. खूबसूरती के भाव का वाचक है; जैसे (सुन्दर लड़का), 2. शुभ का वाचक (सुन्दर महूर्त)। चंदायन में एक बार इसका प्रयोग मिलता है–

सुन्दर फागुन (. . .) री। केस सिंगार क (. . . .)[4]

चंदायन– सलौने :

सलोना शब्द सुन्दर के भाव का वाचक है। चंदायन में 'सलौने' शब्द सुन्दर के पर्यायवाची शब्द के रूप में एक बार प्रयुक्त हुआ है–

कस सर पाग सलोने।[5]

'सलोना' शब्द यहाँ पाग की सुन्दरता का वाचन कर रहा है।

मृगावती– लोना :

कुतवन ने सलोना को लोना के रूप में एक वार प्रयुक्त किया है–

अति रे दानि लोना बहु गुना।[6]

'लोना' शब्द राजा की सुन्दरता का द्योतन कर रहा है।

मृगावती– चोखा :

डा0 हरदवे बाहरी ने 'चोखा' शब्द सुन्दर या अच्छा का समानक माना है।

मृगावती में इस शब्द को एक बार सुन्दर के अर्थ में अपनाया गया है–

---

1. मृगावती कड़वक 12–3, 254–4
2. मृगावती कड़वक 18–5
3. मृगावती कड़वक 18–5
4. चदायन कड़वक 55–3
5. चंदायन कड़वक 146–7
6. मृगावती कड़वक 12–2

सुधर पानि देखत अति चोखा।[1]

उक्त पंक्ति में 'चोखा' शब्द पानी की अच्छाई बता रहा है।

चंदायन– पियारा :

प्यारा शब्द का विकृत रूप है। संस्कृत में प्रियक शब्द का तद्भव रूप प्यारा है। प्राकृत में इसका रूप पिरअऊ और अपभ्रंश में पिअरऊ है। यह शब्द चंदायन में एक बार प्रयुक्त हुआ है।

नाऊँ मुहम्म्द जात पियारा।[2]

उक्त पंक्ति में 'पियारा' शब्द मुहम्मद को चाहने के अर्थ का द्योतक है।

चंदायन दुलारू :

दुलारू का हिन्दी रूप दुलारी है। यह दुलारा शब्द का स्त्री रूप है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है।

कैसैं आह सो चाँद दुलारू।[3]

उक्त पंक्ति में दुलारी शब्द चाँद के लिए प्रयुक्त किया गया है।

चंदायन– बीर :

बीर का अर्थ है बहादुर। इस शब्द का संस्कृत रूप वीर और हिन्दी बीर है। चंदायन में इसकी तीन बार आवृत्ति हुई है।

अगनित बीर बहुत धनुकारा।[4]

चंदायन– सूर :

सूर शब्द ही सूरमा है। इसका संस्कृत रूप शौर्यमान् और इसी का तद्भव रूप सूर या सूरमा है। यह बहादुर या बीर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[5] बार हुआ है।

---

1. मृगावती कड़वक 25–1
2. चंदायन कड़वक 6–1
3. कड़वक 51–3
4. चंदायन कड़वक 3–1, 30–2, 97–2
5. चंदायन कड़वक 25–5

✠ <u>चंदायन– रूप :</u>

रूप का अर्थ है 1. सूरत 2. प्रकृति 3. प्रकार 4. नमूना 5. सौंदर्य एवं 6. शरीर। संस्कृत में रूप 'रूप' ही है, प्राकृत में रूअ और हिन्दी में तत्सम रूप में 'रूप' शब्द मिलता है। चंदायन में रूप का प्रयोग एक बार सुन्दरता के अर्थ में हुआ है।

ससहर रूप भई उठ रेखा।[1]

उक्त पंक्ति में कवि चाँदा का ललाट सौंदर्य का चित्रण कर रहा है।

<u>चंदायन– स्वरूप :</u>

स्वरूप शब्द भी अनेक अर्थों का वाची है। संज्ञा रूप में 1. आकृति 2. विशेषता 3. प्रकार विशेषण रूप में 1. अपनी विशेषता से युक्त 2. तुल्य और 3. सुन्दर।

स्वरूप शब्द संस्कृत का तत्सम रूप है। इसका प्राकृत रूप 'सरूप' और हिन्दी में स्वरूप है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग सुन्दरता के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है।

नैन सरूप सेत मह कारे।[2]

<u>मृगावती– रूप :</u>

मृगावती में भी चंदायन की भाँति रूप शब्द का प्रयोग सौंदर्य के अर्थ में पाँच[3] बार किया गया है।

<u>मृगावती सुरूप :</u>

स्वरूप शब्द मृगावती में रूप के पर्यायवाची के रूप में सुन्दरता के भाव के वोधन हेतु तीन[4] बार प्रयुक्त हुआ है।

अति सुरूप भर जोबन बारी।

'अति सुरूप' का अर्थ है अति सुन्दर।

---

1. चंदायन कड़वक 77–5
2. चंदायन कड़वक 79–1
3. मृगावती कड़वक 20–1, 28–1, 46–3, 263–5, 25–3
4. मृगावती कड़वक 27–5, 28–2, 71–4

प्रकरण—5

क्रिया बोधक पर्याय

(क) सकर्मक क्रिया पर्याय

(ख) अकर्मक क्रिया पर्याय

(5) क्रिया वोधक पर्याय

जिस शब्द से किसी काम का करना या होना समझा जाय उसे क्रिया कहते हैं जैसे– पढ़ना, खाना, पीना आदि। क्रिया विकारी शब्द हैं, जिसके रूप, लिंग, वचन और पुरूष के अनुसार बदलते हैं। क्रिया का मूल धातु है। धातु क्रियापद के उस अंश को कहते हैं जो किसी क्रिया के प्रायः सभी रूपों में पाया जाता है। तात्पर्य यह है कि जिन मूल शब्दों से क्रियायें बनती हैं उन्हें धातु कहते हैं। उदाहरणार्थ– पढ़ना, क्रिया को लें। इसमें ना प्रत्यय है जो मूल धातु पढ़ में लगा है। इस प्रकार पढ़ना क्रिया की धातु पढ़ हुई। पं0 किशोरी दास बाजपेयी के अनुसार, ''हिन्दी में सभी धातुएं स्वतन्त्र हैं व्यंजनान्त नहीं।''[1]

हिन्दी में क्रियायें धातुओं के अलावा संज्ञा और विशेषण से भी बनती हैं, जैसे– काम + आना = कमाना। चिकना + आना = चिकनाना आदि।

व्युत्पत्ति अथवा शब्द निर्माण की दृष्टि से धातु दो प्रकार की होती है– (1) मूल धातु, (2) यौगिक धातु। मूल धातु स्वतंत्र होती है। यह किसी दूसरे शब्द पर आश्रित नहीं होती है। खा, देख, पी इत्यादि।

यौगिक धातु किसी प्रत्यय के योग से बनती है। जैसे– खाना से खिलाना, पढ़ना से पढ़ाना आदि।

यौगिक धातु की रचना तीन प्रकार से होती है–

(1) धातु में प्रत्यय लगाने से सकर्मक और प्रेरणार्थक धातुएं बनती हैं।

(2) कई धातुओं को संयुक्त करने से संयुक्त धातु बनती है।

(3) संज्ञा विशेषण से बनने वाली नाम धातु।

रचना की दृष्टि से क्रिया के समान्यतः दो भेद हैं–

(क) सकर्मक (ख) अकर्मक।

---

1. हिन्दी शब्दानुशासन

<u>सकर्मक क्रिया</u> :

सकर्मक क्रिया उसे कहते हैं जिसका कर्म हो या जिसके साथ कर्म की सम्भावना हो, अर्थात जिस क्रिया के व्यापार का संचालन तो कर्ता से हो पर, जिसका फल या प्रभाव किसी दूसरे व्यक्ति या दूसरे व्यक्ति या वस्तु अर्थात कर्म पर पड़े। उदाहरणार्थ– श्याम आम खाता है। इस वाक्य में श्याम कर्ता है, खाने के साथ उसका कर्तृरूप से सम्बन्ध है। प्रश्न होता है क्या खाता है ? उत्तर है आम। इस तरह आम का सीधा संबंध खाने से है। अतः आम कर्मकारक है। यहाँ श्याम के खाने का फल 'आम' पर अर्थात कर्म पर पड़ता है। इसलिये खाना क्रिया सकर्मक हुई।

<u>अकर्मक क्रिया</u> :

जिन क्रियाओं का व्यापार और फल कर्ता पर ही हो वे 'अकर्मक' कहलाती हैं। अकर्मक क्रियाओं का 'कर्म' नहीं होता, क्रिया का व्यापार और फल दूसरे पर न पड़कर कर्ता पर पड़ता है। उदाहरणार्थ– श्याम सोता है। इसमें सोना क्रिया अकर्मक है। श्याम कर्ता है, सोने की क्रिया उसी के द्वारा पूरी होती है। अतः सोना क्रिया अकर्मक हुई।

(क) <u>सकर्मक क्रिया पर्याय</u> :

✠ <u>चंदायन– काटसि</u> :

काटना क्रिया का परिवर्तित रूप काटसि है। चंदायन में इसका प्रयोग एक बार हुआ है।

नहाँ भयउ जर कँवरू, काटसि खेद सियार।[1]

यहाँ काटना शब्द मानव शरीर को काटने के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

---

1. चंदायन कड़वक 130–7

चंदायन घापर :

'घायल करना' काटने का समानार्थी है। यदि 'काटसि' शब्द लकड़ी या अन्य वस्तु काटने के अर्थ में प्रयुक्त होता तब ऐसी स्थिति में 'घायल करना' शब्द काटसि का पर्यायवाची नहीं हो सकता था। काटसि एवं घायर शब्द समानार्थी होते हुए भी एक दूसरे में निहित विवक्षाओं को अपने में समाहित करने की क्षमता नहीं रखते हैं। काटना शब्द काटने के विस्तृत भाव को प्रदर्शित करता है। शरीर के टुकड़े करके काटने के भाव को भी काटना शब्द प्रदर्शित करने की क्षमता रखता है एवं शरीर के अंग को थोड़ा घाव करने की क्रिया का भी काटना शब्द वाचक है। जबकि घायल शब्द अर्थसंकोच के कारण शरीर के टुकड़े–टुकड़े करने के भाव को प्रदर्शित करने की क्षमता नहीं रखता है। घायल शब्द शरीर के आंशिक कॉटने के क्रिया का ही बोधन करने की क्षमात रखता है। चंदायन में घायर शब्द एक ही[1] बार प्रयुक्त हुआ है।

✠ चंदायन– खसि :

डा0 हरदेव बाहरी ने खिसकना क्रिया का अर्थ 'इधर–उधर हो जाना' बताया है। चंदायन में खसि शब्द का प्रयोग इसी भाव के द्योतन हेतु एक[2] बार हुआ है।

चंदायन– ढहि :

ढहना क्रिया का विकृत रूप ढहि है। ढह धातु में ना प्रत्यय के योग से ढहना शब्द की रचना हुई है। खिसकना शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। समीप बैठे व्यक्ति जब दूरी बनाकर बैठते हैं तब खिसकना शब्द से ही इस क्रिया का बोध होता है, जमीन के धसने को भी खिसकना शब्द से व्यक्त किया जाता है एवं मकान की दीवाल भी जब नीचे को ढहती

1. चंदायन कड़वक 298–2
2. चंदायन कड़वक 24–5

है तब इस क्रिया का द्योतन भी खिसकना शब्द से हो सकता है। जबकि ढहना शब्द एक संकुचित अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। दीवाल ढहना, पहाड़ ढहना, नदी की कगार ढहना आदि क्रियाओं को बोधन ही ढहना शब्द से हो सकता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[1] बार हुआ है।

✠ चंदायन– खियाई, खाई :

'खियाई, खाई' 'खाना' क्रिया के विकृत रूप हैं। चंदायन में यह शब्द क्रमशः एक[2]–एक[3] बार प्रयुक्त हुए हैं। खाने के साधारण भाव के वाचक हैं।

मृगावती– खाये, खाही, खाई, खाऊ :

मृगावती में कुतवन ने चारों शब्दों का खाने के साधारण अर्थ में क्रमशः 'खाये' शब्द दो[4] बार शेष सभी एक[5] बार, एक[6] बार और एक[7] बार प्रयुक्त हुये हैं।

चंदायन– चाखी :

खाना का पर्यायवाची शब्द होते हुए भी अर्थच्छाया प्रथक–प्रथक दृष्टिगत होती है। चाखी चख धातु से बना है। खाना शब्द से जहाँ खाने की पूरी क्रिया का भाव ध्वनित होता है, जबकि चखने में इस भाव का अभाव है। जनसाधारण चखने शब्द का प्रयोग भोजन के स्वाद मात्र तक सीमित रखते हैं। चंदायन में चखना शब्द का प्रयोग खाने के अर्थ में किया गया है। चाखी शब्द एक[8] स्थल पर प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– चख, चाखी, चखा :

मृगावती में कुतवन ने तीनों शब्दों का प्रयोग खाने के अर्थ में क्रमशः एक[9] बार एक[10] बार और एक[11] ही बार किया है।

---

1. चंदायन कड़वक 13–2
2. चंदायन कड़वक 103–3
3. चंदायन कड़वक 271––3
4. मृगावती कड़वक 60–1, 74–2
5. मृगावती कड़वक 300–5
6. मृगावती कड़वक 74–3
7. मृगावती कड़वक 100–4
8. चंदायन कड़वक 184–4
9. मृगावती कड़वक 74–4
10. मृगावती कड़वक 72–5
11. मृगावती कड़वक 73–3

चंदायन– जैवत :

साहित्यिक दृष्टि से यह शब्द यद्यपि कोशकारों की दृष्टि से ओझल हो गया है, लेकिन जन साधारण के बीच अभी भी अपने परिचय का मुँहताज नहीं है। ग्रामीण अंचल में विवाह आदि के अवसर पर खाना 'खाने' को 'जै लेना' कहते हैं। चंदायन में दाऊद मुल्ला ने इस जन प्रचलित शब्द का प्रयोग दो[1] बार अभिधेयार्थ में किया है–

आठ मास धरि जैंवत, सात मॉस लहि मुण्ड।[2]

मृगावती– भखि :

भखि शब्द भखना क्रिया का विकृत रूप है। यह शब्द भोजन या खाना का पर्याय है। जहाँ भोजन और खाना में इस शब्द का विकसित रूप दृष्टिगत होता है वहीं भखना शब्द में भख क्रिया का प्रारंभिक रूप नजर आ रहा है। भखना शब्द आज भी जनभाषा का प्रचलित शब्द है। यह अशिक्षित और ग्रामीण अंचल में खाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन मृगावती में भखि शब्द सम्पन्न और बुद्धिजीवी लोगों द्वारा खाने के अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होता है–

मरइ देहु मोहि विष भखि जिअन न कौनहु भॉति।[3]

उक्त पंक्ति में राजकुँवर मृगावती के वियोग में विष खाने को मॉग रहा है। यहाँ भखि शब्द खाने के भाव का वाची है।

मृगावती– खाब :

खाना क्रिया का विकृत रूप है यह शब्द भी खाने के अर्थ में ही प्रयोग होता है। मृगावती में एक ही[4] स्थल पर इस शब्द का प्रयोग खाने के साधारण अर्थ में किया गया है।

मृगावती– चबाही :

चबान क्रिया का परिवर्तित रूप चबाही है। यद्यपि खाना, भोजन चबाही सभी

---

1. चंदायन कड़वक 143–4, 163–4
2. चंदायन कड़वक 143–2
3. मृगावती कड़वक 100–6
4. मृगावती कड़वक 179–7

समानार्थी शब्द हैं, परन्तु सभी की अर्थच्छायायें भिन्न हैं। 'भोजन' भूख तृप्ति हेतु प्रयुक्त पदार्थों को खाने की क्रिया के भाव को प्रदर्शित करता है, परन्तु चबाना शब्द खाद्य पदार्थों को ग्रसने की क्रिया के पूर्व के रूप को कहते हैं। ग्रसने के पूर्व किसी वस्तु को मुँह में चबाना पड़ता है। कुतवन ने इसी स्थिति का द्योतन चबाही क्रिया से यहाँ पर किया है–

बदन पखारहिं पान 'चबाही'। हँसहिं सेज पर केलि कराही।[1]

✠ मृगावती– खोजि, खोज :

खोजना क्रिया का परिवर्तित रूप खोजि और खोज है। मृगावती में इन शब्दों की आवृत्ति क्रमशः एक[2]–एक[3] बार हुई है।

चित्र देखि कै खोजि चितेरा। खोज करहि तौ मिलइं सबेरा।।[4]

मृगावती– ढूँढहि :

ढूड़ना क्रिया का ही रूप ढूड़हि शब्द है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग तीन[5] बार हुआ है। तीनों स्थलों पर यह शब्द ढूँड़ना क्रिया के अभिधेयार्थ की प्रतिति कराता है।

✠ चंदायन– जनाई :

डा0 हरदेव बाहरी ने जनाई शब्द की इस प्रकार व्याख्या की है– जनाई का तात्पर्य है 1. प्रसव कराने की क्रिया 2. प्रसव कराने की मजदूरी 3. प्रसव में सहायक होने वाली दाई एवं 4. परिज्ञान, परिचय कराने की क्रिया।[3] चंदायन में जनाई शब्द एक वार आया है–

चली बिरस्पत सरुज पठाई। चाँद नारि कहँ वात जनाइ।[6]

यहाँ पर जनाई शब्द का प्रयोग गुप्त तथ्य को प्रकट करने के भाव में हुआ है अर्थात बिरस्पत ने चाँद को वासतविक तथ्य से अवगत कराया। जनाई शब्द अपने व्युत्पत्ति परक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

---

1. मृगावती कड़वक 241–2
2. मृगावती कड़वक 3–2
3. मृगावती कड़वक 3–2,
4. मृगावती कड़वक 3–2
5. मृगावती कड़वक 21–7, 22–1, 286–1
6. राजपाल हिन्दी शब्द कोश

चंदायन– कहुआई :

कहुआई शब्द भी बात जनाने के भाव के द्योतन हेतु किया हे। यहाँ पर छिपे तथ्य को प्रकट करने की क्रिया को कहुआई कहा है।

जइस में सुना तइस कहु आई।[1]

चंदायन बात उभारी :

दाऊद मुल्ला ने 'बात उभारी' शब्द का प्रयोग बात जनाने या बात कहने का भाव प्रकट करने हेतु किया है।

जाई विरस्षत महरि जुहारी। कइ गुहारि फुनि बात उभारी।[2]

उक्त स्थल पर 'बात उभारी' शब्द अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

✠ चंदायन– जूझैं :

डा0 हरदेव बाहरी ने 'जूझना' शब्द को उठापटक करना, हाथापायी करके मारना के अर्थ में प्रयुक्त किया है। 'जूझैं' शब्द जूझना क्रिया का ही विकृत रूप है। चंदायन में यह शब्द एक बार इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है–

जो तुम्ह है जूझै कै साधा।[3]

यहाँ पर जूझना शब्द का अर्थ दुश्मन ने भिड़कर टकराने उसको हथियारों या हाथों से मारने से है। यह शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ को ध्वनित करता है।

चंदायन– मारसि, मार :

मारसि और मार शब्द मारना क्रिया के परिवर्तित रूप हैं। मारना शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'मारना' से जान से मारने की भी ध्वनि निकलती है और हाथापायी की भी। जूझने में केवल हाथापायी का ही भाव प्रदर्शित होता है। जूझना शब्द 'अर्थसंकोच' के कारण

1. चंदायन कड़वक 277–1
2. चंदायन कड़वक 299–1
3. चंदायन कड़वक 122–3

सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि मारना शब्द व्यपकता का प्रतीक है। चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः एक–एक[1] बार प्रयुक्त हुए हैं। दोनों जान से मार देने के बोधक हैं।[1]

महिं तू मार करहु दुइ आधा।[2]

'मार' शब्द यहाँ पर जान से मार देने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– डसहुँ :

डसना क्रिया का विकृत रूप है। डसना क्रिया का विकासक्रम इस प्रकार है– इस शब्द का सं0 रूप दंशन, पाली रूप डसन, प्रा0 रूप डंसण एवं हिन्दी में डसना है। सांप के काटने की क्रिया को डसना कहते हैं। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग सॉप के काटने के साध ारण भाव को व्यक्त करने के लिए एक बार हुआ है।

कै सिर दाह को डसहुँ कीरा।[3]

चंदायन– खाई :

खाना क्रिया का विकृत रूप खाई है। खाना क्रिया का प्रयोग भोजन करने के अर्थ में अर्थात खाना खाने के लिये प्रयुक्त होता है। दाऊद मुल्ला ने जनवाणी को मुखरित किया है। सांप के काटने पर जनसाधारण के मुँह से अनायास निकलता है– 'अमुक को सांप ने खा लिया।' चंदायन में जन प्रचलित इस शब्द को सॉप के डसने के भाव वोधन के लिए अपनाया गया है। चॉदा लेटी हुई है। सॉप ने आकर उसे खा लिया अर्थात डस लिया। शब्द का सटीक प्रयोग है।

बास लुबुध मऊंग एक आवा, उतरहिं चॉदहि खाइ।[4]

---

1. चंदायन कड़वक 122–3, 141–3
2. चंदायन कड़वक 122–3
3. चंदायन कड़वक 67–3
4. चंदायन कड़वक 332–7

चंदायन– देखई, दखेऊ, देखहुँ, दीखा, देखसि, देखी, दीही, देखत, देखि, देखें, देख, देखा :

देखना क्रिया का विकास क्रम इस प्रकार है– संस्कृत भाषा में दृश्, दृक्ष्यति शब्द पाली भाषा में दक्खति बना, प्राकृत में देक्ख, अपभ्रंश में दिक्खि और हिन्दी में देखना रूप में स्थापित हुआ। यह शब्द 'देख' धातु में ना प्रत्यय जोड़ने से (देख + ना) देखना हुआ।

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओं के वाचक हैं जो हम अपनी आँख या दृष्टि (शारीरिक और मानसिक दोनों) से (क) किसी कार्य, घटना, वस्तु आदि का ज्ञान अथवा परिचय प्राप्त करने के लिए, (ख) अपनी जिज्ञासा या लालसा पूरी करने के लिए, अथवा (ग) किसी विशिष्ट प्रकार की मानसिक भावना से प्रेरित होकर करते हैं। यद्यपि अनेक अवसरों पर इस वर्ग से अधिकतर शब्दों का प्रयोग साधारणतः देखना के अर्थ में ही होता है, तथापि इन सभी शब्दों में कई प्रकार के सूक्ष्म अंतर या भेद हैं ही।

देखना सबसे अधिक प्रचलित और अर्थ की दृष्टि से बहुत व्यापक है और प्रायः अपने वर्ग के अनेक दूसरे शब्दों के समानार्थक रूप में प्रयुक्त होता है। 'देखना' का मुख्य सम्बन्ध आँखों अर्थात देखने की इंद्रिय से है; जैसे– उसकी आँखें खराव हो गई है, इसलिए वह देख नहीं सकता है। परन्तु कुछ अवसरों पर इसका प्रयोग मानसिक रूप से ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध में अर्थात जानने या समझने के अर्थ में भी होता है; जैसे– (क) आपने देख लिया न कि वह कितना धूर्त है। कुछ प्रसंगों में यह काल्पनिक दृष्टि के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होता है; जैसे– मैं अभी से देख रहा हूँ कि इसका परिणाम भविष्य में क्या होगा ? कुछ अवसरों पर यह किसी बैरी या शत्रु की कार्रवाइयों के प्रति अवज्ञा या उपेखा भी सूचित करता है और

इसमें उनका बदला चुकाने का भाव भी निहित होता है; जैसे– अच्छा मैं भी देख लूँगा कि उनमें कितनी शक्ति है। इसके अतिरिक्त यह किसी वात के गुण, दोष आदि ध्यान पूर्वक समझने का भी सूचक होता है; जैसे– (क) मैंने आपका लेख देख लिया है; वह ठीक है, अब छपने के योग्य हो गया है। (ख) जब तक वैद्यजी न देख लें, तब तक उसे पथ्य देना ठीक नही। कुछ अवस्थाओं में यह किसी विशिष्ट अवस्था या दशा में रहकर उसके सुख–दुख आदि के भोग का भी परिचायक होता है; और इस अर्थ में वह प्राणियों के अतिरिक्त निर्जीव पदार्थों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होता है; जैसे– (क) हमने वे दिन भी देखे है, जब उनके पास खाने तक का ठिकाना नहीं था। (ख) इस नगर ने कई बार अच्छे और बुरे सभी प्रकार के दिन देखे हैं। कुछ अवस्थाओं में यह नकारात्मक कथन के रूप में सहन करने के भाव का भी सूचक होता है; जैसे– हम उनके ये अत्याचार नहीं देख सकते।

चंदायन में ये शब्द क्रमशः दो[1] बार, पाँच[2] बार, एक[3] बार, एक[4] बार, दो[5] बार, आठ[6] बार, दो[7] बार, छैः[8] बार, आठ[9] बार, दो[10] बार, पाँच[11] बार, तीन[12] बार प्रयुक्त हुए हैं। सभी अपने अभिधेयार्थ के प्रस्तोता हैं।

मृगावती– देखहिं, देखि, देखिन्ह, देखा, देखिहु, देखत, दीख, दीठा, देखी, देखहु, देखुऊ, देखिय, देखेहु :

मृगावती में उक्त शब्द देखना के ही रूप हैं। देखना शब्द की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। कुतवन ने भी दाऊद मुल्ला की भाँति देखना शब्द का अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया है। सभी शब्दों का प्रयोग अपने व्युत्पत्ति परक अर्थ के द्योतक हैं। इनका प्रयोग क्रमशः निम्न प्रकार हुआ है।

---

1. चंदा0 क0 12–5, 43–5,
2. चंदा0 क0 36–7, 43–7, 48–7, 68–5, 73–1
3. चंदा0 क0 52–5
4. चंदा0 क0 50–2
5. चंदा0 क0 49–4, 66–4
6. चंदा0 क0 42–6, 46–1, 51–2, 73–4, 74–5, 76–1, 77–4, 78–3
7. चंदा0 क0 35–4, 75–4
8. चंदा0 क0 18–2, 21–3, 25–3, 28–1, 30–3, 76–4
9. चंदा0 क0 20–6, 24–3, 34–7, 35–5, 55–2, 69–5, 70–1, 77–1
10. चंदा0 क0 20–7, 29–3
11. चंदा0 क0 24–1, 30–2, 38–1, 56–4, 69–3,
12. चंदा0 क0 20–7, 29–3

देखहिं एक[1] बार, देखि तीन[2] बार, देखिन्ह एक[3] बार, देखा दो[4] बार, देखहु दो[5] बार, देखत दो[6] बार, दीख एक[7] बार, दीठा एक[8] बार, देखी एक[9] बार, देखहु एक[10] बार, देखेऊ एक[11] बार, देखिय एक[12] बार एवं देखहु एक[13] बार प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– ताकै :

'ताकना' क्रिया शब्द की विकासपरक व्युत्पत्ति निम्नवत मिली है– संस्कृत भाषा में इस शब्द का तत्सम् रूप तर्कण है। प्राकृत में तर्कण का तक्कण बन गया और हिन्दी में आते–आते ताकना रूप में परिवर्तित हो गया। ताकना शब्द 'ताक' धातु से निर्मित हुआ है। तर्कण का तात्पर्य है तर्क या वुद्धि के द्वारा कोई वात जानना या समझना। परन्तु हिन्दी में 'ताकना' जिन अर्थों में प्रचलित है, वे उक्त मूल अर्थ से बहुत दूर हो गये हैं। ताकना में मुख्य भाव अच्छी तरह और ध्यानपूर्वक देखने का है। कुछ स्थानों पर यह रखवाली करने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है; जैसे– हम अभी आते हैं तव तक हमारा सामान ताकते रहना, अर्थात ध्यान रखना कि कोई उसे उठा न ले जाय।

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है–

नाउँ न कहसि नहिं तार्क, बाजिर मुरुख गँवार।[14]

यहाँ पर ताकै शब्द आँख खोलकर देखने के अर्थ में हुआ है।

मृगावती– ताके :

चंदायन की भाँति मृगावती में भी ताकना शब्द का प्रयोग एक[15] बार हुआ है। शब्द की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या उपरोक्त है–

हँसत सहेलिन्ह सौंह न ताके।

यहाँ पर कुतवन ने ताके शब्द देखने के साधारण अर्थ में प्रयुक्त किया है।

---

1. मृगा0 क0 18–1, 2. मृगा0 क0 3–2, 24–7, 31–4, 3. मृगा0 क0 24–1, 4. मृगा0 क0 24–2, 289–1
5. मृगा0 क0 31–6,32–1, 6. मृगा0 क0 25–6, 27–7, 7. मृगा0 क0 21–3, 8. मृगा0 क0 25–2
9. मृगा0 क0 19–3, 10. मृगा0 क0 15–6, 11. मृगा0 क0 32–2, 12. मृगा0 क0 28–7
13. मृगा0 क0 33–2, 14. चंदायन कड़वक 67–7 15. मृगावी कड़वक 61–5

चंदायन– झॉकत, झॉकसि :

झॉकत और झॉकसि क्रियायें हिन्दी की झॉकना क्रिया के विकृत रूप हैं। झॉकना संस्कृत के अध्यक्ष और प्राकृत के अज्झक्ख शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है आँखों के समक्ष आना। 'झॉकना' का प्रयोग मुख्यतः ऐसी चीजें देखने के सम्बन्ध में होता है, जो या तो हमारी प्रत्यक्ष या सीधी दृष्टि से किसी प्रकार ओझल हों या नीचे की ओर हों। ऐसी चीजें देखने वाले को किसी बीच वाले अवकास की ओर झुककर अथवा नीचे की ओर झुककर देखनी पड़ती हैं। इसी क्रिया को झॉकना कहते हैं। हो सकता है कि झॉकना का व्युत्पत्तिक सम्बन्ध इसी झुकना से हो क्योंकि झॉकने में मुख्य भाव कुछ झुककर देखने का ही है। जब हमें गली में से कोई बुलाता है तब हम खिड़की में या छत पर से झॉककर देखते हैं कि वह कौन है ? और क्या कहता है ?

चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः एक–एक वार प्रयुक्त हुए हैं।

नीर डरावन हरियर पानु। झॉकत हिये कीन्ह डर आनु।[1]

झॉकसि नाब झरोखा काढ़ी।[2]

उपर्युक्त दोनों स्थलों पर झॉकत और झॉकसि क्रियायें अपने व्युत्पत्यर्थ का द्योतन कर रही है। प्रथम में सरोवर में झुककर झॉकने का भाव ध्वनित हो रहा है और दूसरी पंक्ति में भी झरोखा से झॉकना शब्द की मूल भावना का आभास दिला रही है।

मृगावती– झखाई :

झॉकना का ही विकृत रूप है। झॉकना की व्युत्पत्ति परक विवेचना ऊपर की जा चुकी है। कुतवन ने भी मृगावती में 'झॉकना' क्रिया का देखने के समानक शब्द के रूप में प्रयोग किया है, परन्तु दाऊद मुल्ला की भाँति निहित अर्थच्छाया की दृष्टि से नहीं बल्कि देखने के साधारण अर्थ में ही प्रयोग किया है। कुतवन ने इस शब्द को एक[3] बार ग्रहण किया है।

---

1. चंदायन कड़वक 24–4,
2. चंदायन कड़वक 66–3
3. मृगावती कड़वक 23–1

<u>चंदायन– निहारा</u> :

निहारा क्रिया निहारना से बना है। और 'निहारना' संस्कृत भाषा के 'निभालन' शब्द का तद्भव रूप है। निहारना क्रिया का प्रयोग साधारणतः किसी अद्‌भुत, मनोहर या सुखद दृश्य, वस्तु अथवा व्यक्ति की ओर टक लगाकर या ध्यानपूर्वक और प्रशंसात्मक दृष्टि से अथवा मुग्ध होकर कुछ समय तक देखते रहने के लिए किया जाता है। 'निहारना' शब्द का प्रयोग केवल मूर्त पदार्थों को देखने के लिए प्रयुक्त होता है मानसिक सौन्दर्य की अनुभूति हेतु इस शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

चंदायन में 'निहारा' शब्द का प्रयोग एक बार[1] मिला है। कवि ने इस शब्द का प्रयोग व्युत्पत्यर्थ में ही किया है।

<u>मृगावती– निहारत :</u>

कुतवन ने भी निहारना क्रिया का प्रयोग 'निहारत' के रूप में एक वार किया है।

पंथ निहारत ताहि कर लोइन खीनी जोति।[2]

उक्त पंक्ति में 'निहारत' शब्द अपने मूल अर्थ का वाचक है।

<u>चंदायन– निरखि :</u>

निरख धातु में ना प्रत्यय के योग से निरखना क्रिया की व्युत्पत्ति प्रतीत होती है। निरखना का अर्थ है देखना–ताकना। निरख शब्द का तत्सम रूप संस्कृत में निरीक्षण है। निरीक्षण ही पाली और प्राकृत में निरक्खण बना। आगे चल कर हिन्दी में निरीक्षण का तद्भव रूप निरखना हो गया। निरखना और निहारना एक भाव के द्योतक होते हुए भी अर्थच्छाया प्रथक–प्रथक है। साधारण रूप से किसी सलौनी, सुखद, मनोरम और अद्‌भुत वस्तु को एक–टक देखते रहने की क्रिया को निरखना कहते हैं। निहारना भी इस क्रिया का वाचक हो

---

1. चंदायन कड़वक 147–1
2. मृगावी कड़वक 32–6

सकता है। फिर दोनों अर्थच्छायाओं में कुछ सूक्ष्म भेद हैं। निरखना शब्द मूर्त तथा अमूर्त दोनों पदार्थों के अर्थ में प्रयुक्त हो सकता है लेकिन निहारना मूर्त रूप को देखने में प्रयुक्त होगा। निरखना जहाँ विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त होता है वहीं निहारना अर्थ संकोच के कारण मात्र मूर्त रूप को देखने में प्रयोग होगा।

चंदायन में 'निरखि' शब्द का प्रयोग एक बार[1] निम्नवत् हुआ है– व्युत्पत्ति परक अर्थ में।

मृगावती– निरखेसि :

'निरखेसि' 'निरखना' का ही विकृत रूप है। इस शब्द की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या उक्त ही ही है। कुतवन ने इस शब्द का प्रयोग एक बार देखने के अर्थ में किया है।

निरखेसि साउज चर चइ खरा।[2]

चंदायन– हेरत–हेरा :

हेरना क्रिया के ही वाचक हेरत और हेरा शब्द हैं। प्राकृत में इसी का रूप का हेर है। अवधी में इस का अर्थ है– ढूँढ़ना[3] ढूँड़ना निर्पेक्ष क्रिया नहीं है अर्थात इसमें इधर उधर देखने का भाव स्वतः ही समाहित है। इसी कारण कहीं–कहीं देखने के लिए भी इस शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है। रामचन्द्र वर्मा ने इसका अर्थ देते हुए इनमें दोनों क्रियाओं का समावेश कर दिया है। उनके अनुसार इस शब्द का अभिप्राय है– ढूँड़ने के लिए इधर–उधर देखना[4], विचार करना, जाँचना परखना आदि अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति की सम्भावनाएं जितनी इस शब्द में निहित है, इस शब्द के अन्य पर्याय उनका वहन करने में अक्षम हैं।

चंदायन में हेरत और हेरा शब्द की आवृत्ति क्रमशः एक–एक बार हुई है।

तेहि दिन कर लूँ बहुर कही, पाछें हेरत आइ।[5]

करहिं गुहार चोर महिं हेरा।[6]

---

1. चंदायन कड़वक 19–2
2. मृगावती कड़वक 19–2
3. अवधी कोश
4. मानक हिन्दी कोश
5. चंदायन कड़वक 261–6
6. चंदायन कड़वक 209–5

उक्त पंक्तियों में हेरत और हेरा शब्द अपने व्युत्पत्यर्थ में ही प्रयुक्त प्रतीत होते हैं।

<u>चंदायन– चितई</u> :

निरखना और निहारना शब्दों का प्रयोग जहाँ ध्यान पूर्वक देखने के लिए किया जाता है, वहाँ चितवना किसी की ओर देखकर शीघ्रतापूर्वक निगाह हटा लेने के लिए प्रयुक्त होता है।[1]

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[2] बार हुआ है।

<u>मृगावती– जोई, जोवत</u> :

जोवना क्रिया का परिवर्तित रूप जोई और जोवत है। जोवना क्रिया का विकास परिपथ इस प्रकार है– संस्कृत में दृश शब्द प्राकृत तक आते–आते जो बन गया और आगे चलकर अपभ्रंश में जोई शब्द बना और हिन्दी तद्भव रूप जोवना आज जन भाषा का शब्द है। मृगावती में इन शब्दों को एक–एक बार अपनाया गया है।

नैन रहे पंथ जोइ।[3]

दिन एक मारग जोवत रहा।[4]

दोनों स्थलों पर देखना के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

✠ <u>चंदायन– नहाई, नहानी, नहाव :</u>

उक्त तीनों शब्द नहाना क्रिया के बोधक है। 'नहा' धातु में 'ना' प्रत्यय के योग से 'नहाना' शब्द की रचना होती है। संस्कृत की 'स्ना' धातु का तद्भव रूप 'नहा' अर्थात 'स्नान' का तद्भव रूप 'नहाना' है। 'स्ना' धातु का विकासक्रम– संस्कृत में स्ना, पाली में न्साय, प्राकृत में णंदाण्हावे, और हिन्दी में 'नहा'।

चंदायन में उक्त तीनों शब्द क्रमशः दो[5] बार एक[6] बार एवं एक[7] बार प्रयुक्त हुए हैं। सभी स्थलों पर स्नान के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

घोर नहाइ न कोउ पारा।[8]

---

1. मानक हिन्दी कोश
2. चंदायन कड़वक 173–7
3. मृगावती कड़वक 28–7
4. मृगावती कड़वक 42–7
5. चंदायन कड़वक 21–5, 192–4
6. चंदायन कड़वक 50–5
7. चंदायन कड़वक 423–7
8. चंदायन कड़वक 21–5

चंदायन– अनहवाएं, अन्हवावहु :

'अन्हा' धातु में 'ना' प्रत्यय लगाने से 'अन्हवाना' क्रिया का श्रृजन होता है। अन्हवाना का तात्पर्य 'नहाना' होता है। चंदायन में दोनों शब्द अन्हवाना के ही परिवरिर्तित रूप हैं। दोनों शब्द क्रमशः दो बार और एक बार कुल तीन[1] बार प्रयुक्त हुए हैं।

फूँ कूँ मरद चाँद अन्हवाए।[2]

उक्त पंक्ति में अन्हवाए शब्द नहाने के साधारण अर्थ का द्योतन कर रहा है।

✠ मृगावती– उरे, (उरेहना) :

उरेहना क्रिया शब्द बनाने का पर्यायवाची है। बनाना शब्द किसी वस्तु के निर्माण के भाव का वाचक है, परन्तु उरहना क्रिया एक विशिष्ट रचना के अर्थ का द्योतन करती है। चित्रों को जमीन पर या दीवाल पर रंग से या अन्य माध्यम से अंकित करने की क्रीया को 'उरेहना' क्रिया से व्यक्त किया जाता है। चंदायन में यह क्रिया शब्द एक वार इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है।

करथा नेह सब झाँरि उरे।[3]

मृगावती– उठई (उठाना) :

उठई क्रिया शब्द का प्रयोग उठाना के अर्थ में प्रयोग हुआ है। उठाना का अर्थ है– 1. बनाना 2. लेटी हुइ वस्तु को खड़ा करना। मृगावती में 'उठाना' का प्रयोग बनाने अर्थात निर्माण के अर्थ में हुआ है। इस शब्द का संस्कृत रूप 'उत्थान' प्राकृत रूप उट्ठावण और हिन्दी रूप उठाना। मृगावती में मंदिर के निर्माण के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग एक[4] बार मिला है।

---

1. चंदायन कड़वक 41–4, 52–1, 173–1
2. चंदायन कड़वक 52–1
3. मृगावती कड़वक 36–6
4. मृगावती कड़वक 35–6

मृगावती उचावत (उचाना) :

उचावत शब्द विशुद्ध लोकवाणी से जुड़ा हुआ शब्द है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग निर्माण के अर्थ में एक बार किया गया है–

मंदिर उचावत लाग न बेरा।[1]

मंदिर उठाने में देर नहीं लगी।

✠ चंदायन– पसारा, पसारी :

पसारा क्रिया पसारना का ही रूप है और यह पसार धातु में ना प्रत्यय जोड़ने से बना है। पसारना का अर्थ है फैलाना। संस्कृत में प्र+सारय् प्रसारय, पाली में पसारेति, प्राकृत में पसार एवं हिन्दी में पसारना रूप मिलता है। चंदायन में इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः एक[2] वार दो[3] बार हुआ है।

कोस वीस लग भयऊ पसारा।[4]

चंदायन– छिरयाई, छरयानी :

छिरयाई और छरयानी शब्द छिटकना क्रिया के जन साधारण द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले शब्द हैं। छिटकना का अर्थ है विखरना या छितराना। इस क्रिया का संस्कृत रूप क्षिति, प्राकृत रूप खित्व और हिन्दी का तद्भव रूप छिटकना है। चंदायन में इन शब्दों का प्रयोग क्रमशः एक–एक बार[5] हुआ है।

हार टूट गा मोतिं छरियानी।[6]

चंदायन– विथरगा :

विथगा शब्द विथरना के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। विथरना का शब्दिक अर्थ है फैलाना। विथर धातु में ना प्रत्यय के योग से विथरना बना है। संस्कृत में इसका रूप विस्तृ,

---

1. मृगावती कड़वक 35–4
2. चंदायन कड़वक 100–3
3. चंदायन कड़वक 68–3, 266–1
4. चदायन कड़वक 100–2
5. चंदायन कड़वक 175–7, 266–2
6. चंदायन कड़वक 266–2

प्राकृत में वित्थर और हिन्दी में विथरना है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग फैलाना के साधारण अर्थ में एक ही बार हुआ है–

अभरन टूट विथरगा मैंथ गइ कुँवलाइ।[1]

✠ चंदायन– पुजावई :

पूज धातु का अर्थ है सम्मान देना।[2] इसके आधार पर पूजा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ हुआ किसी को श्रद्धापूर्वक सम्मान देना। इस शब्द के विषय में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि इसका प्रयोग अधिकांश देवी देवताओं की प्रसन्नता के लिए विधि पूर्वक किए गये कर्म विशेष के लिए किया जाता है। पूजा एक व्यापक शब्द है। सगुण भक्ति साधना में पूजा पुजावई शब्द पूजना क्रिया का विकृत रूप है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिला है–

मैं लै जाव पुजावइ देवहु।[3]

चंदायन नमस्कार :

नम धातु का प्रयोग झुकने के अर्थ में किया जाता है।[4] किसी के सम्मुख विनत होने का व्यंग्यार्थ है कि झुकने वाला व्यक्ति स्वयं को सामने वाले से न्यून मानकर उसे सम्मान का पात्र समझता है। इसी मूल भाव बड़ों के प्रति सम्मान प्रदर्शन के कारण बाद में यह शब्द नमस्कार करने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

नमस्कार कै देउ मनावा।[5]

उक्त पंक्ति में नस्कार पूजा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

---

1. चंदायन कड़वक 266–2
2.. अर्च्यनम!, अर्हणां, अपचिति, नुतिः। शब्द कल्पद्रुम
3. चंदायन कड़वक 171–5
4. नमशब्द नतयोहः नतिः। शब्द कल्पद्रुम
5. चंदायन कड़वक 254–1

✠ चंदायन– बनवाई :

'बनवाई' बनवाना क्रिया से बना है। किसी भी वस्तु की रचना कराना के भाव को व्यक्त करने के लिए बनवाना शब्द का प्रयोग होता है। चंदायन में बनवाना शब्द भोजन बनवाने के अर्थ में एक[1] बार प्रयुक्त हुआ दृष्टिपथ में आया है।

चंदायन– पकाई :

पकाई क्रिया पकाना का ही एक रूप है। पकाना शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है; जैसे– वर्तन पकाना, भोजन पकाना, वृक्ष के फल का पकाना। चंदायन में पकाना क्रिया शब्द भोजन पकाने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दाऊद ने चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[2] ही बार किया है–

चंदायन– रॉधॉ :

रॉधना क्रिया से रॉधा बनता है। रॉधना लोक भाषा का प्रचलित शब्द है। दाऊद ने 'रॉधना' को भोजन बनाने के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस शब्द का प्रयोग चंदायन में एक[3] बार इस प्रकार हुआ है–

चंदायन– भूॅज :

भूॅजना क्रिया का अर्थ है किसी वस्तु की आग में डालकर ऊॅपरी तह को जलाना। परन्तु दाऊद ने 'भूॅज' शब्द का प्रयोग भोजन बनाने के अर्थ में ही प्रयोग किया है। इस शब्द का प्रयोग भी एक[4] बार हुआ है।

✠ मृगावती– बॉचें, बंचहु, बॉचना, बचाबहु :

बॉच धातु में ना प्रत्यय के योग से बॉंचना क्रिया का श्रृजन हुआ है। बचाबहु का बचवाना रूप है। बॉचना क्रिया शब्द लोक भाषा का बहुतायत में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। कुतवन ने उक्त शब्दों को क्रमशः एक–एक[5] बार ग्रहण किया है।

---

1. चंदायन 159–7
2. चंदायन कड़वक 155–3
3. चंदायन कड़वक 103–3
4. चंदायन कड़वक 156–2
5. मृगावती कड़वक 2–6, 4–7, 7–2, 17–4

मृगावती– पढ़त :

पढ़त शब्द का अर्थ है पढ़ना। पढ़ना पढ़ धातु में ना प्रत्यय के योग से पढ़ना क्रिया का निर्माण हुआ है। पढ़ना क्रिया का संस्कृत रूप पठ्, प्राकृत में पढ़ और हिन्दी में तद्भव रूप पढ़ना मिलता है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक आर हुआ है–

पढ़त सुहावन दीजइ कानूं।[1]

चंदायन– सिरजा :

इस शब्द की मूल धातु सृज् हे। सृज विसर्गे। विसर्ग का अर्थ है उद्‌गार, बाहर निकालना। प्रस्तुत संदर्भ में उसका तात्पर्य है– अव्यक्त मूल कारण से व्यक्त कार्य रूप में अविर्भाव।। इस प्रकार व्युत्वपत्यर्थ के अनुसार किसी वस्तु को नये सिरे से बनाना सृजन है। सृजन में अविर्भाव पर बल होता है। चंदायन में सिरजा शब्द सृजन के व्युत्पत्यक अर्थ में एक बार आया है।

जिन सिरजा इह देवस बयारा।[2]

मृगावती– सिरजन :

मृगावती में सिरजन शब्द अपने मूल अर्थ में एक वार आया है–

नख सिध बेनी नित तरासइ सिरजन हार मुरारि।[3]

चंदायन– गढ़े :

गढ़ धातु में ना प्रत्यय के योग से गढ़ना धातु की रचना होती है। इस शब्द का संस्कृत रूप घटन, प्राकृत में घटुण और हिन्दी में इसका तत्सम रूप गढना है। किसी वस्तु को काट छॉट कर या ठोक ठोक कर कोई काम की वस्तु बनाना गढ़ना कहलाता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक वार साधारण अर्थ में हुआ है–

रूपमरार दयी के गढ़े।[4]

---

1. मृगावती कड़वक 11–5
2. चंदायन कड़वक 1–1
3. मृगावती कड़वक 65–7
4. चंदायन कडवक 27–2

मृगावती– गॉठी :

गॉठ धातु में ना प्रत्यय जोड़ने से गॉठना क्रिया की रचना होती है। गॉठना शुद्ध जन भाषा से जुड़ा शब्द है। किसी वस्तु की बनाने की क्रिया को गॉठना शब्द से अभिव्यक्त करते हैं। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिलता है।

तहिया एह रे चौपाई गॉठी।[1]

मृगावती– ढारी :

ढारना क्रिया ढार धातु में ना प्रत्यय के जोड़ने से बनी है। ढारना और बनाने के अन्य पर्यायवाची शब्दों में अर्थ भेद की दृष्टि से बड़ा अन्तर है। रचना शब्द से यह आभाषित नहीं होता है कि बनाने का ढंग क्या है ? परन्तु ढारना शब्द ध्वनित करता है कि अमुक सम्बंन्धित को विधला कर या गीला करके सॉचे में डालकर ढारी गयी है। इस शब्द का प्रयोग एक बार साधारण अर्थ में हुआ है–

कै रे मैन सांचे में ढारी।[2]

✠ चंदायन– रन :

रन शब्द का संस्कृत, पाली और प्राकृत रूप रण है। परन्तु हिन्दी का तद्भव रूप रन है। संस्कृत की रण् धातु ध्वनि के अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। इसके अतिरिक्त गति अथवा चलने के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है।[3] युद्ध में होने वाली शास्त्रास्त्रों की ध्वनि के आधार पर यह शब्द युद्ध का अर्थ देने लगा। युद्ध का अर्थ वाची यह शब्द चंदायन में एक स्थल पर प्रयुक्त हुआ है–

रन लोरक खॉडे जस पावा।[4]

चंदायन– संग्राऊॅ :

संग्राऊॅ शब्द संग्राम का बदला रूप है। इस शब्द का संस्कृत रूप सङ्ग्राम,

---

1. मृगावती कड़वक 426–3
2. मृगावती कड़वक 65–1
3. To Sound, ring, rattle, going, monition - M. Williams.
4. चंदायन कड़वक 144–5

मृगावती– गॉठी :

गॉठ धातु में ना प्रत्यय जोड़ने से गॉठना क्रिया की रचना होती है। गॉठना शुद्ध जन भाषा से जुड़ा शब्द है। किसी वस्तु की बनाने की क्रिया को गॉठना शब्द से अभिव्यक्त करते हैं। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिलता है।

तहिया एह रे चौपाई गॉठी।[1]

मृगावती– ढारी :

ढारना क्रिया ढार धातु में ना प्रत्यय के जोड़ने से बनी है। ढारना और बनाने के अन्य पर्यायवाची शब्दों में अर्थ भेद की दृष्टि से बड़ा अन्तर है। रचना शब्द से यह आभाषित नहीं होता है कि बनाने का ढंग क्या है ? परन्तु ढारना शब्द ध्वनित करता है कि अमुक सम्बंन्धित को विधला कर या गीला करके सॉचे में डालकर ढारी गयी है। इस शब्द का प्रयोग एक बार साधारण अर्थ में हुआ है–

कै रे मैन सांचे में ढारी।[2]

✠ चंदायन– रन :

रन शब्द का संस्कृत, पाली और प्राकृत रूप रण है। परन्तु हिन्दी का तद्भव रूप रन है। संस्कृत की रण् धातु ध्वनि के अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। इसके अतिरिक्त गति अथवा चलने के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है।[3] युद्ध में होने वाली शास्त्रास्त्रों की ध्वनि के आधार पर यह शब्द युद्ध का अर्थ देने लगा। युद्ध का अर्थ वाची यह शब्द चंदायन में एक स्थल पर प्रयुक्त हुआ है–

रन लोरक खॉडे जस पावा।[4]

चंदायन– संग्राऊॅ :

संग्राऊॅ शब्द संग्राम का बदला रूप है। इस शब्द का संस्कृत रूप सङ्ग्राम,

---

1. मृगावती कड़वक 426–3
2. मृगावती कड़वक 65–1
3. To Sound, ring, rattle, going, monition - M. Williams.
4. चंदायन कड़वक 144–5

विनाश। संघार का प्रयोग नर संघार के रूप में भी किया जाता है। संघार का प्रयोग मुख्यतः ऐसे ही प्रसंगो में होता है जिनमें जगह—जगह असंख्य घायलों और लाशों के ढेर दिखाई देते हों। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार इस प्रकार हुआ है—

कवन वीर जिहिं कटक संहारा।[1]

उक्त पंक्ति में 'संहारा' शब्द अपने व्युत्पत्यक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

<u>चंदायन— मारेऊ (मारना) :</u>

मारना क्रिया का संस्कृत रूप 'मारय' प्राकृत में मार, मारेइ और हिन्दी में मारे मारना दो अर्थों में प्रयोग होता है। 1. साधारण मारपीट के अर्थ में और 2. जान से मार डालने के अर्थ में। यह क्रिया भी हनन की तरह सदा जानबूझ कर या किसी विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है। हनन में प्रत्यक्ष रूप से बल प्रयोग करने का जो भाव है वह तो मारने में है ही पर इसके सिवा एक और भाव भी इसमें हैं। चुपचाप किसी गुप्त तरीके द्वारा जहर आदि के द्वारा मारने का। चंदायन में यह शब्द एक[2] बार आया है।

<u>चंदायन— बेधि—बेधा (बेधना) :</u>

इस क्रिया का संस्कृत रूप ब्यध प्राकृत बिद्ध और हिन्दी में बेधना है। बेधना में भी मारने का मारव निहित है, परन्तु हनना, मारना और बेधना क्रियाओं की अर्थच्छायायों में भिन्नता है। मारने में जहाँ किसी भी अस्त्र—शस्त्र से मारने का भाव समाहित है वहीं 'बेधना' में शरीर के अन्दर किसी नुकेले हथियार को चुभो कर मारने की व्यंजना झलक रही है। चंदायन में बेधि और बेधा शब्द क्रमशः एक[3] बार और दो[4] बार व्युत्पत्यक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

---

1. चंदायन कड़वक 145—3
2. चंदायन कड़वक 69—5
3.
4.

(ख) अकर्मक क्रिया पर्याय

चंदायन औतरी, औतारी, औतरतैं :

अवतार शब्द का तद्भव रूप औतारी है। अवतार पुलिंग है तथा इसका स्त्रीलिंग औतरी है। अवतार शब्द 'अव' पूर्वक तृ धातु से बना है, जिसका अर्थ है ऊपर से नीचे आना। रामचन्द्र वर्मा ने नीचे उतरने की क्रिया या भाव को अवतरण कहा है।[1] मोनियर विलियम्स ने इसी अर्थ को स्वीकार करते हुये भी कोष्ठक में देवता के रूप अतिरिक्त विशेषण जोड़ दिया है। इस प्रकार यह शब्द विशेष सीमा में बंधकर एक विशिष्ट अर्थ का द्योतन करने लगता है।

चंदायन में औतरी, औतारी एवं औतरतैं शब्द दाऊद मुल्ला ने क्रमशः एक–एक वार[2] किया है। तीनों स्थलों पर प्रथक–प्रथक भावाभिव्यति हेतु शब्द का प्रयोग है।

माँग चीर सिर सेंदुर पूरी। जानहु चाँद फेर औतरी।।[3]

इस स्थल पर उपमेय (चाँद) में उपमान (चन्द्रमा) की सम्भावना की गयी है। हेतुत्प्रेक्षा की सुन्दर और सटीक अवस्था का निर्माण हुआ है।

काहे कहँ बिधि तै। औतारी। बरु औतरतैं यरतेउँ बारी।।[4]

यहाँ पर चाँदा को कुल कलंकनी मानकर उसके स्वजन बिधि को दोषी मानकर कह रहे हैं कि तूने चाँदा क्यों औतारी ? अर्थात क्यों जन्म दिया। इस प्रयोग में औतारी शब्द जन्म के भाव का द्योतन कर रहा है।

अवतार का ही तीसरा रूप औतरतैं प्रयुक्त हुआ है। इसका भी उद्देश्य जन्म के भाव को व्यक्त करना है। उक्त स्थल पर महिर विधाता से कह रही है कि चाँद को पैदा ही किया था तो बचपन में ही मार डालता।

---

1. मानक हिन्दी कोश
2. चंदायन कड़वक 52–2, 278–4, 278–4
3. चंदायन कड़वक 52–2
4. चंदायन कड़वक 278–4

चंदायन– प्रगटी :

यह संस्कृत के प्रकट शब्द का अपभ्रंश रूप है। सामान्यतः किसी व्यक्ति के सम्मुख आने या व्यक्त होने को प्रकट होना कहा गया है। मोनियर विलियम्स ने भी इस शब्द का अर्थ देते हुए लगभग इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने 'सभी के सामने व्यक्त रूप से आने' पर विशेष बल दिया है। इसके अतिरिक्त इस क्रिया को प्रसन्नता में वृद्धि करने वाली भी बताया है।

चंदायन में 'प्रगटी' शब्द एक बार इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है।

बरहें माँस प्रगटी बाता। धौर समुदँ माबर गुजराता।[1]

उक्त स्थल पर प्रगटी शब्द का प्रयोग अभिधेयार्थ की प्रस्तुति हेतु हुआ है। यहाँ 'प्रगटी' का अर्थ है सभी को चाँदा के जन्म के सम्बंध में ज्ञात होना।

चंदायन– कहेऊ, कहौं, कहसु, कही, कहे, कहा, कहऊ, कहिके, कहसि, कहही, कहत एवं कही :

चंदायन में उपर्युक्त सभी शब्द कहना क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। 'कहना' क्रिया 'कह' धातु से बनी है। उक्त सभी शब्दों का प्रयोग चंदायन में क्रमशः तीन[2] बार, एक बार[3], दो बार[4], एक बार[5], दो बार[6], तीन बार[7], एक बार[8] तीन बार[9], एक बार[10], एक बार[11] हुआ है। तुक, मात्रा, लय आदि की आवश्यकता के लिये जहाँ जैसा उचित प्रतीत हुआ दाऊद मुल्ला ने इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग कर लिया है। इससे अधिक वैशिष्ट्य इन शब्दों के प्रयोग में नहीं दिखाई पड़ता।

चंदायन– भाख, भाखै, भाखहिं :

भाखना का अर्थ है कहना। 'कहना' क्रिया की रचना 'कह' धातु से हुयी है। चंदायन में तीनों शब्द क्रमशः एक बार[12], एक बार[13] एवं एक ही बार[14] प्रयोग किए गये हैं। सभी प्रयोग 'भाखना' क्रिया के साधारण अर्थ के द्योतन हेतु हुए हैं।

---

1. चंदायन कड़वक 36–1
2. चंदायन कड़वक 53–1, 84–1, 56–2
3. चंदायन कड़वक 50–6
4. चंदायन कड़वक 46–1, 46–6
5. चंदायन कड़वक 43–5
6. चंदायन कड़वक 38–2, 43–5
7. चंदायन कड़वक 37–7, 74–4–5
8. चंदायन कड़वक 37–6
9. चंदायन कड़वक 37–5, 67–2, 67–5
10. चंदायन कड़वक 29–2
11. चंदायन कड़वक 20–7
12. चंदायन कड़वक 9–2
13. चंदायन कड़वक 12–2
14. चंदायन कड़वक 31–7

चंदायन— बखानि, बखानों, बखानू :

इन शब्दों की रचना बखानना क्रिया से हुयी है। और 'बखान' धातु में 'ना' प्रत्यय के योग से बखानना क्रिया का निर्माण हुआ है। चंदायन में इस शब्द के सभी प्रयोग अभिधेयार्थ में क्रमशः एक बार[1], एक बार[2], एवं एक बार[3] ही हुए हैं।

✠ चंदायन— कांखई :

काखिना शब्द से काखई बना है। यह मनुष्य के लिये प्रयोग किया जाता है। जब व्यक्ति किसी शारीरिक कष्ट के कारण दुखी होता है तो दर्द के कारण अनायास ही मुख से जो दर्द व्यक्त करने वाला स्वर निकलता है उसे कॉखना कहते हैं। डा0 हरदेव बाहरी के अनुसार— 1. जोर से दबने से आह ध्वनि निकलना 2. कठिन परिश्रम का काम करते समय उक्त ध्वनि का प्रस्फुटन कॉखना कहलाता है।[4]

चंदायन में कांखई शब्द अकर्मक क्रिया के रूप में एक बार निम्न रूप में प्रयुक्त हुआ है—

लै लोरक घर सेज ओल्लास। बहहिं नैन कांखई असरारा।।[5]

यहाँ पर कॉखना शब्द के साधारण अर्थ के द्योतन हेतु प्रयोग सटीक है।

चंदायन— रर्रहि :

जिस प्रकार कांखना मनुष्य की अनायास प्राकृतिक प्रकृति है उसी प्रकार मेढ़क की जो आवाज निकलती है उसे दाऊद मुल्ला ने रर्रहि शब्द से प्रस्तुत किया है। आधुनिक हिन्दी शब्द वेत्ताओं ने मेढ़क की आवाज को 'टर्र' शब्द दिया है। डा0 हरदेव बाहरी ने इसे 'टर्र—टर्र' शब्द दिया है।[6] 'टर्र' का ही विकृत रूप रर्रहि है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक वार साधारण अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु हुआ है।

इहँ लाग धर बादर रनैं। दादुर रर्रहिं बीज लौंकनैं।।[7]

---

1. चंदायन कड़वक 30—1
2. चंदायन कड़वक 44—5
3. चंदायन कड़वक 17—2
4. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
5. चंदायन कड़वक 164—1
6. राजपाल हिन्दी शब्द कोश
7. चंदायन कड़वक 280—4

<u>चंदायन– रिरयायें :</u>

कौए की बोली को चंदायन में रिरयायें शब्द प्रयुक्त हुआ है। आधुनिक कोशकारों ने कौए की बोली को 'कॉव–काँव' शब्द दिया है।[1] व्युत्पत्ति की दृष्टि से रिरयायें और 'काँव–काँव' में किसी भी दृष्टि से साम्यता दृष्टिगत नहीं हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग स्वविवेक से किया हो।

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार साधारण अर्थ की प्रतीति हेतु हुआ है–

सूके रूँख काग रिरियाये। जोगी आवा भसम चढ़ाये।।[2]

<u>चंदायन– फिकरि :</u>

दाऊद मुल्ला ने सियार की बोली को फिकरि शब्द से सम्बोधित किया है। सियार के मुँह से जो अनायास ध्वनि का प्रस्फुटन होता है वह 'हुआ–हुआ' है। शब्द रचना की दृष्टि से 'हुआ–हुआ' और फिकरि में किसी भी दृष्टि से समीप्य दृष्टिपथ में नहीं आता है। फिकरि हो सकता है उस समय जन–भाषा का शब्द रहा हो। या लय, तुक, मात्रा आदि की दृष्टि से दाऊद ने स्वविवेक से इस शब्द की रचना की हो। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार साधारण अर्थ में इस प्रकार हुआ है।

उवत सूर दिसि फिकरि सियारी। अरु मुईं रकत दीख रतनारी।।[3]

<u>चंदायन– फुफकारी :</u>

'फुफकार' में 'ई' प्रत्यय के योग से 'फुफकारी' क्रिया की रचना हुई है। 'फुफकार' एक प्रकार से सर्प की बोली है। 'फुफकार' शब्द का प्रयोग सर्प के लिये ही प्रयुक्त होता है। चंदायन में इस शब्द का एक वार इस प्रकार प्रयोग हुआ है–

खतरी खाइ चला फुफकारी।[4]

यहाँ पर फुफकारी शब्द साधारण अर्थ में प्रयोग किया गया है।

---

1. राजपाल हिन्दी शब्दकोश
2. चंदायन कड़वक 101–1
3. चंदायन कड़वक 101–3
4. चंदायन कड़वक 333–2

चंदायन– कुरलहिं :

सारस की बोली को चंदायन में 'कुरलहिं' शब्द प्रयुक्त हुआ है। चंदायन में दाऊद मुल्ला ने इस शब्द का प्रयोग एक बार निम्नवत् किया है–

फूले कांस हॉस सिर छाये। सारस कुरलहिं खिडरिज आये।।[1]

'कुरलहिं' शब्द में अभिधेयार्थ ध्वनित हो रहा है। कॉखई, र्रहिं, रिरयायें, फिकरि, फुफकारी एवं कुरलहिं शब्दों में बोली की पर्यायता समाहित होने के कारण यहाँ इन शब्दों को समाहित किया गया है।

चंदायन– चिल्लाई :

मनुष्य की उच्च स्वर से प्रस्फुटित आवाज के लिये चिल्लाना शब्द प्रयुक्त होता है। चंदायन में इस शब्द की आवृत्ति एक बार साधारण अर्थ में निम्नवत् हुई है–

झॅरका राउ रूप चंद, धरहु धरहु चिल्लाई।[2]

चंदायन– डफारा :

चंदायन में डफारा शब्द का प्रयोग भी चिल्लाने के भाव को व्यक्त करने के लिये किया गया है। डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त ने डफारा शब्द का अर्थ 'मनुष्य के जोर से चिल्लाने के लिये' प्रयुक्त माना है।[3]

चंदायन में दाऊद मुल्ला ने डफारा शब्द का प्रयोग एक वार इस प्रकार किया है–

खोलिन रोइ डफारा, बार जियावहु मोर।[4]

उक्त स्थल पर डफारा अभिधेयार्थ के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। 'खोलिन रोई डफारा' में डफारा शब्द से 'चिल्लाने' की ही ध्वनि निकलती है। आधुनिक कोशों में डफारा शब्द विलुप्त सा प्रतीत होता है।

---

1. चंदायन कड़वक 404–2
2. चंदायन कड़वक 83–6
3. चंदायन पृष्ठ 177
4. चंदायन कड़वक 165–7

✠ <u>चंदायन– गवई :</u>

यह संस्कृत के गमन शब्द का अपभ्रंश रूप है। गमन की मूल धातु है गम्। इसका प्रयोग लगभग 'या' धातु के अर्थ में ही किया जाता है, अर्थात यह गत्यर्थक क्रिया है। शब्द कल्पद्रुम में जाने के साथ–साथ जानने की इच्छा या ज्ञान में गति को भी गमन कहा गया है।[1]

चंदायन में गवई शब्द का प्रयोग एक[2] स्थल पर साधारण अर्थ में प्रयक्त हुआ है।

<u>मृगावती– गवनऊ :</u>

मृगावती में गवनऊ शब्द गमन के अर्थ में एक[3] बार साधारण अर्थ में प्रयोग किया गया है।

<u>चंदायन– जाई :</u>

यह संस्कृत की 'या' धातु से बना है, जिसका प्रयोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचने के लिए आगे बढ़ने के अर्थ में किया जाता है।[4] इस बहु प्रयुक्त अर्थ के साथ–साथ यह क्रिया नष्ट होने, मृत्यु को प्राप्त होने तथा बीतने के अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए भी व्यवहृत की जाती है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग पाँच बार[5] हुआ है। सभी स्थलों पर 'गमन' के साधारण अर्थ का वाची है।

<u>मृगावती– जाऊँ :</u>

मृगावती में भी जाऊ शब्द 'जाने' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

आइस होइ तौ गवनऊं कूसल जाऊॅ पिता के ठाउॅं।।[6]

यहाँ पर जाऊँ शब्द का प्रयोग जाने के साधारण अर्थ में किया गया है।

---

1. गम्यते जिग्गीषुण इति गमनम्। शब्द कल्पद्रुम
2. चंदायन कड़वक 193–3
3. मृगावती कड़वक 384–6
4. शब्द कल्प द्रुम
5. चंदायन कड़वक 24–5, 46–6, 53–2, 20–4, 70–6,
6. मृगावती कड़वक 384–6

चंदायन– पयान :

यह संस्कृत के प्रयाण शब्द का अपभ्रंश रूप है। 'प्र' पूर्वक 'या' धातु से बने इस शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ हुआ– प्रकट रूप से जाना। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी विशिष्ट उद्देश्य से कहीं जाना प्रयाण कहलाता है। इसके अतिरिक्त यह जाना सामूहिक होता है। और मुख्यतः युद्ध के लिए सेना के प्रस्थान के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। शब्द कल्पद्रुम में इसका अर्थ भेरी 'निस्वन' भी दिया गया है।

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार[1] साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– सिधारेउ :

सिधारना क्रिया का ही परिवर्तित रूप सिधारेऊ है। सिधारना क्रिया का साधारण अर्थ गवन करना, जाना, या पयान करना है, परन्तु यह क्रिया कुछ विशिष्ट अर्थों में भी प्रयुक्त की जाती है– जैसे मनुष्य के मरने पर प्रचलित मुहावरा है, स्वर्ग सिधार गये। चंदायन में इस क्रिया का प्रयोग जाने के अर्थ में एक बार हुआ है।

लोग कुटुम्ब घर बार बिसारेउँ। देख छाड़ि परदेस सिधारेउँ।।[2]

यहाँ सिधरना शब्द गवन करने के अर्थात जाने के भाव का वाचक है।

✠ चंदायन– जरा :

'जलना' क्रिया का विकृत रूप 'जरा' शब्द है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार कामाग्नि से जलने के भाव में प्रयुक्त हुआ है।

काम लुबुध विरहें तन जरा।[3]

मृगावती–जरई, जरि, जरों, जरत, जारा, जारत :

जरई, जरि, जरों, जरत, जारा, जारत शब्द क्रमशः 1 बार, 2 बार, 1 बार, 1 बार, 2 बार और 1 बार प्रयोग हुआ है। कुल 8 बार[4] प्रयोग हुआ है। कतिपय स्थलों पर जलना

1. चंदायन कड़वक 100–6
2. चंदायन कड़वक 346–2
3. चंदायन कड़वक 48–5
4. मृगावती कड़वक 40–4, 303–2, 40–1, 14–3, 267–5, 305–3, 327–5, 164–3, 304–1, 333–1

शब्द अपनी वियुत्पत्ति परक विवक्षा का निरूपण करता हुआ दृष्टिगत होता है तथा अधिकांश स्थलों पर कामाग्नि से जलने के भाव का द्योतन करता है।

चंदायन– दग्ध, दगध :

'दग्ध' भी जलने की क्रिया को कहते हैं। 'दग्ध' शब्द में यह भाषित होता है कि अमुक वस्तु जलने की क्रिया में है, जबकि भस्म करने में 'जलाने' की क्रिया का पूर्ण होने का भाव समाविष्ट है। उक्त शब्द चंदायन में क्रमशः एक–एक[1] बार नायिका का विरहाग्नि में दग्ध होने के भाव को निरुपित करने हेतु हुआ है।

मृगावती– दगध, दगधि, दगधाऊ, दहा :

मृगावती में यह शब्द क्रमशः 2 बार, 2 बार, 1 बार तथा 1 बार कुल छैः बार[2] प्रयुक्त हुए हैं। मृगावती में 'दग्ध' शब्द अधिकांश स्थलों पर नायिका के कामाग्नि में जलने के भाव का द्योतक है।

काम दगध चूना होइ रही।[3]

चंदायन– भूँजि :

भूँजना क्रिया का अपभ्रंश रूप है। भूँजना शब्द से भी जलने की ध्वनि का प्रस्फुटन हो रहा है, फिर भी दग्ध और भूजना की विवक्षाएँ प्रथक–प्रथक हैं। दग्ध में अग्नि की लौ से वस्तु के भस्म हो जाने का भाव निहित है, जबकि भूँजि में जलने की क्रिया का अर्थ संकोच हो गया है। 'भूँजने' से यह ध्वनित होता है कि अमुक वस्तु को जलाया है परन्तु पूर्णरूपेण नहीं। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक वार निम्नवत् हुआ है–

तुम विन पात अइस हों गयी। पुरई जइस भूँजि दहि गयी।[4]

---

1. चंदायन कड़वक 185–4, 29–3
2. मृगावती कड़वक 164–4, 330–5, 173–5, 327–3, 175–6, 303–5
3. मृगावती कड़वक 330–5
4. चंदायन कड़वक 408–4

मृगावती– भूजिऊ :

मृगावती में भी भूँजना शब्द भूँजिऊ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। एक बार निम्नलिखित प्रयोग है।

काम कपूर कंत विन जरई। भूजिउ नाहं जाइ नहिं मरई।[1]

- **चंदायन– धाई :**

धावना क्रिया के अर्थ में धाई शब्द का प्रयोग हुआ है। धावना शब्द की व्युत्पत्ति निम्नांकित है–

संस्कृत भाषा में इस शब्द का रूप 'धाव' है। पाली और प्राकृत में इसका रूप बदल कर 'धाव' हो गया। हिन्दी में इसका तद्भव रूप 'धावना' है। चंदायन में यह शब्द दौड़ने के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है–

बहुल धाब धरि धाबहि, थापै थिर न रहाहिं।[2]

मृगावती– धावा :

कुतवन ने मृगावती में भी 'दौड़ना' का पर्यायक 'धावना' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द की व्युत्पत्त्यक व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। मृगावती में इस शब्द का प्रयोग दो बार दोड़ने के साधारण अर्थ के द्योतन में हुआ है। अर्थ वैशिष्ट्य की प्रस्तुति यहाँ परिलक्षित नहीं होती है।

(. . . .कम्म) जब लगि दिन धावा।[3]

उक्त स्थल पर कवि दिन को दौड़ता हुआ प्रदर्शित कर रहा है, जबकि वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि सूर्य स्थिर रहता है पृथ्वी चलती है।

कहसि जाऊँ एहि मारग धावा।[4]

---

1. मृगावती कड़वक 303–2
2. चंदायन कड़वक 112–7
3. मृगावती कड़वक 3–5
4. मृगावती कड़वक 201–1

<u>चंदायन– दौर :</u>

हिन्दी की 'दौड़' धातु से 'दौड़ना' बना। संस्कृत में धोरण शब्द आगे पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में क्रमशः धावण, धापुड़ और दाउड बना। धोरण शब्द का ही तद्भव रूप दौड़ना है।

इस वर्ग के शब्द साधारण से अधिक तीव्र गति या वेग से किसी ओर चलने या बढ़ने के वाचक हैं।

दौड़ना हिन्दी की अकर्मक क्रिया है, जो संस्कृत धोरण से व्युत्पन्न है। धोरण का अर्थ है– तीव्र या द्रुतगति से आगे बढ़ना। हिन्दी में 'दौड़ना' का साधारण अर्थ है– बहुत ही जल्दी–जल्दी पैर उठाते हुए लम्बे–लम्बे डग भरते हुए तेजी से आगे बढ़ना। इस शब्द का प्रयोग मुख्यतः मनुष्यों और पशुओं के सम्बंध में होता है; जैसे– लड़के मैदान में दौड़ रहे हैं। हिरन जंगल में दौड़ते फिरते हैं। इसमें अभी पीछे उठाया हुआ पैर अच्छी तरह आगे की जमीन पर जमने नहीं पाता कि दूसरा पैर आगे बढ़ाने के लिए उठा लिया जाता है और बार–बार बहुत तेजी से ऐसा ही किया जाता है। इससे आगे बढ़ने पर लाक्षणिक रूप से इसका प्रयोग कुछ ऐसे जीवों बातों और वस्तुओं के सम्बंध में भी होता है, जिनमें पैर होते ही नहीं; जैसे– मछलियाँ पानी में इधर–उधर दौड़ती फिरती हैं। हवाई जहाज बराबर हवा में दौड़ते फिरते हैं। फिर अमर्त तत्वों, वस्तुओं आदि के सम्बंध में भी इसका प्रयोग होता है; जैसे निगाह दौड़ाना, मन दौड़ाना आदि। ऐसे अवसरों पर इसका मुख्य आशय होता है– बहुत ही जल्दी–जल्दी किसी दूर की जगह या बात पर चट–पट जा पहुंचना।

चंदायन में इस शब्द का प्रयोग दो बार हुआ है–

बावन देख दौर धस लीन्हें।[1]

---

1. चंदायन कड़वक 308–7

उक्त प्रथम पंक्ति में दौर शब्द व्युत्पत्तिपरक अर्थ में प्रयुक्त न होकर साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– भागहिं, भागे :

'भागना' संस्कृत के 'भज' धातु से व्युत्पन्न है, जिसके कई अर्थों में से एक है भयभीत होकर इधर–उधर हटना या विचलित होना है तो यह दौड़ना का एक प्रकार या रूप ही है, परन्तु इसमें मुख्य भाव है– किसी तरह की आशंका या भय के कारण अथवा किसी बात से अपना पीछा छुड़ाने या बचाव करने के लिए हटकर दूर या आँखों से ओझल हो जाना; अथवा; अथवा ऐसा करने का प्रयत्न करना; जैसे– (क) मार के डर से लड़का घर से भाग गया। (ख) सिपाहियों को देखते ही चोर भाग खड़े हुए। ऐसे अवसरों पर कभी 'दौड़ना' का प्रयोग न तो होता ही है और न होना ही चाहिए। हाँ यह अवश्य कहा जाता है– कि सिपाही ने चोर को दौड़ा कर पकड़ लिया। ऐसे अवसरों पर 'दौड़ कर' की जगह भाग कर का प्रयोग नहीं होता। कारण यह है कि सिपाही स्वयं दौड़कर चोर को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा और उसे आते देखकर चोर भी बचने के लिए दौड़ा। यदि उक्त उदाहरण में 'दौड़कर' की जगह 'भागकर' हो तो वाक्य का सारा अर्थ ही गड़वड़ा जायेगा। जब किसी को भगाया जायेगा तो अवश्य यही होगा कि उसे दूर निकाल दिया और वह पहुंच के बाहर हो गया। हाँ गाँव वालोंने डाकुओं को मार भगाया। प्रयोग अवश्य ठीक है क्योंकि गाँव वालों ने डाकुओं को पकड़ा नहीं बल्कि सीमा से बाहर कर दिया। इसी आधार पर 'भागना' का एक और अर्थ होता है– काम से जी चुराना या उसमें मन न लगाना; जैसे– यह नया नौकर परिश्रम करने से भागता है। आशय यही होता है कि वह परिश्रम नहीं करना चाहता, परिश्रम करने से डरता है और इसीलिए परिश्रम के कामों से दूर रहना चाहता है। इसीलिए यह कहना ठीक नहीं है– 'मुझे

सामान लेने के लिए घर से चौक भगाया गया। ऐसे अवसरों पर 'भगाया गया' की जगह 'दौड़ाया गया' का प्रयोग ठीक होगा। 'वह दौड़ा हुआ मेरे पास आया' के आशयों में बहुत अंतर है। पहले वाक्य का आशय होगा– वह अपने कार्य की आवश्यकता या तात्कालिकता समझकर बहुत तेजी से चलता हुआ मेरे पास आया; पर दूसरे वाक्य का अर्थ होगा कि खतरे, संकट आदि से वचने के लिए जल्दी–जल्दी और बिना कहीं रूके मेरे पास आया।

चंदायन में उक्त तीनों शब्द क्रमशः दो बार ओर एक बार अपनाए गये हैं। तीनों[1] स्थलों पर दौड़ना के साधारण अर्थ के वाचक हैं।

मृगावती– भागा :

मृगावती में भाग शब्द भागना के साधारण अर्थ में क्रमशः चार[2] बार ग्रहण किया गया है। चारों स्थलों पर साधरण अर्थ का व्यंजक हैं।

जसरे गड़रिया केंडर भागा।[3]

चंदायन– जाबई :

जाना क्रिया का ही विकृत रूप है। जाना शब्द संस्कृत के याति शब्द से बना है। यह शब्द याति, जाति, जाई के रूप में प्रयुक्त होता हुआ हिन्दी में तद्‌भव शब्द जाना जनभाषा का प्रिय शब्द बना। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक वार भागना के ही साधारण अर्थ के द्योतन हेतु हुआ है–

ठौर परे सो बेगि न जावई।[4]

यहाँ 'बेगि न जावइ' का अर्थ है तेजी से न भाग पाना।

✠ **चंदायन– रेंगावई :**

रेंगना क्रिया का ही एक रूप रेंगावई है। रेंगना का अर्थ है पेट के बल जमीन पर

---

1. चंदायन कड़वक 91–4, 95–2, 99–4
2. मृगावती कड़वक 187–3, 390–1, 442–5, 147–4
3. मृगावती कड़वक 187–3
4. चंदायन कड़वक 78–4

चलना। संस्कृत के 'रिङग' शब्द का ही तद्भव रूप हिन्दी में 'रैंगना' बना। इस शब्द का प्राकृत भाषा में 'रिग्गई' रूप मिलता है।

यद्यपि रैंगना शब्द चलना का पर्यायवाची प्रतीत नहीं होता है। परन्तु चंदायन में दाऊद मुल्ला ने चलने के या दौड़ने के भाव में ही इस शब्द का प्रयोग किया है। गाय और सिंह की चाल को हिन्दी कोशकाऐं न रैंगना शब्द प्रयोग नहीं किया है, परन्तु चंदायन में इस शब्द का प्रयोग इसी भाव का अभिव्यंजक है–

गउसिंह एक पंथ रेंगावई। एक घाट दुहुँ पानि पियावइ।[1]

<u>चंदायन– खदेरेऊं :</u>

'खेदर' धातु से खदेरना या भगाना शब्द बना है। भागना क्रिया का दूसरा रूप भगाना है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[2] बार भगाने के साधारण अर्थ में हुआ है।

✠ <u>चंदायन– भाये :</u>

भावै का अर्थ है अच्छी लगना जनसाधारण के द्वारा इस क्रिया का प्रयोग 'अच्छा लगना' के भाव में अधिक किया जाता है। चंदायन में इसका प्रयोग इस प्रकार मिलता है–

सवद सुहाव इँदर मन भाये।[3]

अच्छे शब्द इन्द्र को अच्छे लगे। भाये शब्द 'अच्छा लगने' के अर्थ में किया गया है।

<u>मृगावती– भावई :</u>

मृगावती में इस शब्द का प्रयोग एक बार मिला है–

एहि के सुनत न भावइ आनू।[4]

---

1. चंदायन कड़वक 12–4
2. चंदायन कड़वक 214–2
3. चंदायन कड़वक 20–4
4. मृगावती कड़वक 11–5

चंदायन– सुहावई :

सुहावई का अर्थ है अच्छी लगना। हिन्दी की सुहवना क्रिया से बना है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग क्रिया के रूप में एक बार हुआ है–

देखत मोती चूर सुहावई।[1]

मृगावती– सुहाव :

मृगावती में भी सुहावना शब्द सुहाव के रूप में एक वार प्रयुक्त हुआ है–

चकई चकवा हंस केंलि कर देखत अति रे सुहाव।[2]

देखने में सुहावन लग रहे हैं।

चंदायन– रूच :

हिन्दी की 'रूचना' क्रिया का विकृत रूप 'रूच' है। 'रूचना' का अर्थ है अच्छी लगना। 'रूच' धातु में ना प्रत्यय के योग से 'रूचना' क्रिया का निर्माण हुआ है। संस्कृत में इसका रूप रूच्वते, पाली में रूच्चति, प्राकृत और अपभ्रंश में रूच्चई तथा हिन्दी में रूचना है। चंदायन में इस क्रिया का प्रयोग एक वार हुआ है–

अन्न न रूच औ भाइ न पानी।[3]

मृगावती– रूचई :

मृगावती में भी 'रूचना' शब्द का प्रयोग रूचई के रूप में किया है–

अन्न न रूचइ भावइ नहिं पानी।[4]

✠ चंदायन– मोहहि :

'मोहना' क्रिया का ही विकृत रूप 'मोहहि' है। संस्कृत में इस क्रिया का रूप मोहय् पाली में मोहेति प्राकृत में मोह और हिन्दी में मोह + ना मोहना है।

---

1. चंदायन कड़वक 21–3
2. मृगावती कड़वक 25–6
3. चंदायन कड़वक 189–5
4. चंदायन कड़वक 32–4

इस वर्ग के सभी शब्द मनुष्यों के ऐसे पारस्परिक व्यवहारों और सम्बन्धों के सूचक है, जो आपसी चाह, संग–साथ, सहानुभूति आदि के भाव से उत्पन्न होते हैं। इस वर्ग का मुख्य शब्द प्रेम भी दुःख, सत्य आदि शब्दों की तरह आर्थी दृष्टि से बहुत व्यापक है। ऊपर की ओर यह ईश्वर और सारे विश्व या प्राणी मात्र तक पहुंचता है; और नीचे की ओर यह तुच्छ कामाशक्ति तक के क्षेत्र में पहुंचा दिया जाता है। पर है यह वस्तुतः पवित्र और शुभ ही। यह सदा दो पक्षों की अपेक्षा रखता है। लौकिक व्यवहार में यह प्रायः संग साथ से अथव रूप, गुण आदि के मोह से उत्पन्न होता है और अपने विशुद्ध रूप में सदा स्वार्थ रहित होता है। स्वार्थ साधना की भावना इसके लिए घातक ही होती है। अनेक अवसरों पर यह बड़े–बड़े स्वार्थ त्याग भी करता है। यह छोटे–बड़े, शिक्षित अशिक्षित सभी प्रकार के लोगों में होता है। यहाँ तक कि कभी–कभी भिन्न प्रकार और विरोधी प्रकृति के जीव जन्तुओं तक में देखा जाता है। इसमें सुख और संतोष के सिवा और कोई प्रतिफल न तो मिलता ही है और न उसकी कामना ही की जाती है।

मोह शब्द मुह से बना है जिसके अर्थ हैं स्तब्ध या चेतनाहीन होना, घवराना, चकित होना, भूलना, भटकना आदि। मुख्यतः यह मन की उस अवस्था का वाचक है जिसमें मनुष्य भ्रम के कारण सत्य का ठीक स्वरूप पहचानने में असमर्थ हो जाता है। इसीलिए धार्मिक क्षेत्र में यह उस स्थिति का वाचक हो गया है जिसमें मनुष्य ईश्वर या ब्रह्म को भूल कर भौतिक जगत को ही सत्य समझने लगता है; और इसके फेर में पड़कर धोखा खाता और हानि सहता हैं लौकिक क्षेत्र में इसका अर्थ होता है– किसी चीज के झूठे प्रेम में इस प्रकार फसना कि न्याय, सत्य आदि का उचित ध्यान न रह जाय। जहाँ हमें समझदारी से काम लेना चाहिए, वहाँ यदि हम किसी मनोविकार के फेर में पड़कर ना–समझी का काम करने लगें, तो यह

हमारा मोहना कहलावेगा। जिस अनुराग या आशक्ति के कारण हमारी बुद्धि पर परदा पड़ जाय, वही मोहना है।

चंदायन में मोहदि शब्द एक बार निम्नांकित रूप में प्रयुक्त हुआ है–

चाँद चलत नर मोहहिं, जगत भयउ उजियार।[1]

दाऊद ने यहाँ 'मोहहिं' शब्द का प्रयोग व्युत्पत्यर्थ में किया है।

<u>चंदायन– विमोहहि :</u>

व्यामोह का वदला रूप विमोहहि है। व्यामोह के मूल अर्थ है– चेतना का नाश, मन की विकलता आदि पर साधारणतः लोक व्यवहार में यह भी मोहना का ही पर्याय हो गया है। मोहना और व्यामोहना में अंतर यही है कि मोहना तो मुख्यतः धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों का शब्द है; पर विमोहना बिल्कुल सार्विक शब्द हैं; और मन की उस स्थिति का वाचक है, जिसमें मनुष्य किसी चीज या बात के धोखे या फेर में पड़कर इधर–उधर भटकने लगता है या अपने कर्तव्य अथवा उचित मार्ग से च्युत हो जाता है।

चंदायन में इस शब्द को दाऊद मुल्ला ने दो[2] स्थलों पर प्रयुक्त किया है। दोनों स्थानों पर इस शब्द की आवृत्ति अपने व्युत्पत्यक अर्थ में ही हुई है–

देखि लिलार विमोहे देवा।[3]

<u>मृगावती– विमोहिऊ :</u>

मृगावती में भी मोहेऊ क्रिया का समानक विमोहेऊ प्रयुक्त हुआ है। विमोहेऊ भी व्यामोहना का ही अशुद्ध रूप है। इस शब्द की व्युत्पत्यक व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। कुतवन ने इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है–

देखि विमोहिऊ किछु न कहाई।[4]

---

1. चंदायन कड़वक 33–7
2. चदायन कड़वक 34–7, 77–1
3. चंदायन कड़वक 77–1
4. मृगावती कड़वक 294–5

मृगावती को देखकर राजकुँवर व्यामोहित हो गया। यह शब्द अपने मूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– रीझि :

रीझि शब्द रीझना क्रिया का वाचक है। जिसका अर्थ है प्रसन्न होना, मोहित होना।[1] रीझना क्रिया संस्कृत के ऋधति शब्द का तद्भव रूप है। प्राकृत में इसका रूप रिज्झइ मिलता है। कुतवन ने इस शब्द का प्रयोग अपने मूल अर्थ में एक बार किया है–

तौ तू रहसि रीझि कै ताही।[2]

मृगावती– चाहा :

'चाहा' चाहना क्रिया का ही परिवर्तित रूप है। चाहना अनेक अर्थों का वाची है जैसे इच्छा करना, प्रेम करना, पसंद करना, मॉगना (जैसे– मैं आपसे कुछ रूपया चाहता हूँ) यद्यपि 'मोहना' व्यामोहना और 'रीझना' चाहना क्रिया के समानक हैं, परन्तु जिस प्रकार मोहना और व्यामोहना की अर्थच्छायायें भिन्न हैं उसी प्रकार चाहना की। मोहना और व्यामोहना में जहाँ प्रेम की तीव्रता भाव परिलक्षित होता है वही चाहना 'प्रेम करने' के साधारण भाव का वाचक है। मृगावती में चाहा शब्द एक स्थल पर प्रयुक्त हुआ है–

मिरगावती जानइ हम चाहा। रूपमिति जान प्रेम हम चाहा।[3]

यहाँ पर 'चाहा' शब्द प्रेम करने के अर्थ में हुआ है।

मृगावती– भा अनंद :

'भा अनंद' में आनंदित होने का भाव निहित है। 'भा आनंद' का अर्थ है आनंदित होना। साधारण लोक व्यवहार में आनंद हमारे मन में होने वाली वह अनुकूल तथा प्रिय अनुभूति है जो सव प्रकार के अभावों, कष्टों, चिन्ताओं आदि से मुक्त या रहित तथा अभीष्ट बातों से

---

1. डा0 हरदेव बाहरी राजपाल हिन्दी शब्द कोश
2. मृगावती कड़वक 383–4
3. मृगावती कड़वक 384–3

युक्त होने की अवस्था में होती है और जिससे हमारा मन परम संतुष्ट और सुखी होता है। इस व्याख्या के अनुसार आनंद का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। इसके हमें शुभ इंद्रिय सुखों के भोग से भी आनंद मिलता है और कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन से भी। यहाँ तक कि दूसरों के अच्छे काम या बातें देख कर भी हमें आनंद आता है। इसका वास्तविक सम्बंध शुद्ध तथा सदकार्यों और भावों से ही है। इसीलिए इसकी एक परिभाषा इस प्रकार दी गयी है। 'सुख रूप' सदवृत्तियों का वह प्रतिबिम्ब जो सात्विक वृद्धि पर पड़ता है। दुष्टों को उपद्रव करने या हत्यारों को हत्या करने से जो परितोष होता है, उसके सम्बंध में आनंद का प्रयोग ठीक नहीं माना जा सकता; दूसरे शब्दों का प्रयोग भले ही ठीक माना जा सके। आनंदित होना अर्थात 'भा अनंद' शब्द का प्रयोग मृगावती में पाँच[1] बार हुआ है। सभी स्थलों पर इसका प्रयोग हर्षित होने के साधारण अर्थ में ही हुआ है।

राजा के जिय आनंद बधाई।[2]

मृगावती– रहसत :

यह हर्षित का विकृत रूप है। हर्षित होने का अर्थ है प्रफुल्लित होना। ठहाका मारकर हँसना, उछलना, कूँदना, लोगों में हँसी मजाक करके या उन्हें छेड़कर हँसने के लिए प्रेरित करना तथा स्वयं जोर–जोर से बातें करके हर्ष प्रकट करना आदि हर्षित होने की क्रिया के लक्षण हैं। मृगावती में यह क्रिया शब्द एक वार साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

रहसत चले साथ जो कुँवर के खेलइ लाग अहेर।[3]

मृगावती– परसन :

मृगावती में 'परसन' शब्द प्रसन्न होना क्रिया का वाचक है। 'प्रसन्न होना' हर्षित होना क्रिया से कुछ हल्के स्तर की अनुभूतियाँ हैं। प्रसन्नता मुख्यतः वाह्य पदार्थों से प्राप्त

---

1. मृगावती कड़वक 15–3, 143–1, 200–1, 304–6, 381–7
2. मृगावती कड़वक 143–1
3. मृगावती कड़वक 18–6

होती हैं। हम खेल में जीत कर भी प्रसन्न होते हैं और अपने किसी मित्र से मिलकर भी। कोई अपने बाल बच्चों से हँस बोलकर प्रसन्न होता है तो कोई मद्य मांस का सेवन या आखेट करके। इस प्रकार इच्छा और वासनाओं की तृप्ति ही प्रसन्नता उत्पन्न करती है। मृगावती में यह शब्द प्रसन्न होने के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है–

निसि बासर सब (?) तेसहि चेतहि विधि परसन तौ सांति।।[1]

✠ चंदायन– पलटु :

पलटु का शुद्ध रूप पलटना है। पलटना तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है– 1. लौटना के अर्थ में (जैसे– मोहन आया और लौट गया) 2. अवस्था या दशा बदलना (जैसे–तवे पर रोटी पलना) 3. स्वरूप विल्कुल बदल जाना; जैसे– (शासन का तख्ता पलट गया)। पलटना शब्द 'पलट' धातु में 'ना' प्रत्यय के योग से बना है। चंदायन में इस क्रिया शब्द का प्रयोग लौटने के अर्थ में एक बार हुआ है–

गोवर देख पलटि घर आयहु।[2]

संस्कृत में इसका रूप परि + अस, प्राकृत में पल्लट और हिन्दी में पलटना है।

चंदायन लवटु :

लवटु का शुद्ध हिन्दी रूप लौटना है। यह शब्द भी पलटना की भाँति निम्नलिखित अर्थो में प्रयुक्त होता है– जैसे– राम लौट आया। 2. मकान के खपरैल लौटना। 3. समान की ठिलिया लौट गयी। चंदायन में लवटु शब्द भी एक ही वार मिला है।

लवटु चॉद लोर सों कहा।[3]

✠ चंदायन– होम–जाप :

होम–जाप करना यह भी लोक व्यवहार में होने वाला शब्द है। देवी देवताओं की

---

1. मृगावती कड़वक 9–7
2. चंदायन कड़वक 433–4
3. चंदायन कड़वक 434–1

पूजा के लिए होम करने एवं जाप करने की क्रिया का प्रचलन लोक जीवन में आज भी विद्यमान है। चंदायन में इस, शब्द का प्रयोग एक बार[1] पूजा करने के अर्थ में हुआ है।

चंदायन– अरघ :

'अरघ' शब्द भी लोक जीवन से जुड़ा शब्द हे। दाऊद मुल्ला सूफी कवि होते हुए भी लोक जीवन से सम्बद्ध थे, अतः उनको लाके जीवन से जुड़े शब्दों पर एकाधिकार प्रतीत होता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

नहाइ धोई कुछ अरघ करहू।[2]

यहाँ पर 'अरघ' शब्द 'पूजा–अर्चना' के भाव को ध्वनित कर रहा है।

चंदायन– विनती–विननों :

यह दोनों शब्द विनती के रूप हैं। विनती का अर्थ है प्रार्थना करना। इसका संस्कृत रूप विनति, पाली रूप विण्णत्ति, प्राकृत में विण्णति और हिन्दी में तत्समरूप विनती मिलता है। चंदायन में उक्त शब्दों का प्रयोग पूजा करने के अर्थ में एक–एक[3] बार हुआ है।

दई विधाता बिनवों, सीस नाइ कर जोरि।[4]

✠ **मृगावती– पेठि :**

पैठना क्रिया का ही बदला रूप पेठि है। पैठना का अर्थ है प्रवेश करना। मृगावती में 'पेठि' क्रिया का प्रयोग 'भीतर प्रविष्ट' होने के अर्थ में एक[5] बार हुआ है।

मृगावती– समानी :

समाना, क्रिया का ही रूप समानी है। पैठना और समान क्रिया शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं परन्तु अर्थच्छायायें भिन्न हैं। यहाँ पैठना का अर्थ है पानी घुसना। मृगावती का शरीर पूर्ण रूपेण पानी के अंदर नहीं हुआ, परन्तु 'समानी शब्द से ध्वनित हो रहा है कि पूरी

---

1. चंदायन कड़वक 171–5
2. चंदायन कड़वक 172–4
3. चंदायन कड़वक 254–7, 202–6
4. चंदायन कड़वक 202–6
5. मृगावती कड़वक 21–7

तरह से पानी के अन्दर प्रवेश कर गयी है। इस शब्द का प्रयोग एक[1] बार हुआ है–

मृगावती– भीतर परी :

भीतर परी से आशय है पानी के अंदर डूब जाना। यहाँ पर 'भीतर परी' शब्द परना क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

मान सरोदक भीतर परी।[2]

✠ **मृगावती– फूली :**

फूली का अर्थ है फूलों से युक्त होना, पुष्पित होना, फूल जाना। फूलना का संस्कृत रूप फुल्ल, पाली में फुल्लित, प्राकृत में फुल्ल और हिन्दी में फूलना है। मृगावती में 'फूली' शब्द दो[3] बार प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– विगसि :

विगसि का अर्थ है फूलना। विगस धातु में ना प्रत्यय के योग से विगसना क्रिया का निर्माण हुआ है। मृगावती में यह क्रिया दो[4] बार फूलने के अर्थ में प्रयुक्त हुई है।

✠ **चंदायन– बरन्हि– बरैं :**

बरन्हि और बेरें शब्द 'बरना' क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। 'बरना' क्रिया वरण करना, चुनना, व्याहना और जलना के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बर धातु में ना प्रत्यय के योग से बरना क्रिया की रचना हुई है। चंदायन में बरन्हि और बरै शब्द व्याहना के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। चंदायन में दोनों शब्द क्रमशः एक–एक[5] बार प्रयुक्त हुए हैं–

लासे बरन्हि वावन कहँ, चाँदा आरति दीन्ह उतार।[6]

चंदायन– वियाहैं–वियाहु :

विवाहना क्रिया का रूप है विवाह शब्द में ना प्रत्यय के योग से विवाहना क्रिया

---

1. मृगावती कड़वक 301–7
2. मृगावती कड़वक 21–4
3. मृगावती कड़वक 25–5, 325–4
4. मृगावती कड़वक 26–6, 325–3
5. चंदायन कड़वक 43–6, 37–7
6. चंदायन कड़वक 43–6

✠ <u>चंदायन– कुमलानी :</u>

'कुमला' धातु में ना प्रत्यय लगाने से 'कुमलाना' क्रिया बनी है। कुमलाना का अर्थ है मूर्झाना। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक बार हुआ है–

सुरुज सनेह चॉद कुम्मलानी।[1]

<u>चंदायन– मुरझा :</u>

संस्कृत में मूर्च्छ, प्राकृत में मुच्छ और हिन्दी में मुरझाना रूप मिलता है। मुरझा धातु में ना के योग से मुरझाना क्रिया का पर्यायवाची है। अर्थभेद की दृष्टि से इन शब्दों में अधिक दूरी नहीं है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[2] बार हुआ है।

✠ <u>चंदायन– भवई :</u>

'भव' धातु में ना 'प्रत्यय' के योग से 'भवना' क्रिया की रचना हुई है। भवना का अर्थ है 'घूमना'। भवई और घूमने की अर्थच्छायायें भिन्न हैं भवना का अर्थ है एक विन्दु पर स्थिर होकर घूमना; जैसे– कुम्हार के चाक का भवना। मैदान में चक्कर लगाकर घूमने को 'भवना' नहीं कहा जा सकता है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग एक[3] बार हुआ है। प्रयोग मूल अर्थ में नहीं है।

<u>चंदायन– डोलसि :</u>

'डोल' धातु में ना प्रत्यय के योग से 'डोलना' क्रिया निर्मित हुई है। डोलना का अर्थ है हिलना, चलायमान होना। डोलना का संस्कृत रूप दोलन है, प्राकृत रूप डोलन और हिन्दी में डोलना शब्द प्रयुक्त होता है। डोलना में चक्कर लगाने का भाव तो निहित है, लेकिन अंश मात्र। चक्कर लगाने की तीव्रता के भाव का नितांत अभाव है, जैसे– घड़ी का पंडुलम डोल रहा है कहा जायेगा, लेकिन पेंडुलम चक्कर लगाता भी नजर आ रहा है। यही भवई और डोलसि का अर्थ भेद है। यह शब्द एक बार[4] प्रयुक्त हुआ है।

---

1. चंदायन कड़वक 147–3
2. चंदायन कड़वक 183–3
3. चंदायन कड़वक 193–3
4. चंदायन कड़वक 234–3

चंदायन फिरसि :

'फिर' धातु में ना के योग से 'फिरना' क्रिया बनी है। फिरना और डोलना कई अर्थों में दूर है कई में समीप। वगीचे में घूमना या डोलना दोनों में समानता का भाव परिलक्षित होता है, परन्तु घड़ी के पैंडुलम के डोलने की क्रिया को 'फिरने' क्रिया शब्द से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। फिरसि शब्द भी साधारण अर्थ में एक ही बार[1] प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– रोयसि (रोना) :

'रो' धातु में ना प्रत्यय के योग से 'रोना' शब्द बना है। रोना शब्द का संस्कृत रूप रोदति, पाली रूप रोदति, प्राकृत रूप रुअई और हिन्दी रूप रोना है। संस्कृत का रोदति शब्द रोदन से बना है। जव कोई व्यक्ति किसी बात से दुखी होकर अश्रुपात करता है, तो वह क्रिया रोना कहलाती है। चंदायन में 'रोयसि' शब्द एक[2] बार साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चंदायन– बिललाई (बिलखना) :

रामचन्द्र वर्मा ने इस शब्द को संस्कृत के विकल या विलाप शब्द से विकसित माना है।[3] यद्यपि कोशकार का कोई निश्चित मत नहीं है तथापि अर्थ की दृष्टि से यह 'विलप' के अधिक समीप प्रतीत होता है। विकल शब्द व्याकुलता, बैचैनी एवं अस्थिर मनः स्थिति का संकेतक है और विलपना शोकायुक्त कथन का। चंदायन में यह शब्द एक बार साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

सोइ नार बिललाइ।[4]

✠ चंदायन– लुकाव (लुकना) :

लुकना शब्द लुक धातु में ना प्रत्यय के योग से बना है। इस शब्द का संस्कृत रूप लीयते, अपभ्रंश रूप लुक्क और हिन्दी रूप लुकना है। चंदायन में इस शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में इस प्रकार हुआ है–

1. चंदायन कड़वक 376–6
2. चंदायन कड़वक 50–4
3. मानक हिन्दी कोश
4. चंदायन कड़वक 192–6

सूरज गयऊ लुकान।[1]

मृगावती– लुकाई (लुकना) :

मृगावती में भी लुकना शब्द छिपना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। शब्द का व्युत्पत्यक विवेचन ऊपर किया जा चुका है। मृगावती में यह शब्द एक[2] बार प्रयुक्त हुआ है।

मृगावती– छपि (छिपना) :

छिप धातु में ना प्रत्यय के योग से छिपना क्रिया शब्द की रचना होती है। मृगावती में यह शब्द लुकना के अर्थ में एक वार प्रयुक्त हुआ है–

तेहि ठा छपि कै रहा लुकाई।[3]

चदायन– छिपाई :

चंदायन में छिपाई शब्द का प्रयोग एक[4] बार हुआ है। जनभाषा का बहुप्रचलित क्रिया शब्द है।

चंदायन– ढाकहि– ढकना :

इस क्रिया की रचना ढक् धातु में ना प्रत्यय लगाने से हुई है। इसका संस्कृत रूप छाद्य, प्राकृत ढक्क ढक्कइ और हिन्दी रूप ढकना है। चंदायन में इस क्रिया शब्द का प्रयोग एक[5] वार हुआ है।

= = = = =0= = = = =

---

1. चंदायन कड़वक 100–7
2. मृगावती 76–2
3. मृगावती 76–2
4. चंदायन कड़वक 261–5
5. चंदायन कड़वक 268–3

प्रकरण–

उपसंहार

(6) उपसंहार

पूर्ववर्ती अध्यायों में किये गये विवेचन विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि दाऊद मुल्ला और कुतवन ने यह शब्द और अर्थ के औचित्य को दृष्टि में रखते हुये विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। कवि द्वै की सफलता इस बात में है कि उन्होंने शब्द को अर्थ की तुला पर तौल कर उसका उचित और सटीक प्रयोग किया है। अपनी पैनी शब्द सम्बंधी पकड़ के द्वारा वह अत्यंत साधारण एवं परिचित शब्दों में भी नई भाव भंगीमाओं और अर्थ–छायाओं का विकास कर लेते हैं। शब्द और अर्थ के संतुलन के द्वारा वह अभिव्यक्ति को पूर्ण एवं सशक्त बनाने में समर्थ हैं। दाऊद मुल्ला और कुतवन ने प्रायः सर्वत्र ही अर्थ की सटीक व्यंजना का ध्यान रखा है। चंदायन और मृगावती में प्रयुक्त शब्द कवियों के अभिप्रेत अर्थ की व्यंजना में समर्थ हैं।

कविता की भाषा का एक मुख्य कार्य भावचित्रों अथवा बिम्बों का विधान करना है। अपने इच्छित भाव चित्रों को रूपाकार देने के लिए कवि के पास मुख्य अस्त्र उसके शब्द ही होते हैं। एक भी शब्द का इधर से उधर प्रयोग अथवा एक सटीक शब्द के स्थान पर किसी अन्य असंगत पर्याय का प्रयोग कविता के बिम्ब के सम्पूर्ण प्रभाव को विनष्ट कर डालता है। इस प्रकार अनुभूति की निर्दिष्ट अभिव्यक्ति के साथ–साथ समुचित बिम्ब विधान के लिए भी पर्याय शब्दों का विशिष्ट महत्व है। इस प्रकार की भाव छवियों के प्रस्तुतिकरण के लिए उपयुक्त रहे हैं।

1. सव दिन नैन जोवत पंथ, और निसि जागत जाइ।
   मोर संदेश लोर कहुँ इहँ पर रोइ बहाई।।[1]

---

1. चंदायन कड़वक 401–6–7

2. कुतवन कँगुरा पेम का ऊँच अतिरे उतंग।

सीस न दीजइ पॉव तर कर न पहुँचइ खंग।।[1]

उपर्युक्त प्रथम दो पंक्तियों में मैंवा का सिरजन से अपनी विरह व्याख्या का चित्रण तथा दूसरी दो पंक्तियों में प्रेम की परिभाषा के रूप का प्रस्तुतीकरण क्रमशः दोनों कवियों की काव्य प्रतिभा का अनुपम नमूना है। दाऊद मुल्ला ने मैंना की विरह वेदना का जिन शब्दों में वर्णन किया है। दूसरे शब्द विरह के चित्र को ऐसा चित्रित करने में समर्थ न होते। इसी प्रकार कुतवन ने प्रेम की परिभाषा के लिए अथवा प्रेम के स्वरूप को मूर्तरूप देने के लिए जितने सटीक शब्दों का चयन किया सम्वतः दूसरे शब्द इस आकार को न बना पाते।

चंदायन और मृगावती लोक जीवन से जुड़ी हुई लोक भाषा में श्रृजित प्रेम कथाऐं हैं। लोक जीवन और साहित्य में जातिवाची संज्ञाओं के प्रयोग की प्रथा बहुत पुरानी है। वस्तुओं की विशेषताओं को सूचित करने के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक हैं जल को शोभित करने के कारण यदि पुष्प विशेष कमल कहलाता है तो कीच की उत्पत्ति के कारण उसे पंकज भी कह दिया जाता है। विष धारण करने से यदि सर्प विषधर कहलाता है तो धरती पर रैंग कर चलने से उरग। जवान महिला यदि यौवना है तो बूँढ़ी महिला बृद्धा। जातिवाची पर्यायों की व्युत्पत्तिगत विशिष्टताओं के आधार पर यदि उनका काव्य या साहित्य में प्रयोग किया जाता है, तो अभिव्यक्ति और भी सशक्त होने लगती है। विशिट अर्थ की व्यंजना को दृष्टि में रखते हुए दाऊद मुल्ला और कुतवन ने जातिवाची शब्दों का सटीक प्रयोग किया है। चंदायन और मृगावती सूफी प्रेम काव्य हैं। जिन महत्वपूर्ण जातिवाची शब्दों का चयन इन प्रेम ग्रंथों में किया गया है, उनके विवेचन विशलेषण से स्पष्ट हो जाता है कि कतिपय अपवादों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र ही कवि की दृष्टि शब्दों का पूरा–पूरा उपयोग करने पर केन्द्रित रही

---

1. मृगावती कड़वक 194–6–7

है। यह उपयोगिता केवल अर्थगत ही हो, ऐसा नहीं है अपितु शब्दों की ध्वंन्यर्थ व्यंजना के प्रति भी कवि सजग रहा है। इस प्रकार प्रसंगानुरूप पर्यायों के प्रयोग द्वारा कवि द्वै ने प्रायः सर्वत्र ही शब्दगत और अर्थगत उपयुक्तता का निर्वाह किया है।

कविता तत्वतः भावों की शब्दमयी रमणीय अभिव्यक्ति है। उसकी शक्तिमत्ता के लिए कवि उपयुक्त पर्यायवाची शब्दों का चुनाव करता है। प्रतिभावान कवि दाऊद मुल्ला और कुतवन ने भी भाववाची संज्ञाओं के पर्यायवाची शब्दों की निवंधना में अपनी सूझ–बूझ का परिचय दिया है। भाव स्वरूपतः अमूर्त होते हैं। इन अमूर्त भावों को विभिन्न समानार्थी शब्दों के प्रयोग द्वारा मूर्त एवं साकार कर देना दाऊद मुल्ला और कुतवन के प्रतिभाशाली कवित्व का ही ज्ञापक है। प्रेम, मोह, दुःख, हर्ष आदि शब्दों के सटीक पर्यायों का चयन करके दोनों कवियों ने अभिव्यंजना को चारुता प्रदान की है।

किसी भी उक्ति में विशेषणों का समीचीन एवं साभिप्राय प्रयोग अभिव्यक्ति को उत्कर्ष प्रदान करता है। विभिन्न संज्ञाओं के वैशिष्ट्य को द्योतिन करने के लिए उपयुक्त विशेषण प्रभावशाली साधन का काम करते हैं। इसी कारण प्रत्येक साहित्यकार संज्ञाओं के साथ–साथ उनके अनुरूप विशेषण पर्यायों का प्रयोग करने के प्रति भी सजग रहता है। प्रस्तुत प्रबंध के 'विशेषण पर्याय' शीर्षक अध्याय से स्पष्ट है कि दाऊद मुल्ला और कुतवन संज्ञाओं की भाँति विशेषण पर्यायों के उपयुक्त चयन के प्रति भी विशेष जागरूक रहे हैं। अनेक पर्यायवाची विशेषणों के औचित्य पूर्ण प्रयोग ने 'चंदायन' और 'मृगावती' की विभिन्न उक्तियों को असंदिग्ध रूप से उत्कृष्ट बना दिया है।

वाक्य– रचना में क्रिया पदों का भी विशेष महत्व है। किसी प्रबंध काव्य में पात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ उनकी आंतरिक और बाह्य विशेषताएं अर्थ गर्भित क्रियाओं के द्वारा ही

सुन्दरता पूर्वक अभिव्यक्त होती हैं। क्रियाओं के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों में से सटीक क्रियापदों का चयन काव्य को अर्थ गौरव और उक्ति को हुदय संवादिता प्रदान करता है। क्रियाओं के प्रयोग में दाऊद मुल्ला और कुतवन विशेष रूप से सावधान रहे हैं। कथ्य के अनुरूप उपयुक्त क्रिया पद के प्रयोग ने अभिव्यक्ति को निश्चय ही प्रभावपूर्ण बनाने में पूरा–पूरा योगदान दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दाऊद मुल्ला और कुतवन जहाँ एक ओर अरबी भाषा पर बेजोड़ पकड़ रखते थे उससे कहीं अधिक हिन्दी भाषा पर उनका अधिपत्य था। चंदायन और मृगावती में पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग में उन्हें भरपूर सफलता मिली है।

= = = = =0= = = = =